तुलसी साहिब

हाथरस के परम सन्त

राधास्वामी सत्संग ब्यास

तुलसी साहिब

हाथरस के परम संत

जनक पुरी
वीरेन्द्र कुमार सेठी
डॉ. टी. आर. शंगारी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

ॐ अन्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से 9
पुस्तक का नया संस्करण 11

जीवन

जीवन परिचय 13
तुलसी साहिब की रचनाओं का परिचय 30

उपदेश

1. संपूर्ण मनुष्य-जाति के लिये एक ही उपदेश 39
2. परमात्मा और उसकी रचना 45
   - परमात्मा का अनादि स्वरूप 45
   - रचना 46
   - जीवात्मा 48
   - तत्त्वों के आधार पर जीवों की श्रेणियाँ 51
   - देवता और अवतार 52
3. काल और माया 55
   - काल 55
   - काल के कौतुक 56
   - काल-जाल से मुक्ति 58
   - माया 60
   - माया का प्रभाव 61
4. मन 64
   - मन का शक्तिशाली हथियार: इच्छा-तृष्णा 65

इच्छा-तृष्णा का जन्म 66
मन के विकार 69
मन को वश में करना 72
5. मनुष्य-जन्म 76
मनुष्य-जन्म: एक दुर्लभ अवसर 77
मनुष्य-शरीर की महिमा 78
मनुष्य-जन्म का उद्देश्य 81
जीव की अज्ञानता 84
6. कर्म और फल 89
कर्मफल का सिद्धांत 90
अटल कर्मगति 91
कर्म और काया का अटूट संबंध 94
कर्मफल के प्रति अज्ञानता 96
कर्मजाल से मुक्ति 97
7. संत-सतगुरु 98
संतों के लक्षण 99
सतगुरु का वास्तविक स्वरूप 100
सतगुरु की महिमा 102
सतगुरु की आवश्यकता 104
तथाकथित साधु 109
8. सत्संग 112
सत्संग की महिमा 112
संतों की संगति का प्रभाव 116
9. सुरत-शब्द योग 119
शब्द का स्वरूप 119
शब्द की प्राप्ति 125
आंतरिक अनुभव 129

10. प्रेम, भक्ति और विरह 138
प्रेम 139
भक्ति की महिमा 140
विरह 142
प्रभु मिलाप का सुख 148
11. गुरु-शिष्य का संबंध 150
गुरु की शरण 151
करनी का महत्त्व 154
12. भक्ति के अन्य साधन 156
तीर्थ-व्रत 157
धर्मग्रंथों का पाठ 160
योग साधना 162
गृहस्थी का त्याग 165
13. चमत्कार 170
14. जीव की अवस्था 174
युगों का प्रभाव 174
कलियुग में जीव की दुर्दशा 177
जीव की अंत समय की हालत 185
15. जीवहत्या और मांसाहार 189
मांसाहार का निषेध 190
जीवहत्या का परिणाम 195
कन्याओं की हत्या 197
16. चेतावनी 199
17. उपदेश का सार 204

संवाद

परिचय 209
शेख़ तक़ी के साथ संवाद 211

धर्मा और कर्मा जैनियों के साथ संवाद 218
माना, नैनूँ और स्यामा आदि पंडितों के साथ संवाद 224
मानगिरी संन्यासी के साथ संवाद 232
कबीरपंथी फूलदास के साथ संवाद 238
पलकराम नानक पंथी के साथ संवाद 247
गुनुवाँ के साथ संवाद 255
प्रियेलाल गुसाईं के साथ संवाद 261

बानी

संत सौदागर 'नाम' के 267
ग़ज़लें 269
बारह मासा 271
ककहरा 280
आरती 287
विविध शब्द 288

संदर्भ सूची 296
संदर्भ ग्रंथ 307
परमार्थ संबंधी पुस्तकें 309

जीवन

जीवन परिचय

तुलसी साहिब उन्नीसवीं शताब्दी के परम संत माने जाते हैं। हालाँकि उन्हें इस संसार से गये हुए कोई ज़्यादा समय नहीं हुआ है, परंतु फिर भी अन्य संतों के समान उनके जीवन से संबंधित, विशेष रूप से उनके आरंभिक जीवन से संबंधित प्रमाणिक जानकारी बहुत कम प्राप्त है। सौभाग्य से उनका उपदेश, उनके द्वारा रचित पुस्तकों के रूप में उपलब्ध है।

तुलसी साहिब के जीवन के संबंध में तीन प्रकार के विवरण मिलते हैं:

1. तुलसी साहिब की रचना *रत्न सागर* की भूमिका में उनके जीवन के बारे में यह संकेत मिलता है कि वह एक ऊँचे कुल के ब्राह्मण परिवार से संबंध रखते थे। बाल्यावस्था में ही उनके मन में सांसारिक जीवन के प्रति उदासीनता आ गई और वह सब कुछ छोड़कर साधु बन गये। अंत में आप हाथरस में आकर रहने लगे। *रत्न सागर* में तुलसी साहिब के असली नाम, उनके माता-पिता के नाम और जन्मस्थान के बारे में कुछ भी वर्णन नहीं मिलता!
2. उनकी रचना *घट रामायण* के आरंभ में उनके जीवन के संबंध में यह जानकारी मिलती है कि उनका जन्म सन् 1763 में हुआ और 80 वर्ष की आयु पूरी करके 1843 ई. में वे परलोक सिधार गये। तुलसी साहिब

पूना के राजा * के सबसे बड़े सुपुत्र थे, जाति से ब्राह्मण थे और उनका नाम श्याम राव था। उनके पिता ने उनकी इच्छा के विरुद्ध छोटी आयु में ही उनका विवाह लक्ष्मी बाई नाम की कन्या के साथ कर दिया। कुछ समय बाद उनके घर में एक पुत्र ने जन्म लिया। श्याम राव के पिता भी आध्यात्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे और उनकी इच्छा थी कि वे अपने पुत्र को राजपाट सौंपकर शेष जीवन प्रभु की भक्ति में व्यतीत करें। उधर श्याम राव भी सांसारिक धंधों के प्रति बहुत उदासीन थे, संभवत: इसी कारण वे ताजपोशी के लिये नियत की गई तिथि से एक दिन पहले ही शाही महल से ग़ायब हो गये। तलाश करने पर भी जब वे न मिले तो इनके छोटे भाई को शाही गद्दी सौंप दी गई।

इस वर्णन के अनुसार श्याम राव कई वर्षों तक जंगलों, पहाड़ों, कस्बों तथा शहरों में भ्रमण करते रहे और अंत में यू.पी.के हाथरस शहर में आकर रहने लगे तथा शेष जीवन उन्होंने यहीं व्यतीत किया। यही श्याम राव बाद में तुलसी साहिब के नाम से प्रसिद्ध हुए।

क्षितिमोहन सेन, रामकुमार वर्मा, पी.डी.बड़थ्वाल और परशुराम चतुर्वेदी सहित अनेक विद्वानों ने रहस्यवाद और रहस्यवादी साहित्य के बारे में खोज करते हुए ऊपर बताये गये दो स्रोतों† में से किसी एक के आधार पर तुलसी साहिब के विषय में अपने विचार निश्चित किये हैं।

3. कुछ समय पहले महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध इतिहासकार श्री विट्ठल आर.ठक्कर ने पेशवा वंश के अभिलेख के आधार पर इस वंश के संबंध में शोध किया। उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि

* राजा शब्द वास्तव में पेशवा के लिये प्रयोग किया गया है। शिवाजी के राज प्रबंध में पेशवा मुख्य हाकिम होता था। कुछ समय पश्चात पेशवा मराठा साम्राज्य के वास्तविक मुखिया बन गये। उन्होंने पूना को अपनी राजधानी बना लिया। वास्तविक राजा केवल नाम के ही हाकिम रह गये और उनका निवास स्थान सतारा ही रहा।

† ये दोनों विवरण बेलवीडियर प्रैस द्वारा प्रकाशित तुलसी साहिब की दोनों रचनाओं की भूमिका में मिलते हैं। प्रैस वाले इन भूमिकाओं के परस्पर विरोधाभास को दूर करने के स्थान पर दोनों संदर्भ प्रकाशित करते जा रहे हैं।

तुलसी साहिब नामक महात्मा पेशवा वंश में से ही थे और उनका जन्म सन् 1763-64 में हुआ। वह शुरू से ही गंभीर, विवेकशील और निश्छल स्वभाव के थे। उन्हें राजनीतिक दाँवपेंच से घृणा थी। वह पेशवा राजनीति के दाँवपेंच से तंग आकर सन् 1804 में पूना छोड़कर बनारस आ गये और सन् 1808 में हाथरस में आकर रहने लगे।*

उक्त संदर्भों से निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं, जो काफ़ी विश्वसनीय प्रतीत होते हैं:

1. तुलसी साहिब ऊँचे घराने से संबंध रखते थे और पेशवा वंश के राज परिवार में से थे।
2. उनका जन्म अठारहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ।
3. उनके हृदय में संसार के बजाय परमार्थ की लगन थी।
4. वह अपने शहर से अचानक ग़ायब हो गये। संभव है कि उन्होंने अपना नाम श्याम राव रख लिया हो ताकि उन्हें कोई पहचान न पाये।
5. उन्होंने बहुत दूर-दूर तक भ्रमण किया, परंतु अंत में वह यू.पी.में अलीगढ़ ज़िले के कस्बे, हाथरस में आकर रहने लगे।
6. वह दक्षिण की तरफ़ से आये थे, जिस कारण वे 'दखणी बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वरूप

संतदास महेश्वरी ने तुलसी साहिब के स्वरूप के विषय में यह विवरण दिया है: वह लगभग छ: फ़ुट लंबे, गोरे और पतले शरीर के थे। उनके मुख मंडल पर अलौकिक तेज और अद्भुत प्रकाश दिखाई देता था। उनका मस्तक

* कुछ इतिहासकार ठक्कर साहिब के इस निर्णय से सहमत नहीं, क्योंकि अमृत राव ने 1824 में देह त्याग दी, जबकि तुलसी साहिब 1843 तक जीवित थे। इसलिये तुलसी साहिब के आरंभिक जीवन के बारे में अब तक निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

चौड़ा था और नेत्रों में से तेज झलकता था। उनकी लंबी दाढ़ी थी और चेहरा बहुत प्रभावशाली था। शरीर ऐसा था मानो सोना तप रहा हो। वह अपने शरीर को अकसर गुदड़ी या कंबल से ढककर रखते थे। उनके तेजस्वी मुख पर नज़र टिकाये रखना भी मुश्किल था, परंतु इससे ध्यान हटा पाना भी आसान नहीं था। उनके तेजपूर्ण नेत्र हृदय में गहरे उतर जाते थे और वहाँ अपना स्थायी ठिकाना बना लेते थे।*

सतगुरु से मिलाप

तुलसी साहिब का सतगुरु के साथ कहाँ और कब मिलाप हुआ, इस विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। उन्होंने अपनी वाणी में अपने सतगुरु का नाम नहीं लिखा है। अन्य कई संतों की वाणी से भी उनके सतगुरु के नाम के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं मिलती। तुलसी साहिब की वाणी का संपादन करनेवालों ने लिखा है कि भले ही कई लोगों की यह धारणा रही है कि तुलसी साहिब स्वयं इतने महान थे कि उन्हें किसी अन्य को गुरु के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं थी, परंतु ऐसा मान लेना ठीक नहीं है। इस बात के पक्ष में उन्होंने तुलसी साहिब की वाणी में से यह उद्धरण दिया है:

तुलसी संत दयाल, निज निहाल मो कौ कियौ।
लियौ सरन के माहिं, जाइ जन्म फिर कर जियौ॥[1]

तुलसी साहिब कहते हैं कि दयालु संत ने मुझे अपनी शरण में लेकर निहाल कर दिया। इस प्रकार मुझे नया जन्म मिल गया।†

घट रामायण के संपादक लिखते हैं कि कबीर साहिब आदि संतों की तरह चाहे मर्यादा पालन के लिये ही सही, तुलसी साहिब ने भी गुरु अवश्य धारण किया होगा।‡

* संतदास महेश्वरी, परम संत तुलसी साहिब, स्वामी बाग़ आगरा, 1979, पृ. 10
† घट रामायण, पृ. 3 ‡ घट रामायण, पृ. 3

तुलसी साहिब की वाणी का निम्नलिखित अंश इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उन्होंने सतगुरु की शरण ली थी:

मैं लोहा जड़ कीट समाना। गुरु पारस संग कनक कहाना॥
कंचन भया सोन सुख माना। सो सराफ की तुलै दुकाना॥
पुनि गहना गढ़ि कीन्ह सुनारा। तोड़ मोड़ बहु भाँति सँवारा॥
पुनि पारस नहिं सोन कहाना। सोन सोन जुग जुग जिव जाना॥ ...
तुलसी सतगुरु पारस कीन्हा। लोहा सुगम अगम लखि लीन्हा॥[2]

घट रामायण का समापन करने से पहले वह लिखते हैं: पारस तो लोहे को सोना बनाता है परंतु मेरे सतगुरु ने मुझे पारस ही बना लिया है अर्थात् अपना ही रूप बना लिया है।

तुलसी साहिब की वाणी संत-सतगुरु की महिमा से परिपूर्ण है। उन्होंने अनेक प्रसंगों में इस बात पर बल दिया है कि अनादि काल से यह नियम चलता आ रहा है कि संत-सतगुरु के बिना स्वयं न कोई भवसागर से पार जा सकता है और न ही किसी को एक पूर्ण संत की अवस्था प्राप्त हो सकती है।

सतगुरु चरन निवास, निस दिन सूरति बसि रही।
संत चरन अभिलाष, पल छिन छिन छूटै नहीं॥[3]

यहाँ आप कहते हैं कि मेरे हृदय में सदा सतगुरु के चरण समाये रहते हैं। इन चरणों से जुड़े रहने की चाह कभी पल भर के लिये भी दूर नहीं होती।

कही सुनी नहिं निज निज बानी। सब्द बूझ कोइ संत पिछानी॥
मोरे तन मन दृष्टि दिखानी। सो सब कृपा संत की जानी॥[4]

आप कहते हैं कि मैंने घट रामायण में जो भी आध्यात्मिक रहस्य प्रकट किये हैं, वे सुनी-सुनाई बातें नहीं हैं, बल्कि शब्द के अभ्यास द्वारा

प्राप्त हुए निजी अनुभव पर आधारित हैं। मैंने संतों की कृपा से स्वयं अंदर देखकर सब कुछ बयान किया है और ये गूढ़ रहस्य कोई संत-महात्मा ही भलीभाँति समझ सकता है।

तुलसी साहिब ने अपने आंतरिक ज्ञान का श्रेय अपने सतगुरु को दिया है, जिससे सिद्ध होता है कि उन्होंने सतगुरु के मार्गदर्शन में ही आंतरिक अभ्यास किया:

सतगुरु पारस सार, लगै लार पारस करै।
सरै जीव कौ काज, भरै सुरति भिनि भवन में॥
सूरति सब्द मिलाप, आठ अटारी चढ़ि चली।
अली अगम गढ़ घाट, बाट लखन सतगुरु दई॥[5]

जिस सौभाग्यशाली जीव को सतगुरुरूपी पारस की संगति प्राप्त हो जाती है, वह भी पारस बन जाता है। उस जीव का कार्य पूर्ण हो जाता है। उसकी सुरत शब्द से जुड़कर पिंड और ब्रह्मांड को पार करके आठवें महल में पहुँच जाती है, जो प्रभु का अगम निज धाम है।

तुलसी तुच्छ ग्रंथ घट कीन्हा। बूझैं संत अगम लौ लीना॥
मैं उन का बालक बिधि गाई। सुनिहैं संत बाल हित लाई॥
मैं अजान बुधिहीन अचेता। वे सुनि करैं करैं हित हेता॥
मैं बुधि लरिका की लरिकाई। बुधि बालक बिधि कीन्ह बनाई॥
संत दयाल दया के स्वामी। तुलसी कीन्ही निरखि निसानी॥[6]

आप कहते हैं कि मैं तो तुच्छ बुद्धि वाले बालक के समान था, परंतु सतगुरु की कृपा से घट रामायण जैसे ग्रंथ की रचना करने के योग्य हो गया। जिस प्रकार पिता पुत्र की तोतली बातें भी ख़ुशी से सुनता है, उसी प्रकार दया के पुंज सतगुरु ने मेरी बालकों जैसी बातें प्रेमपूर्वक सुन ली हैं।

जोइ जोइ बिधि बरतंत, संत समझ मो को दई।
लही जो तुलसी दास, कही कहन घट लखि परी॥
कहि लख लखन लखाव, चाव चौज जस जस भई।
दही दधि माखन भाव, काढ़ि तत्त येहि बिधि लह्यौ॥[7]

आप कहते हैं: जिस प्रकार दही में से मक्खन और मक्खन में से घी निकाल लिया जाता है, उसी प्रकार मैंने संतों के उपदेशानुसार अभ्यास करके अपने निजी अनुभवों के आधार पर परमसत्य का वर्णन किया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उन्होंने सतगुरु की शरण में जाकर अंतर्मुख होकर अभ्यास किया और पूर्णता की अवस्था प्राप्त की। सतगुरु की कृपा से वह स्वयं सतगुरु स्वरूप हो गये।

सब जीवों के प्रति समान दृष्टिकोण

तुलसी साहिब का जन्म ऊँचे कुल में हुआ था, परंतु उन्होंने जाति-पाँति, धर्म-कर्म, रंग-रूप आदि के भेदभाव का ज़ोरदार शब्दों में विरोध किया है। उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि मनुष्य का वास्तविक रूप उसकी आत्मा है। आत्मा, परमात्मा की अंश है। न परमात्मा का कोई धर्म या जाति है और न ही आत्मा की। तुलसी साहिब ने अपनी वाणी के अनेक प्रसंगों में इस बात पर बल दिया है कि संतों की दृष्टि जीव की देह पर नहीं, उसकी आत्मा पर होती है। इसलिये उन्हें कोई भी जीव जाति, धर्म आदि के आधार पर छोटा या बड़ा प्रतीत नहीं होता। संसार के सब जीव चाहे बड़े से बड़े पापी भी क्यों न हों, समान रूप से संतों के प्रेम और दया के अधिकारी होते हैं। तुलसी साहिब के उपदेश से प्रभावित होकर धीरे-धीरे समाज में ऊँची जाति के माने जानेवाले ब्राह्मण परिवारों से लेकर निम्न जाति के परिवारों के लोग बहुत अधिक संख्या में उनकी ओर आकर्षित होने लगे। तुलसी साहिब लिखते हैं:

णणा नीच ऊँच नहिं देख पेख सब एक पसारा।
नहिं बाम्हन नहिं सूद्र नहीं छत्री कोउ न्यारा॥

नहीं बैस की जाति सकल घट एक पसारा।
अरे हाँ रे तुलसी जो करि जानै दोइ खोइ जिन जनम बिगारा॥[8]

चारों वर्णों के लोगों में उस प्रभु का ही प्रकाश समाया हुआ है। जो व्यक्ति जाति-पाँति के आधार पर लोगों को ऊँचा या नीचा समझता है, वह सच्चे ज्ञान से वंचित रह जाता है। उसका अनमोल जन्म व्यर्थ बरबाद हो जाता है।

सूरति मिलै सब्द में जाई। ये सब संतन पंथ बताई॥
सुरति पंथ नहिं खोजा भाई। जाति पंथ का बोझ उठाई॥[9]

आप समझाते हैं कि सभी संतों ने सुरत को शब्द के साथ जोड़ने का उपदेश दिया है। दु:ख की बात यह है कि लोग सुरत-शब्द के मार्ग पर चलने का प्रयत्न नहीं करते, बल्कि अपने सिर पर जाति-पाँति, धर्मों, मज़हबों के भेदभाव का बोझ व्यर्थ ही उठाये फिरते हैं।

तुलसी साहिब का शब्द है:

पंडित भल चारों बेद पड़े॥ ...
करि असनान अचार रसोई, हाँड़ी भीतर हाड़ भुड़े॥
भोजन करि जिजमान जिमाये, दछिना कारन जाइ अड़े॥
बकरा मारि भवानी पूजें, मूड़ टका बिना गाज पड़े॥[10]

आप इस शब्द में विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि ब्राह्मण इस बात पर गर्व करते हैं कि वे चारों वेदों के ज्ञाता हैं। वे अपने आप को चारों वर्णों में उत्तम सिद्ध करते हैं परंतु पशुओं का मांस खाते हैं, मूर्तियों के आगे पशुओं की बलि चढ़ाते हैं और यजमानों के साथ दक्षिणा के लिये झगड़ा करते हैं। आप कहते हैं: *ब्रह्म चीन्ह सोइ ब्राम्हन कहिये*[11]—जो ब्रह्म यानी परमात्मा की पहचान कर लेता है, वही ब्राह्मण है चाहे उसका जन्म किसी भी जाति में क्यों न हुआ हो।

घट रामायण में वर्णित पूर्वजन्म का हाल

तुलसी साहिब ने घट रामायण के दूसरे भाग में गोस्वामी तुलसीदास के रूप में अपने पूर्वजन्म का उल्लेख किया है।

राजापुर जमुना के तीरा। जहें तुलसी का भया सरीरा॥ ...
संबत पंद्रासै नावासी। भादौं सुदी मंगल एकादसी॥
तिरिया बरत भाव मन राता। बिधि बिधि रीति चित्त सँग साथा॥ ...
जगत भाव ऊँचा सब भाँते। कुल अभिमान मान मतमाते॥[12]

आपने बताया है कि आपका जन्म यमुना के किनारे आबाद राजापुर नामक गाँव में संवत् 1589 (सन् 1532) में हुआ। आप कहते हैं कि मुझे ब्राह्मणों की ऊँची जाति कान्य कुब्ज में जन्म लेने का मान था और मेरे अंदर इंद्रिय विषय भोगों की लालसा और नारी का मोह समाया हुआ था।

एक बिधी चित रहौं सम्हारे। मिलै कोइ संत फिरौं तेहि लारे॥
संत साथ मोहि नीका भावै। ज्ञान अज्ञान एक नहिं आवै॥[13]

मन में भोग-विलास की कामना थी, परंतु इसके साथ ही हृदय में संतों की संगति की प्रबल इच्छा भी थी। संवत् 1614 में संत-सतगुरु की शरण के प्रताप से आपकी अवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ और वृत्ति बाहरमुखी से अंतर्मुख हो गई। आप लिखते हैं कि संवत् 1614 में सावन माह की, नौवीं तिथि को जब वे रात के समय ध्यान मग्न थे, तब अंदर बिजली की चमक दिखाई दी और शब्द की घनघोर ध्वनि सुनाई दी। प्रतिदिन रात को ऐसा होने लगा।

पुनि प्रति रोज रोज अस होई। एक दिवस सूरति चढ़ि जोई॥
नील सिखर गुरुद्वारे माहीं। निरखा अचरज कहा न जाई॥
कहँ लगि कहौं बिधी बिधि डंडा। पुनि सब निरिख परा ब्रह्मंडा॥
गंगा जमुना और त्रिबेनी। कँवल माहिं सतगुरु की सैनी॥

पद्म प्रयाग अगमपुर बासा। सतगुरु कंज सुरति पदपासा॥
तीनि लोक भीतर सब देखा। कहौ कहाँ लगि बिधि बिधि लेखा॥
जो ब्रह्मंड भरा जग माईं सो देखा सब घट में जाई॥[14]

एक दिन उनकी सुरत आंतरिक आकाश को चीरकर ब्रह्मांड को पार कर गई। वहाँ सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन हुए और सुरत गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम–इड़ा, पिंगला और सुखमना के मिलाप के स्थान–प्रयागराज में पहुँच गई। ब्रह्मांड की संपूर्ण रचना अंदर दिखाई देने लगी।

कस कस कहौं अगम बिधि नाना। एक दिवस चढ़ि अगम ठिकाना॥
वहँ की सैल चौज कछु भारी। अंड खंड ब्रह्मंड से न्यारी॥
अस अस देखा अगम तमासा। चौथा पद सतलोक निवासा॥
वे संत सतगुरु भेंटे जाई। सूरति सत्तनाम रही छाई॥[15]

उनकी सुरत अंतर में ऊपर चढ़ाई करती हुई परमपुरुष के अगम लोक, चौथे पद या सतलोक में पहुँच गई। इस प्रकार उन्हें अंतर में संत-सतगुरु के दर्शन हुए और उनकी सुरत सतनाम में समा गई।

तुलसी साहिब लिखते हैं कि मैंने अपने निजी आंतरिक अनुभव के आधार पर घट रामायण नामक ग्रंथ की रचना की है। मैंने इस ग्रंथ में यह रहस्य खोल दिया है कि संपूर्ण आध्यात्मिक रहस्य जीव के अपने 'घट' में है, बाहर कुछ नहीं है और आंतरिक रहस्य की प्राप्ति का साधन है–पूर्ण सतगुरु के उपदेशानुसार सुरत को शब्द में लीन करना। जब लोगों को घट रामायण के इस उपदेश का पता चला कि अनेक प्रकार के बाहरमुखी कर्मकांड, मूर्तिपूजा, तीर्थों का स्नान, ग्रंथ-शास्त्रों का पाठ-विचार आदि मुक्ति का साधन नहीं है तो सारी काशी में हिंदुओं, मुसलमानों, जैनियों आदि के पंडितों, पुरोहितों, क़ाज़ियों और धर्म के ठेकेदारों में शोर मच गया। उस समय उनका और उनके ग्रंथ का भारी विरोध शुरू हो गया। उनकी वाणी से एक उद्धरण इस प्रकार है:

ता से ग्रंथ गुप्त हम कीन्हा। घट रामायन चलन न दीन्हा॥ ...
सम्मत सोलासै इकतीसा। राम चरित्र कीन्ह पद ईसा॥
ईस कर्म औतारी भावा। कर्म भाव सब जगहि सुनावा॥
जग में झगरा जाना भाई। रावन राम चरित्र बनाई॥
पंडित भेष जग्त सब झारी। रामायन सुनि भये सुखारी॥
अंधा अंधे बिधि समझावा। घट रामायन गुप्त करावा॥[16]

आप कहते हैं कि व्यर्थ का झगड़ा समाप्त करने के लिये उस समय लिखी घट रामायण को मैंने गुप्त कर दिया और संवत् 1631 में रामचरितमानस की रचना की। मैंने उस ग्रंथ द्वारा अज्ञानी लोगों को उस विधि से ज्ञान देने की चेष्टा की, जिससे उन्हें सत्य का भेद भी मिल जाये और धर्म के ठेकेदारों को भी कोई आपत्ति न हो। रामचरितमानस में सत्य का उपदेश गुप्त विधि से दिया गया, जिसे लोगों ने बड़े चाव से ग्रहण किया।

कुछ विद्वानों ने पूर्व जन्म से संबंधित इस वृत्तांत के प्रति संदेह प्रकट किया है।* परंतु इस पुस्तक का उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करना नहीं है, बल्कि पाठक को इस समय उपलब्ध पुस्तकों के आधार पर तुलसी साहिब की वाणी के विषय में आवश्यक जानकारी देना है।

महत्त्वपूर्ण वृत्तांत

1) सेठ दिलवाली सिंह के घर आगमन

आगरा के सेठ दिलवाली सिंह और उनके परिवार के सदस्य तुलसी साहिब के शिष्य थे और उनके प्रेमी भक्त थे। तुलसी साहिब जब भी आगरा आते, उनके घर भी जाते थे। वहाँ सत्संग भी फ़रमाया करते थे। सन् 1817, अक्तूबर का महीना था। वर्षा के पश्चात सेठ दिलवाली के घर कीमती रेशमी कपड़े, जिन पर ज़री और तिल्ले की कढ़ाई थी, पशमीने की

* देखो: परशुराम चतुर्वेदी की उत्तरी भारत की संत परम्परा, 2010, पृ.459

क़ीमती शालें और अन्य गर्म कपड़े छत पर सुखाने के लिये डाले गये थे। एक दिन पहले हुई बारिश के कारण गलियों में बहुत कीचड़ था और तुलसी साहिब के चरण कीचड़ से सने हुए थे। तुलसी साहिब को आते देखकर सेठ दिलवाली सिंह की माता जी और अन्य औरतें ख़ुशी से फूली नहीं समाईं। उन्होंने तुलसी साहिब के चरणों पर शीश झुकाया और माता जी ने विनती की कि आप बाहर सूखने के लिये डाले गये वस्त्रों पर ही विराजमान हो जायें। तुलसी साहिब कीचड़ से सने चरणों से उन वस्त्रों पर चलकर उन पर बैठ गये। सतगुरु के प्रेम और भक्ति में मग्न घर की औरतों का ध्यान कपड़ों पर कीचड़ लगने की ओर नहीं गया। वे तो यह देखकर निहाल हो गईं कि तुलसी साहिब ने उनकी विनती स्वीकार करके उन कपड़ों पर अपने चरण रख दिये हैं। इस पर तुलसी साहिब ने फ़रमाया, 'अरे! मैंने तुम्हारे कीमती कपड़े ख़राब कर दिये हैं।' सेठ साहिब की माता ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, 'नहीं, साहिब जी! कुछ भी खराब नहीं हुआ, बल्कि आपने दर्शन देकर हमें निहाल किया है। सब कुछ आपका ही है, इसमें हमारा क्या है?' ऐसा भक्ति भाव देखकर तुलसी साहिब अति प्रसन्न हुए और फ़रमाया, 'मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूँ। जो माँगना है माँग लो, मैं ख़ुशी से दूँगा।'

इस पर सेठ दिलवाली सिंह जी की माता ने विनती की, 'साहिब जी! आपकी दया से मुझे किसी बात की कमी नहीं है। आपका दिया सब कुछ है, परंतु महामाया कुछ चाहती है।' माता जी ने अपनी बहू की तरफ़ संकेत करके यह बात कही, क्योंकि सेठ दिलवाली सिंह की पत्नी महामाया को पुत्र की कामना थी। तुलसी साहिब ने उसी दया भाव से कहा, 'अच्छा! इसके घर पुत्र होगा परंतु उस बालक को पुत्र-भाव से देखने की ग़लती न करना।'

अगस्त 1818 ई. में सेठ दिलवाली सिंह और महामाया के घर पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम शिवदयाल सिंह रखा गया। यही बालक बाद में परम संत स्वामी जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार स्वामी जी महाराज बचपन से ही तुलसी साहिब के बहुत नज़दीक थे और तुलसी

साहिब की इस मृत्युलोक की यात्रा के अंतिम दिन तक स्वामी जी महाराज को उनके दर्शन और संगति का लाभ प्राप्त हुआ। स्वामी जी महाराज को तुलसी साहिब से ही प्रकाश और उपदेश प्राप्त हुआ था और उनके हृदय में अपने सतगुरु के प्रति गहरा प्रेम और आदर था। अन्य सभी सेवकों की तरह स्वामी जी अपने सतगुरु को 'साहिब' या 'साहिब जी' कहकर संबोधित किया करते थे।

2) छोटे भाई बाजी राव से मुलाक़ात

तुलसी साहिब के घर छोड़कर चले जाने के बाद बहुत समय तक उनके परिवार को उनके ठिकाने के बारे में कुछ भी पता न चला। तुलसी साहिब की वाणी के संपादक ने सुरत बिलास ग्रंथ का हवाला देकर लिखा है कि घर से चले जाने के 42 वर्ष बाद उनकी अपने छोटे भाई से बिठूर (कानपुर) में अचानक मुलाक़ात हुई। सुरत बिलास के वर्णन अनुसार तुलसी साहिब गंगा के किनारे घूम रहे थे कि उन्होंने एक शूद्र और ब्राह्मण को आपस में झगड़ा करते हुए देखा। ब्राह्मण गंगा के घाट पर संध्या कर रहा था। शूद्र गंगा में स्नान कर रहा था, तभी उसके शरीर से पानी के कुछ छींटे ब्राह्मण पर पड़ गये। ब्राह्मण ने क्रोध में आकर उसे गालियाँ देना शुरू कर दिया। तुलसी साहिब के पूछने पर उसने शिकायत की कि इस शूद्र ने मुझे अपवित्र कर दिया है। मुझे दोबारा स्नान करना पड़ेगा और मेरे पास दूसरी धोती भी नहीं है। तुलसी साहिब ने उसे प्रेमपूर्वक समझाया, आपके ही शास्त्रों में लिखा है कि गंगा और शूद्र दोनों विष्णु के चरणों में से निकले हैं, फिर तुम एक को पवित्र और दूसरे को अपवित्र कैसे कह सकते हो?* यह सुनकर ब्राह्मण को अपनी अज्ञानता पर पछतावा हुआ।

गंगा के घाट पर जो लोग इकट्ठे हुए थे, उनमें से तुलसी साहिब के भाई बाजी राव के एक साथी ने तुलसी साहिब को पहचान लिया, क्योंकि जो भी एक बार उनके सुंदर और मनमोहक स्वरूप के दर्शन कर लेता था,

---

* *घट रामायण*, पृ. 2

वह स्वरूप उसकी आँखों में समा जाता था। उसने उसी समय बाजी राव को संदेश भेजा कि आपका भाई यहाँ आया हुआ है। यह पता चलने पर उनका भाई तुरंत वहाँ पहुँच गया। वह सम्मानपूर्वक तुलसी साहिब को घर ले आया। उसने तुलसी साहिब को अपने पास रखने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु वह उसके पास एक दिन रहकर चुपचाप वहाँ से चले गये।*

3) आश्चर्यजनक दया-मेहर

एक बार तुलसी साहिब, स्वामी जी महाराज के साथ एक मेले में गये। जब भीड़ तितर-बितर हो रही थी तब वह सड़क की एक ओर खड़े थे। इस समय तुलसी साहिब ने अपार दया-मेहर से फ़रमाया कि जो भी जीव इस समय प्रेम-प्यार के साथ शीश झुकायेगा, वह उसकी आत्मा को एकदम उच्च रूहानी मंडलों में ले जायेंगे। तुलसी साहिब जैसा महान दाता तो दया करने के लिये तैयार खड़ा था, परंतु इस दया से लाभ उठानेवाला कोई नहीं था।

मेले से वापस जा रहे उन हज़ारों लोगों में से केवल एक स्त्री जो कि वेश्या थी, तुलसी साहिब को देखकर उनके सामने आई और श्रद्धापूर्वक शीश झुकाया। तुलसी साहिब ने स्वामी जी से कहा कि अपना हाथ उसके सिर पर रख दो। इस पर स्वामी जी ने विनती की कि दाता तो आप हो और हाथ मुझे रखने के लिये कह रहे हो! इस पर तुलसी साहिब ने फ़रमाया कि भविष्य में आपको (स्वामी जी महाराज को) भी इस तरह करना होगा। वास्तव में दो संतों की दया-मेहर से उस औरत के आंतरिक नेत्र उसी समय खुल गये। उसे अंतर में दिव्य दृश्य दिखाई देने लगे और उसकी आत्मा की चढ़ाई ऊपरी सूक्ष्म मंडलों में होने लगी। कुछ देर के बाद जब उसकी सुरत शरीर में वापस आई तो उस औरत ने नतमस्तक होकर उनको धन्यवाद दिया और विदा ली।

---

* *घट रामायण*, पृ.2

4) बीबी फूलां को नसीहत

दो बीबियाँ तुलसी साहिब जी की सेवा में रहती थीं। उनमें से एक बीबी का नाम फूलां था। वह धनवान विधवा थी। एक दिन तुलसी साहिब ने कहा चल ससुरी माया की ग़ुलाम। बीबी फूलां के मन पर इन वचनों का गहरा प्रभाव पड़ा। उसने घर जाकर रुपयों की मुट्ठियाँ भर-भरकर बाहर फेंकनी शुरू कर दीं। एक सेवादार दौड़ा-दौड़ा आया और तुलसी साहिब को यह बात बताई। उन्होंने सेवादार को कहा: उसे जाकर कहो कि दौलत इस प्रकार बरबाद न करे, बल्कि साधसंगत पर ख़र्च करे।

5) दया और क्षमा का रूप

तुलसी साहिब हर प्रकार की बाहरमुखी पूजा, कर्मकांड आदि की खुलकर आलोचना करते थे।

भरमै चारों धाम काम इक ना सरै॥
पत्थर पानी साथ हाथ कछु ना लगा।[17]

पूजा और सेवा कर घंट बजावै।
कर कर पाखंड लोग बहुत रिझावै॥[18]

कर्मकांड का खुले आम विरोध करने के कारण कुछ लोग आप से नाराज़ हो गये। एक बार तुलसी साहिब किसी प्रेमी के घर से आ रहे थे कि कट्टर विचारों वाले कुछ लोगों ने गली के छोकरों को इकट्ठा किया और वे तुलसी साहिब जी को गालियाँ देने लगे और पत्थर मारने लगे। एक पत्थर आपके बिलकुल पास आकर गिरा, जिस कारण आपके एक शिष्य को ग़ुस्सा आ गया। वह शिष्य ग़ुस्से में आपे से बाहर होकर उस भीड़ पर टूट पड़ा। तुलसी साहिब ने उसे रोका कि वह इस प्रकार क्रोध न करे। आपने उसे समझाया कि मेरे साथ कोई अनोखा व्यवहार नहीं हो रहा है, इस संसार में लोगों ने मालिक के प्यारों के साथ हमेशा से ही ऐसा व्यवहार किया है – लोगों ने भक्तों की खालें उतरवा दीं, उन्हें सूली

पर चढ़ा दिया परंतु उन भक्तों के माथे पर न कभी शिकन आई, न कभी किसी को कोई कठोर शब्द कहा और न ही किसी को कोई बद्दुआ दी। तुलसी साहिब ने समझाया कि यह शोभा नहीं देता कि गालियाँ देने और पत्थर मारने जैसी मामूली-सी बात से तुम इस प्रकार से क्रोध में आ जाओ।

तुलसी साहिब नम्रता, प्रेम और क्षमा का साक्षात रूप थे। नि:संदेह वे अपने विचार बिना संकोच के प्रकट करते थे, परंतु उनका व्यवहार दया और सहनशीलता से भरपूर था। बड़े-बड़े विद्वान, पंडित, महंत एवं पुरोहित उनके साथ शास्त्रार्थ (वाद-विवाद) करने आते थे। उनमें से कई तो यह ठानकर आते थे कि आपसे झगड़ा ज़रूर करना है। वे कठोर और अपमान भरे शब्दों का प्रयोग करते थे, परंतु चाहे कोई कितनी भी शत्रुता की भावना रखकर क्यों न आता, तुलसी साहिब स्वयं उठकर प्रेमपूर्वक उसका स्वागत करते, उसे नम्रतापूर्वक प्रणाम करते और कहते कि आपने कुटिया पवित्र करके मेरा मान बढ़ाया है। आप ऐसे लोगों को ऊँचा आसन देते, स्वयं नीचे बैठते और उनकी कठोर आलोचना को ही नहीं, बल्कि घोर निंदा को भी बड़े धैर्य से सुनते थे। घट *रामायण* में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जब आपने अपने प्रेम और क्षमा पूर्ण व्यवहार से अपने कट्टर विरोधियों का भी दिल जीत लिया।

6) प्रेम की सुगंध

तुलसी साहिब स्वयं प्रेम का रूप थे और अपने शिष्य-सेवकों में भी सच्चा प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। एक बार आप आगरा गये और स्वामी जी महाराज के घर पन्नी गली में पधारे। आसपास की औरतों को पता चला कि सतगुरु आये हुए हैं तो वे दर्शनों के लिये दौड़ पड़ीं। उनमें से कई घर के कामकाज में लगी हुईं थीं और जिस हालत में थीं, उसी हालत में दौड़ी आईं। स्वामी जी के घर पहुँचकर वे सतगुरु के चरणों में शीश झुकाकर उनके पास-पास बैठ गईं। तुलसी साहिब के एक सेवक ने

उनके पसीने से भरे कपड़ों को देखकर कहा कि पीछे हटकर बैठो, तुम्हारे कपड़ों में से पसीने की दुर्गंध आ रही है। तुलसी साहिब ने उसे रोका और प्रेमपूर्वक कहा, 'नहीं, नहीं! इन्हें इसी प्रकार बैठे रहने दो। तुम्हें इनके प्रेम की सुगंध का पता नहीं है। तुम नहीं जानते कि ये कितने प्रेम-प्यार से आई हैं। तुम्हें इनसे दुर्गंध आ रही होगी, मुझे नहीं आती।'

7) स्वामी जी को अंतिम दर्शन

तुलसी साहिब स्वामी जी से बहुत प्रेम करते थे और स्वामी जी भी तुलसी साहिब से अत्यंत प्रेम करते थे। स्वामी जी फ़ारसी के विद्वान थे। इसलिये तुलसी साहिब स्वामी जी को प्यार से मुंशी जी कहा करते थे। जब आपका अंतिम समय नज़दीक आया तो आपने हुक्म दिया कि मुंशी जी को बुलाओ। जब स्वामी जी को संदेश मिला और उन्हें यह पता चला कि तुलसी साहिब संसार से वापस धुरधाम जाने की तैयारी में हैं तो आप जिस हालत में थे उसी में नंगे पाँव तुरंत हाथरस की तरफ़ दौड़ पड़े। कहा जाता है कि प्यारे सतगुरु के दर्शन करने के लिये आपको लगभग बीस मील का सफ़र तय करना पड़ा। जब स्वामी जी वहाँ पहुँचे तब तुलसी साहिब ने उन पर मेहर भरी दृष्टि डालने के पश्चात ही देह का त्याग किया।

तुलसी साहिब की रचनाओं का परिचय

तुलसी साहिब की रचनाओं में *घट रामायण, रत्न सागर* और *शब्दावली* के अलावा एक छोटी-सी अधूरी रचना *पद्म सागर* भी सम्मिलित है।

घट रामायण

तुलसी साहिब कहते हैं कि पूर्वजन्म में सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के कारण गुप्त की गई अपनी वृत्ति *घट रामायण* की इस जन्म में मैंने पुन: रचना की तथा उसमें अंतर का सारा भेद खोल दिया। वह इस प्रकार *घट रामायण* को लिखने का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहते हैं:

> *आदि अंत और अगम निवासा। ज्ञान भक्ति और जोग बिलासा॥*
> *पुनि बैराट राग रस भारी। अगम निगम मत कहा बिचारी॥*
> *गुरु सतगुरु मत मिलन मिलापा। छूटै तिमर अंध और आपा॥*
> *सतगुरु गगना गगन गुहारा। जब हिये नैना निरखि निहारा॥*[1]

आप कहते हैं कि मैंने कुछ भी निंदा के भाव से नहीं कहा है। मैंने तो उस अलख, अगम प्रभु का और उसके निज धाम का वर्णन किया है, जो सबका आदि और अंत है। मैंने प्रभुप्राप्ति के लिये अपनाये जानेवाले साधनों—ज्ञान, योग, कर्म और भक्ति आदि के विषय में निष्पक्ष भाव से चर्चा की है। मैंने अपने निजी अनुभव के आधार पर इस तथ्य का उल्लेख किया है कि प्रभु के साथ मिलाप के साधन और मार्ग का ज्ञान पूर्ण सतगुरु से प्राप्त होता है। पूर्ण सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से अज्ञानता का

अंधकार मिट जाता है और अहं भाव या हौंमैं से छुटकारा मिल जाता है। आत्मा के नेत्र खुल जाते हैं और वह आंतरिक आकाश में चढ़ाई करती हुई स्वयं परमसत्य का प्रत्यक्ष अनुभव कर लेती है।

इस रचना का उद्देश्य कथा-कहानी सुनाना नहीं, बल्कि गूढ़ पारमार्थिक रहस्य खोलना है। गूढ़ परमार्थी अर्थ को धारण करने के कारण *घट रामायण* समय-स्थान के बंधन से परे हो गई है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग के आधे हिस्से में यह रहस्य प्रकट किया गया है कि परमार्थ का समस्त भंडार जीव के अंदर है और आत्मा को अंतर में ही इसकी खोज करनी चाहिये। इसके बाद संवाद शुरू हो जाते हैं जो पुस्तक के दूसरे भाग के अंत तक चलते हैं।

शिष्य और गुरु, जिज्ञासु और संत-महात्मा के बीच के संवाद द्वारा अपना उपदेश समझाने की परंपरा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। *घट रामायण* के दोनों भागों में भी इसी प्रकार तुलसी साहिब के अनेक व्यक्तियों के साथ हुए संवाद सम्मिलित हैं। इन व्यक्तियों में से कुछ का संबंध इसलाम और हिंदू धर्म से था और कुछ का अलग-अलग संतों का अनुसरण करनेवालों के साथ था। इन संवादों में जीव और धर्मराज के मध्य हुए वार्तालाप और लोमष ऋषि का अपने पिता के साथ हुआ वार्तालाप भी शामिल है। इन संवादों का वास्तविक उद्देश्य जिज्ञासु को इस सत्य के प्रति सचेत करना है कि अलग-अलग धर्मों के अनुयायियों और प्रचारकों ने अपने-अपने धर्मों के बारे में जो मान्यतायें बनाई हुई हैं, वे उन धर्मों के मुख्य सिद्धांतों के अनुकूल नहीं हैं। इन संवादों द्वारा तुलसी साहिब ने जहाँ एक ओर अलग-अलग धर्मों के मूल स्वरूप को उजागर करने का प्रयत्न किया है, वहीं दूसरी ओर संतमत के सिद्धांतों को सामने रखते हुए अलग-अलग धर्मों के मूल उपदेश पर विचार करने का संदेश दिया है। इसके साथ ही अपने आप को कबीर साहिब, गुरु नानक साहिब आदि संतों का शिष्य माननेवाले लोगों को तुलसी साहिब ने उन संतों के उपदेश को उसके वास्तविक स्वरूप में देखने और समझने की प्रेरणा दी है।

घट रामायण का अर्थ आंतरिक रामायण है। तुलसी साहिब बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि प्रभु भी अंदर है, उसके द्वारा रची गई संपूर्ण सृष्टि भी सूक्ष्म रूप में हमारे अंदर है और उसके साथ मिलाप करने का साधन, शब्द यानी नाम भी हमारे अंदर है। जब तक जीव ध्यान को बाहर से अंदर पलटकर शब्द के साथ नहीं जोड़ता, वह घट रामायण यानी आंतरिक रामायण का रहस्य नहीं जान सकता। आप स्पष्ट करते हैं कि जीव के उद्धार का साधन रामायण का केवल पाठ-विचार नहीं है बल्कि आंतरिक रामायण का निजी अनुभव है। वह अनुभव प्रभु के प्रत्यक्ष रूप संत-सतगुरु की दया से अंदर शब्द के साथ लिव जोड़ने से प्राप्त होता है।

कबीर साहिब का यह दोहा भी घट रामायण यानी आंतरिक रामायण के उपदेश को समझने के लिये सहायक होगा:

एक राम दशरथ घर डोलै। एक राम घट घट में बोलै।
एक राम का सकल पसार। एक राम त्रिभुवन ते न्यारा॥[2]

संतजन मानते हैं कि राम के चार स्वरूप हैं। एक राम राजा दशरथ का पुत्र है। दूसरा राम मन है, जो प्रत्येक घट में रमा हुआ है। तीसरा सृष्टि का कर्ता या शासक है जो दूसरे रूहानी मंडल का मालिक ब्रह्म या काल है। चौथा राम सतलोक का स्वामी परमपिता परमेश्वर है। वह सर्वव्यापक परंतु निर्लिप्त है। उसे संतों ने दयाल पुरुष कहा है।

तुलसी साहिब ने इस रचना में 5 तत्त्वों; 25 प्रकृतियों; 36 प्रकार के पानी; 85 प्रकार की पवन; 9 मुख्य नाड़ियों; 14 भवनों; 22 सुन्न; 16 आकाशों; 72 कोठों; 6 प्रकार की भँवरगुफाओं; 6 प्रकार की त्रिकुटी; 32 प्रकार के बँकनाल; 24 तीर्थंकरों; 84 सिद्धों आदि का वर्णन किया है। आपने अंदर चार मंडलों में सतगुरु के स्वरूप का अलग-अलग रूप में बोध होने का भी वर्णन किया है। आपने बाहरी चार वेदों के अलावा आंतरिक छः वेदों की ओर संकेत किया है। आपने रामचरितमानस के सबसे महत्त्वपूर्ण उपदेश 'नवधा भक्ति' का भी शब्द के आंतरिक अभ्यास के आधार पर विस्तारपूर्वक वर्णन किया है तथा चार प्रकार की भक्ति

और बताई है। इस प्रकार कुल तेरह प्रकार की भक्ति का भेद सुरत के आंतरिक अनुभव द्वारा शरीर में ही समझा जा सकता है:

तेरा भक्ति बयान, सो प्रमान संतन कही।
तुलसी तनहिं बिचारि, सुरति भेद समझै कोई॥[3]

घट रामायण में 34 प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं। इनमें से कुछ प्रश्न इस प्रकार हैं: धरती का मस्तक कहाँ है? सूर्य का तेज कहाँ है? चंद्रमा की ज्योति कहाँ है? समुद्र का स्रोत कहाँ है? सुन्न का शब्द कहाँ है? ज्ञान का मूल क्या है? संक्षेप में तुलसी साहिब की यह रचना आध्यात्मिक ज्ञान का अक्षय भंडार है।

रत्न सागर

तुलसी साहिब का रत्न सागर परमार्थ के बहुपक्षीय, अनंत और गूढ़ ज्ञान का अथाह सागर है। इसमें तुलसी साहिब ने सृष्टि की रचना से पूर्व की अवस्था, सृष्टि की रचना की विधि, जीवात्मा का प्रभु के साथ संबंध, जीव कैसे रचना का अंग बना, चार खानियों और चौरासी लाख योनियों में इसके भटकते रहने के कारण और इससे मुक्त होने के साधन का उल्लेख किया है। उन्होंने विस्तारपूर्वक समझाया है कि मनुष्य कौन-से कर्मों के कारण निम्न योनियों में जा गिरता है और फिर वह मनुष्य-योनि में कैसे पहुँचता है। आपने मन, काल और माया के अद्भुत प्रसार का उल्लेख किया है और मन-माया द्वारा भ्रमित जीव को घोर पापों का फल भोगने के लिये जिन नरकों का निवासी बनना पड़ता है, उनका भी उल्लेख किया है। आपने तथाकथित या पाखंडी साधुओं के लक्षण बताये हैं और सच्चे साधु या संत के गुण, कर्म, स्वभाव पर भी प्रकाश डाला है। आपने संत-सतगुरु द्वारा समझाई गई युक्ति के अनुसार सुरत-शब्द का अभ्यास करनेवाले साधक की आंतरिक रूहानी मंडलों में चढ़ाई का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

आपने अनेक प्रसंगों में बार-बार इस बात पर बल दिया है कि कर्म-बंधन से छुटकारे का साधन कर्म नहीं हैं। बुरे कर्मों के कारण नरकों

में जाना पड़ता है तो श्रेष्ठ कर्मों के कारण स्वर्ग में निवास मिल जाता है, परंतु चौरासी से छुटकारा नहीं मिल सकता।

आप समझाते हैं कि मूर्तिपूजा, तीर्थों के स्नान, हठकर्मों, धर्मग्रंथों के पाठ-विचार, अवतारों की पूजा-भक्ति आदि किसी भी साधन द्वारा जीव देह और चौरासी के जाल से मुक्त होकर निजघर वापस नहीं जा सकता। निजघर वापस पहुँचने का एकमात्र साधन परमधाम से आये पूर्ण संत-सतगुरु की शरण, उनका सत्संग और उनके द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार सुरत को शब्द यानी नाम के साथ जोड़ना है। सृष्टि के आरंभ से सभी पूर्ण संत इस एकमात्र साधन और मार्ग का उपदेश देते आये हैं। यह साधन और मार्ग जीव के अंदर है। जीव को जो भी पारमार्थिक लाभ होता है, संत-सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार सुरत को अंदर शब्द में लीन करने से ही होता है।

रत्न सागर में अपने शिष्य हिरदे के साथ हुए विस्तृत संवाद द्वारा यही उपदेश दिया गया है।

> *हिरदे से तुलसी कहे, रहे अगम के पार।*
> *जो निरधार संतन कही, सो सतगुरु पद सार॥*[4]

यहाँ हिरदे शिष्य है और तुलसी साहिब गुरु। आप फ़रमाते हैं: हे हिरदे! उस अलख, अगम प्रभु के साथ-जो अपना आधार आप है-अंदर ही मिलाप किया जा सकता है। सभी संतों ने शरीर के अंदर से ही प्रभुरूपी रत्न या परमतत्त्व की प्राप्ति का उपदेश दिया है। प्रभु का परमधाम ही सतगुरु का निज धाम है।

रत्न सागर और अनुराग सागर में समानता

परमार्थ की खोज की दृष्टि से तुलसी साहिब के *रत्न सागर* तथा कबीर साहिब के *अनुराग सागर* में बहुत समानता है। यह समानता परमार्थ के अलग-अलग अंगों तथा उन्हें प्रस्तुत करने के ढंग आदि में अधिक दिखाई

देती है। *अनुराग सागर* में कबीर साहिब का शिष्य धर्मदास प्रश्न करता है और कबीर साहिब उसके प्रश्नों के उत्तर देते हैं। *रत्न सागर* में तुलसी साहिब का शिष्य हिरदे प्रश्न करता है और तुलसी साहिब उसके प्रश्नों के उत्तर देते हैं। आरंभ से अंत तक दोनों रचनाएँ प्रश्न-उत्तर की शैली में रची गई हैं।

दोनों रचनाओं में सृष्टि से पूर्व की अवस्था; परमात्मा के सुन्न समाधि की अव्यक्त अवस्था से रचयिता के रूप में प्रकट होने; सृष्टि की रचना; इसे काल के सुपुर्द किये जाने; जीवों को प्रभु द्वारा सृष्टि में भेजे जाने; काल और माया द्वारा जीवों को सृष्टि में क़ैद रखने के लिये बनाये गये आशा-तृष्णा, विषय-विकारों, कर्म और फल के जाल आदि के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। इन रचनाओं में पाखंडी भक्तों और साधुओं की मनोवृत्ति और सच्चे परमार्थी, साधु, संत या गुरुमुख के गुण, कर्म तथा स्वभाव का उल्लेख किया गया है। दोनों रचनाओं में दर्शाया गया है कि पूर्ण संत प्रभु के निज धाम से जीवों को काल के जाल से मुक्त करने के लिये सदैव आते रहते हैं।

कबीर साहिब *अनुराग सागर* का समापन करते हुए कहते हैं:

> *सब्द सुरति करु मेल, सब्द मिले सतगुरु चले॥*
> *बुन्द सिन्धु का खेल, मिले दूजा कोइ कहे॥*
> *सब्द सुरति का खेल, सतगुरु मिले लखावई॥*
> *सिन्धु बुन्द को मेल, मिलै न दूजा कोइ कहै॥*
> *मन को दसा बिहाय, गुरु मारग निरखत चले॥*
> *हंस लोक कहँ जाय, सुख सागर सुख सो लहे॥*
> *बुन्द जीव अनुमान, सिंधु नाम सतगुरु सही॥*
> *कहे कबीर प्रधान, धर्मदास तुम बूझहू॥*[5]

आप समझाते हैं: हे धर्मदास! जिस प्रकार समुद्र में समाई बूँद, समुद्र का ही रूप हो जाती है और उसे समुद्र से अलग नहीं किया जा सकता,

उसी प्रकार सुरत शब्दरूपी सागर की बूँद है। जो शिष्य सतगुरु के उपदेशानुसार सुरत को शब्द में लीन कर देता है, उसकी सुरत शब्द के सागर में समाकर उसका ही रूप हो जाती है।

आप समझाते हैं कि सतगुरु का वास्तविक स्वरूप भी शब्द है और सुरत का वास्तविक स्वरूप भी शब्द है। सुरत का शब्द में लीन हो जाना ही सतगुरु में लीन होना है और फिर इसका शब्द के सागर में समा जाना, प्रभु में अभेद हो जाना है। फिर सुरत मन के पंजे से आज़ाद हो जाती है और उसे शब्द के सागर से अलग नहीं किया जा सकता। तब सुरत आनंदरूप प्रभु में समाकर आनंदरूप हो जाती है और आवागमन के दु:खदायक चक्कर से सदा के लिये मुक्त हो जाती है। तुलसी साहिब रत्न सागर के अंत में कहते हैं:

तुलसी हिये हुलसी लखो, हिरदे हरख बयान।
जानि जन्म नर तन यही, कही सब संत बखान॥
नर तन में निरनै लखे, रखे सुरति समझाय।
चाह रखे नहिं अंत की, सतगुरु सब्द समाय॥
नर तन दुरलभ ना मिले, खिले कँवल रस माहिं।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय॥
रतन जतन सागर मही, कही जो निरनै छान।
ब्यान बरन बिख्यान सब, बूझे बचन प्रमान॥
हिरदे से तुलसी कहे, रहे अगम के पार।
जो निरधार संतन कही, सो सतगुरु पद सार॥[6]

हे हिरदे! सब संतों ने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य-जन्म के अनमोल अवसर से लाभ उठाओ और संत-सतगुरु की शरण लेकर सुरत को अंदर शब्दरूपी गुरु में लीन कर दो। इससे तुम्हें अगम-धाम के अमर-फल को पाने का यानी प्रभुप्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा।

प्रभु को प्रेम का सागर कहो, या अनमोल रत्नों से भरा सागर कहो, एक ही बात है। दोनों पूर्ण संत यह समझाते हैं कि वह सागर अंदर है और उसमें समाकर उसका रूप हो जाने का साधन है, सतगुरु के उपदेशानुसार सुरत को शब्द में लीन करना।*

शब्दावली

शब्दावली आपके फुटकल शब्दों, रेखतों, कवित्तों आदि का संग्रह है, जो भिन्न-भिन्न रागों में रचित है और संतमत के अलग-अलग पहलुओं पर प्रकाश डालती है। तुलसी साहिब ने इनमें आत्मा और परमात्मा के परस्पर संबंध, सृष्टि से पहले की अवस्था, प्रभु द्वारा सृष्टि की रचना किये जाने, सृष्टि में कार्यशील काल, माया और मन की शक्तियों आदि का उल्लेख किया है। आपने यह भी समझाया है कि अवतारों की पूजा में और उस एक अकालपुरुष की भक्ति में क्या अंतर है। आपने संत-सतगुरु की सहायता से सुरत को शब्द के साथ जोड़कर आंतरिक मंडलों में पहुँचने को ही प्रभु की सच्ची भक्ति स्वीकार किया है।

इसमें संकलित ककहरा और बारह मासा के माध्यम से उन्होंने जीवों को चेतावनी दी है और भक्ति का सही मार्गदर्शन किया है। इन दोनों रचनाओं में संतमत का संपूर्ण सार समाया हुआ है।

पद्म सागर

तुलसी साहिब की यह एक अधूरी रचना है। इसमें उन्होंने अपने शिष्य हिरदे की परमार्थ संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान दिया है। इसके साथ ही अंतर में शब्द से जुड़ने का उपाय भी बताया है।

---

* संतदास महेश्वरी ने अपनी पुस्तक *परम संत तुलसी साहिब* में तुलसी साहिब की वाणी में से 96 संकलित शब्दों और *घट रामायण* में अंकित तुलसी साहिब के अलग-अलग जिज्ञासुओं के साथ हुए संवाद का हिंदी अनुवाद सम्मिलित किया है, जिससे तुलसी साहिब की वाणी को समझने में सहायता मिलती है।

उसी प्रकार सुरत शब्दरूपी सागर की बूँद है। जो शिष्य सतगुरु के उपदेशानुसार सुरत को शब्द में लीन कर देता है, उसकी सुरत शब्द के सागर में समाकर उसका ही रूप हो जाती है।

आप समझाते हैं कि सतगुरु का वास्तविक स्वरूप भी शब्द है और सुरत का वास्तविक स्वरूप भी शब्द है। सुरत का शब्द में लीन हो जाना ही सतगुरु में लीन होना है और फिर इसका शब्द के सागर में समा जाना, प्रभु में अभेद हो जाना है। फिर सुरत मन के पंजे से आज़ाद हो जाती है और उसे शब्द के सागर से अलग नहीं किया जा सकता। तब सुरत आनंदरूप प्रभु में समाकर आनंदरूप हो जाती है और आवागमन के दु:खदायक चक्कर से सदा के लिये मुक्त हो जाती है। तुलसी साहिब रत्न सागर के अंत में कहते हैं:

तुलसी हिये हुलसी लखो, हिरदे हरख बयान।
जानि जन्म नर तन यही, कही सब संत बखान॥
नर तन में निरनै लखे, रखे सुरति समझाय।
चाह रखे नहिं अंत की, सतगुरु सब्द समाय॥
नर तन दुरलभ ना मिले, खिले कँवल रस माहिं।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय॥
रतन जतन सागर मही, कही जो निरनै छान।
ब्यान बरन बिख्यान सब, बूझे बचन प्रमान॥
हिरदे से तुलसी कहे, रहे अगम के पार।
जो निरधार संतन कही, सो सतगुरु पद सार॥[6]

हे हिरदे! सब संतों ने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य-जन्म के अनमोल अवसर से लाभ उठाओ और संत-सतगुरु की शरण लेकर सुरत को अंदर शब्दरूपी गुरु में लीन कर दो। इससे तुम्हें अगम-धाम के अमर-फल को पाने का यानी प्रभुप्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा।

प्रभु को प्रेम का सागर कहो, या अनमोल रत्नों से भरा सागर कहो, एक ही बात है। दोनों पूर्ण संत यह समझाते हैं कि वह सागर अंदर है और उसमें समाकर उसका रूप हो जाने का साधन है, सतगुरु के उपदेशानुसार सुरत को शब्द में लीन करना।*

शब्दावली

शब्दावली आपके फुटकल शब्दों, रेखतों, कवित्तों आदि का संग्रह है, जो भिन्न-भिन्न रागों में रचित है और संतमत के अलग-अलग पहलुओं पर प्रकाश डालती है। तुलसी साहिब ने इनमें आत्मा और परमात्मा के परस्पर संबंध, सृष्टि से पहले की अवस्था, प्रभु द्वारा सृष्टि की रचना किये जाने, सृष्टि में कार्यशील काल, माया और मन की शक्तियों आदि का उल्लेख किया है। आपने यह भी समझाया है कि अवतारों की पूजा में और उस एक अकालपुरुष की भक्ति में क्या अंतर है। आपने संत-सतगुरु की सहायता से सुरत को शब्द के साथ जोड़कर आंतरिक मंडलों में पहुँचने को ही प्रभु की सच्ची भक्ति स्वीकार किया है।

इसमें संकलित ककहरा और बारह मासा के माध्यम से उन्होंने जीवों को चेतावनी दी है और भक्ति का सही मार्गदर्शन किया है। इन दोनों रचनाओं में संतमत का संपूर्ण सार समाया हुआ है।

पद्म सागर

तुलसी साहिब की यह एक अधूरी रचना है। इसमें उन्होंने अपने शिष्य हिरदे की परमार्थ संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान दिया है। इसके साथ ही अंतर में शब्द से जुड़ने का उपाय भी बताया है।

---

* संतदास महेश्वरी ने अपनी पुस्तक *परम संत तुलसी साहिब* में तुलसी साहिब की वाणी में से 96 संकलित शब्दों और *घट रामायण* में अंकित तुलसी साहिब के अलग-अलग जिज्ञासुओं के साथ हुए संवाद का हिंदी अनुवाद सम्मिलित किया है, जिससे तुलसी साहिब की वाणी को समझने में सहायता मिलती है।

भाषा और शैली

तुलसी साहिब की वाणी में संस्कृत, अरबी तथा फ़ारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। फ़ारसी, दक्षिण के कुछ राज्यों की सरकारी भाषा थी और उन दिनों अधिकतर उसी भाषा का प्रयोग किया जाता था। संभव है कि तुलसी साहिब ने छोटी आयु में शिक्षा ग्रहण करते समय मराठी के साथ-साथ संस्कृत, अरबी और फ़ारसी भाषाओं की भी शिक्षा ली हो। इसके अलावा उन्होंने ब्रज, अवधी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी और मैथिली आदि कई भाषाओं के शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया है। इससे यह पता चलता है कि अन्य सभी संतों की तरह तुलसी साहिब ने भी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब और बिहार आदि का भ्रमण किया होगा।

तुलसी साहिब की वाणी बहुत मार्मिक है। उनका मुख्य उद्देश्य श्रेष्ठ कवि या महाकवि बनना नहीं था। कविता उनके लिये अपने भाव प्रकट करने का साधन मात्र है जिसके कारण छंद और अलंकार आदि का महत्त्व गौण है। फिर भी भावों की गहराई, उपमाओं का अनूठापन, अलंकार के सुंदर प्रयोग इत्यादि गुण उनकी वाणी में पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं। उनके पद संगीतमय और मधुर हैं। इनमें से कई तुलसी साहिब के समय प्रचलित लोक गीतों की धुनों पर रचे गये हैं। प्रभु-प्रेम और विरह के अनेक शब्द इतने प्रभावशाली हैं कि स्वाभाविक रूप से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। गूढ़ आध्यात्मिक अनुभवों से संबंधित तुलसी साहिब के शब्द प्रेरणा और आनंद से भरपूर हैं। उन्होंने अपनी वाणी में बाहरमुखी क्रियाओं और कर्मकांडों का बड़ी निडरता से खंडन किया है, परंतु उनकी स्वाभाविक नम्रता और प्रेम के प्रभाव के कारण ऐसे वर्णन भी मीठे और कोमल बन गये हैं।

उपदेश

संपूर्ण मनुष्य-जाति के लिये एक ही उपदेश

तुलसी साहिब कहते हैं कि सभी पूर्ण संत-महात्माओं का एक ही उपदेश और संदेश होता है। पूर्ण संत-महात्मा कोई नया मत, संप्रदाय या धर्म स्थापित करने के लिये नहीं आते और न ही वे लोगों के सामाजिक, राजनीतिक विवाद सुलझाने या उनकी आर्थिक अवस्था सुधारने के लिये आते हैं। वे जीवों को अनेकता से एकता में लाने की कोशिश करते हैं। संत-महात्मा विशेष समय और स्थान के अनुसार विशेष भाषा और मुहावरे में अपनी बात कहते हैं, परंतु उनका उपदेश संपूर्ण मानव-जाति के लिये होता है:

तुलसी सत्त सत्त कहि भाखी। जस जस सूझ जौन जेहि आँखी॥
फूलदास बिधि सुनहु बनाई। येहि बिधि तुलसी ग्रंथन गाई॥
और कबीर दादू रैदासा। दरिया नानक अगम तमासा॥
सूरदास नाभा अरु मीरा। औरौ संत अगम मति धीरा॥
अरु अस बिधि सब साखि बनाई। सो सो सभन अगम गति गाई॥
जस जस मैं पुनि भाखि सुनावा। संत कृपा रज महुँ पुनि गावा॥[1]

तुलसी साहिब एक जिज्ञासु, फूलदास के प्रश्न का उत्तर देते हुए समझाते हैं: जो उपदेश मैंने अपनी रचनाओं में दिया है, वह आंतरिक

निजी अनुभव पर आधारित है। यह उपदेश नया या अलग नहीं है। कबीर साहिब, दादू साहिब, रविदास जी, दरिया साहिब, गुरु नानक साहिब, सूरदास, नाभा दास, मीरा बाई आदि प्रभु के परमधाम तक पहुँच रखनेवाले पूर्ण संतों ने भी इसी साधन और मार्ग का उपदेश दिया है। आप कहते हैं कि मैं तो संतों के चरणों की धूलि हूँ और मैंने जो कुछ भी कहा है, संतों की कृपा से आंतरिक अनुभव के आधार पर ही कहा है।

॥ दोहा ॥

फूलदास तुलसी कहै, सन्त शब्द की रीत।
जो जो गये अगाध को, सोइ सोइ सन्त समीर॥

॥ छन्द ॥

तुलसी गति गाई सब्द सुनाई, पंथ अगम सुर्त सार भई॥
नानक और दादू दरिया साधू, मीर सूर कबीर कही॥
नाभा नभ जानी भाखि बखानी, सुरति समानी पार गई॥
सब की बिधि न्यारी एक बिचारी, सब संतन इक राह लई॥
सब चढ़े इक धारा पहुँचे पारा, लखा गगन गति गवन गई॥
कोइ करिहै संका महामति रंका, तुलसी डंका दीन्ह सही॥
ये संतमत भाखा देखा आँखा, साखि सब्द में गाइ कही॥
ये करी बखाना भेष न जाना, सब्द निसाना सुरति लई॥[2]

तुलसी साहिब कहते हैं: प्रिय फूलदास! सब संतों ने अपने निजी अनुभव के आधार पर, अपने-अपने ढंग से शब्द को ही परमात्मा की प्राप्ति का एकमात्र साधन स्वीकार किया है। जिसे इस मार्ग के विषय में तनिक भी शंका है, वह नासमझ है, मैं डंके की चोट पर कह रहा हूँ कि शब्द ही प्रभुप्राप्ति का सच्चा मार्ग है। सभी संतों ने स्वयं इस मार्ग पर चलकर अपने अंदर सत्य का अनुभव किया और अपने शिष्यों को भी इस साधन और मार्ग का उपदेश दिया है। अन्य कई अलग-अलग भेष धारण

करनेवाले महात्माओं को इस मार्ग की समझ नहीं है। जो कोई भी, जब कभी प्रभु के साथ मिलाप करने में सफल हुआ है, वह सुरत को शब्द के साथ जोड़नेवाले इसी सच्चे मार्ग पर चलकर ही सफल हो पाया है।

जस जस संत कहा घट लेखा। तस तस तुलसी नैनन देखा॥[3]—तुलसी साहिब समझाते हैं कि संतों का ज्ञान केवल पढ़ने-सुनने पर नहीं, बल्कि अंदर से प्राप्त हुए निजी अनुभव पर आधारित होता है।

परशुराम चतुर्वेदी ने *उत्तरी भारत की संत परम्परा** नामक पुस्तक में लिखा है कि तुलसी साहिब ने अपने उपदेश को संतमत कहा है। वह इस बात पर बल देते हैं कि सभी पूर्ण संत उस अनंत-अथाह परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग पर चलकर उस परमधाम तक अपनी पहुँच रखते हैं, जहाँ ब्रह्म अर्थात् त्रिलोकीनाथ की भी पहुँच नहीं है। तुलसी साहिब कहते हैं कि सत्संग और सतगुरु ने मुझे अपनी ओर खींच लिया है तथा सतगुरु के उपदेश की समझ आ जाने पर मैंने कोई अलग मत चलाने की आवश्यकता महसूस नहीं की। यही कारण है कि उन्होंने अपने से पहले हुए अनेक संतों के प्रति श्रद्धा प्रकट की है और उनके उपदेश को संतमत का उपदेश कहकर उसका गुणगान किया है।

मनसूर, सरमद, बूअली, और शम्स मौलाना हूये।
पहुंचे सभी इस राह से जिस ने कि दिल पुखता कीया॥[4]

तुलसी साहिब समझाते हैं कि सूफ़ी दरवेश मनसूर, सरमद, बू अली कलंदर, शम्स तब्रेज़, मौलाना रूम आदि ने भी इसी मार्ग पर चलकर परमात्मा से मिलाप किया।

सब संतन ने भाखि सुनाई। सब्दन माहिं दीन्ह दरसाई॥
ऐनक आँखि ताकि कर देखा। जब कछु सूझा बूझ बिबेका॥

---

* उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ.461

हिये नैन दुरबीन दिखावे। जब आगे की सुधि बुधि पावे॥
बहुत नजीक दूर बहु भाई। जाने मँजिल राह जिन पाई॥[5]

सभी पूर्ण संतों ने सुरत को शब्द के साथ जोड़कर परमात्मारूपी परमसत्य के दर्शन करने का उपदेश दिया है। संतों द्वारा बख़्शी युक्तिरूपी ऐनक द्वारा अपने अंदर झाँकने से उस सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है। संत दिव्य दृष्टि की वह दूरबीन बख़्श देते हैं, जिससे ऊँचे रूहानी मंडलों का मार्ग स्पष्ट दिखाई देने लगता है। जो रास्ता बहुत दूर प्रतीत होता था, नज़दीक दिखाई देने लगता है और उस पर चलनेवाला साधक अंततः मंज़िल पर पहुँच जाता है।

प्रभुप्राप्ति के साधन और मार्ग को किसी विशेष संत-महात्मा ने ईजाद नहीं किया है। जिस प्रभु ने सृष्टि की रचना की है, उसने स्वयं ही सृष्टि के आरंभ में अपने मिलाप के साधन और मार्ग का सृजन भी किया है। वह प्रभु इस साधन का ज्ञान देने के लिये पूर्ण संतों के रूप में समय-समय पर इस संसार में आता रहता है।

आगरा के परम संत स्वामी शिव दयाल सिंह जी – जिन्हें तुलसी साहिब से ज्ञान प्राप्त हुआ था – लिखते हैं:

> 'थोड़े से नाम पूरे और सच्चे सन्तों के और सच्चे साध और फ़क़ीरों के जो पिछले सात सौ बर्ष में प्रगट हुए हैं। यहाँ लिखे जाते हैं: कबीर साहिब, तुलसी साहिब, जगजीवन साहिब, ग़रीब दास जी, पलटू साहिब, गुरु नानक साहिब, दादू जी, तुलसी दास, नाभा जी, स्वामी हरिदास जी, सूरदास जी, और रैदास जी तथा मुसलमानों में शम्स तब्रेज़, मौलवी रूम, हाफ़िज़, सरमद, मुजदद अलिफ़सानी। इन साहिबों के बचन बानी देखने से हाल उनकी पहुँच और स्थान का मालूम हो सकता है।'[6]

तुलसी साहिब ने अलग-अलग समय, स्थान और देशों से संबंधित कई पूर्ण पुरुषों की महिमा की है। संसार का प्रत्येक सच्चा संत अन्य संतों का गुणगान करता है और कोई भी पूर्ण संत कभी यह दावा नहीं करता कि वह संसार में कोई नया उपदेश लेकर आया है।

पूर्ण संत अनादि काल से जीव को जो उपदेश देते आ रहे हैं, उसके महत्त्वपूर्ण पहलू इस प्रकार हैं:

1. यह संसार परमात्मा की रचना है। आरंभ में परमात्मा था। उसके अलावा कुछ भी नहीं था। उसकी इच्छा, मौज या हुक्म से संपूर्ण सृष्टि प्रकट हुई। सूर्य आकाश में होता है, परंतु उसकी किरणें पूरे संसार पर पड़ती हैं। उसी प्रकार परमात्मा सतलोक में है, परंतु उसकी शक्ति रचना के कण-कण में समाई हुई है और वह स्वयं इस रचना से पूरी तरह निर्लिप्त है।
2. सृष्टि की रचना से पहले सब आत्माएँ परमात्मा में समाई हुई थीं। वे परमात्मा के हुक्म से संसार में आई हैं। आत्मा, परमात्मा की अंश है और इसमें परमात्मा के सभी गुण मौजूद हैं।
3. सृष्टि का रचयिता परमात्मा कहीं बाहर नहीं है, जीव के अंदर है। प्रत्येक जीवात्मा अपने विशुद्ध आत्मिक स्वरूप की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान करने में समर्थ है।
4. परमात्मा अमर-अविनाशी है। वह आवागमन के दायरे से ऊपर है। वह शक्ति, ज्ञान, आनंद और प्रेम का रूप है। अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान करनेवाली आत्मा आवागमन के दायरे से सदा के लिये ऊपर उठ जाती है। वह प्रभु की तरह ही शक्तिरूप, ज्ञानरूप, आनंदरूप और प्रेमरूप हो जाती है।
5. त्रिलोकी तक की संपूर्ण रचना माया का खेल है। यह परिवर्तनशील और नाशवान है। इसके सुख या भोग भी क्षणभंगुर और नाशवान हैं। इंद्रियों का सुख और मानसिक विलास, आत्मिक आनंद का स्थान नहीं ले सकते। माया के ये भोग सुख का साधन नहीं, दुःख का

कारण हैं, क्योंकि इनकी प्राप्ति के लिये किये गये कर्म जीव को आवागमन के दु:खदायक चक्कर से बाँध देते हैं।

6. आत्मा को पूर्ण और अविनाशी आनंद परमात्मा के मिलाप द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। परमात्मा से मिलाप की युक्ति सतगुरु से प्राप्त होती है। सतगुरु शिष्य की सुरत को अनहद शब्द के साथ जोड़ देता है। शब्द का अभ्यास करती हुई जीवात्मा प्रभुधाम में पहुँच जाती है।

परमात्मा और उसकी रचना

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में सृष्टि से पहले की अवस्था; परमपुरुष प्रभु के निज धाम; सार शब्द, सृष्टि की रचना करने की प्रक्रिया; त्रिलोकी तक की नाशवान माया की रचना और उसके ऊपर की परमचेतन अविनाशी रचना; सृष्टि के नाश (प्रलय) होने की प्रक्रिया; काल, ब्रह्म, मन, माया; तीन गुणों, पाँच तत्त्वों, पच्चीस प्रकृतियों, प्राणों, तीन देवताओं, दस अवतारों आदि के विषय में विस्तारपूर्वक समझाया है। इसके साथ ही उन्होंने जीवों की रचना से पूर्व की उनकी अवस्था; उनके रचना में आने और रचना के साथ बँधे रहने के कारण; रचना से मुक्त होकर निजघर वापस जाने की विधि आदि अनेक सूक्ष्म पारमार्थिक विषयों पर प्रकाश डाला है।

परमात्मा का अनादि स्वरूप

कहै तुलसी सुन अगम सँदेसा। आदि अंत दरसाओं देसा॥
प्रथम रहे इक पुरुष अनामा। चौथे पद के पार ठिकाना॥
जब नहिं रहे गगन आकासा। चंदा सूरज नहिं परकासा॥
धरती अगिन न पवन निवासा। पानी जगत रहे नहिं बासा॥
पिंड ब्रह्मंड लोक नहिं होई। और अलोक बिधी नहिं सोई॥
चौथा पद रचना नहिं ठानी। ता के आगे पुरुष अनामी॥
तासु लहर सत साहिब भयेऊ। सत्त नाम संतन ने कहेऊ॥[1]

आप समझाते हैं कि जब कुछ भी नहीं था तब वह आदि पुरुष, जो रंग-रूप, नाम-स्थान से परे है, क़ायम था। उस समय आकाश, चाँद, सूर्य,

धरती, पानी, पिंड, ब्रह्मांड, लोक, अलोक कुछ भी नहीं था। उस समय चौथे लोक अर्थात् सचखंड का भी कोई अस्तित्व नहीं था। उस अनादि पुरुष से शक्ति की एक लहर उठी, जिसे संतों ने सतनाम या सत शब्द कहा है। शब्द की उस लहर से सतलोक अस्तित्व में आया, जो सतपुरुष का निज धाम है।

चौथे पद सत साहब बासा। उनके अंस ब्रह्म परकासा॥
सब्द ब्रह्म परमातम गाया। सो वहि सत्त पुरुष से आया॥
वहि मालिक सतपुरुष कहाई। तिन से आदि ब्रह्म की आई॥
सत्तपुरुष के पार ठिकाना। वहँ से है अद्भुत अस्थाना॥
जिनको कोई संत पहिचाना। अगम निगम से अंत ठिकाना॥[2]

आप कहते हैं कि महासुन्न से आगे चौथा लोक है, जिसके मालिक को सच्चा साहिब, सतपुरुष या कुलमालिक कहा जाता है। आदिब्रह्म उसी का अंश है। शब्दब्रह्म को परमात्मा भी कहा जाता है, जो सतपुरुष का अंश है। सतपुरुष से आगे अगम मंडल का भेद केवल पूर्ण संतों ने खोला है।

जब पिंड न अंड नहीं ब्रह्मंड, सो कहे नवखंड बने न बिसाऊँ।
जबै सतपुरुष रहे सुख धाम, सो वा में बसै सतलोक कहायौ।[3]

अनामी पुरुष से सतपुरुष प्रकट हुए जिनका सतलोक में निवास है। शेष संपूर्ण निचली रचना सतपुरुष द्वारा ही रची गई है।

रचना

तुलसी साहिब ने परमात्मा द्वारा की गई रचना का भेद इस प्रकार प्रकट किया है:

धुंधूकार रहे सुन माहीं। कई जुग ऐसे बीति सिराई॥
उठि इक सुन्न माहिं धधकारा। कड़का कुम्भ पुरुष अधिकारा॥

सब्द बिदेह लोक बिन काया। जब नहिं हते निरंजन माया॥
कुरम सेस नहिं अंड अकारा। जब का भाखि सुनाऊँ सारा॥[4]

अनेक युगों तक शून्य में सर्वत्र धुँधुकार था। उस समय शब्द भी विदेह था। निरंजन (काल) तथा माया का कोई अस्तित्व नहीं था और न ही कूर्म तथा शेषनाग इत्यादि थे। तब शब्द की घनघोर गर्जन उत्पन्न हुई।

सब्द तेज से भयो अकासा। जस मेघा बादल में बासा॥[5]

जिस प्रकार बादलों में से वर्षा होती है, उसी प्रकार शब्द में से आकाश प्रकट हुआ।

प्रथम पुरुष बिदेह बिन काया। जासे भई निरंजन माया॥
माया पाँच तत्त उपजाया। यों रचि अस बैराट बनाया॥[6]

सबसे पहले निराकार आदिपुरुष था। उसने निरंजन और माया दोनों की रचना की। फिर माया ने पाँच तत्त्वों और संपूर्ण त्रिलोकी की रचना कर दी।

सत्त पुरुष सत नाम कहाई। वह अनाम गति संतन पाई॥
सत्त नाम से निर्गुन आया। यह सब भेद संत बतलाया॥
पाँच नाम निरगुन के जाना। निरगुन निराकार निरबाना॥
और निरंजन है धर्मराई। ऐसे पाँच नाम गति गाई॥
सोई ब्रह्म परचंड कहाई। ता को जपै जगत मन लाई॥
दस औतार ब्रह्म कर होई। ता को कहिये निरगुन सोई॥
तिन पुनि रचा पिंड ब्रह्मंडा। सात दीप पृथ्वी नौ खंडा॥
सब जग ब्रह्म ब्रह्म करि गाई। आदि अन्त की राह न पाई॥[7]

सतनाम या सतपुरुष में से जोत निरंजन यानी निर्गुण उत्पन्न हुआ, जिसे काल, निराकार, धर्मराज या ब्रह्म भी कहा जाता है। पिंड, ब्रह्मांड,

सातदीप, नौ खंड, तीन देवता तथा दस अवतार–ये सब उसकी रचना हैं। दुनिया के सभी लोग उनकी पूजा-भक्ति में लगे हुए हैं। सतलोक के स्वामी सतपुरुष या सतनाम की भक्ति की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। उसका भेद केवल पूर्ण संतों ने ही खोला है।

तुलसी साहिब की वाणी में सतलोक से नीचे की रचना को तीन भागों में विभाजित किया गया है: पिंड, अंड और ब्रह्मांड। पिंड के छः चक्र हैं–गुदाचक्र, इंद्रियचक्र, नाभिचक्र, हृदयचक्र, कंठचक्र और आँखों से ऊपर आज्ञाचक्र यानी तीसरा तिल। आँखों से ऊपर सहस्रदल कमल तक की रचना को अंड कहा गया है। इससे ऊपर त्रिकुटी और पारब्रह्म या सुन्न तक की रचना को ब्रह्मांड कहा गया है। पारब्रह्म में शब्द प्रधान है और माया का प्रभाव न के बराबर है, परंतु यह लोक भी नाशवान है।

ब्रह्मांड तक की रचना कृत्रिम है। सतलोक अकृत्रिम है, स्वयं सृजित है। ब्रह्मांड तक की रचना जन्म-मरण के चक्र में है। *ओअं सब्द काल को जानो। सुन्न में सब्द पुरुष पहिचानो॥*[8]–त्रिकुटी या ब्रह्म मंडल तक का शब्द ओंकार कहलाता है और यह काल की सीमा में है। सतलोक या चौथा पद अमर-अविनाशी है। तुलसी साहिब समझाते हैं: सुन्न नाश होकर महासुन्न में समाता है। महासुन्न नाश होकर सतलोक में, जहाँ सत साहिब रहता है। यहाँ प्रलय और महाप्रलय की गम्यता नहीं।[9]

सतलोक परमपुरुष का निज धाम है। नीचे की रचना का हिस्सा बनने से पहले सब जीव सतलोक के निवासी थे, इसलिये उनका निज धाम भी सतलोक ही है।

जीवात्मा

शरीररूपी पिंजरे में क़ैद और मन-इंद्रियों से बँधी हुई आत्मा ही जीवात्मा कहलाती है। जीव का वास्तविक अस्तित्व शरीर या मन-इंद्रियाँ नहीं, आत्मा है। जड़ मन-इंद्रियाँ तो चेतन आत्मा के कार्यशील होने के यंत्र मात्र हैं।

सुन हिरदे कहै तुलसी दासा। आतम सब में ब्रह्म निवासा॥
आतम नाद आदि से आई। सिंध बुन्द तन रह्यौ समाई॥[10]

तुलसी साहिब कहते हैं कि आत्मा उस आदिपुरुष, आदि-शब्द यानी नाम में से प्रकट हुई है। यह शब्दरूपी समुद्र की बूँद है। बूँद और समुद्र दोनों मनुष्य-देह में विराजमान हैं। आपका अभिप्राय है कि आत्मा को परमपुरुष या सार शब्द का अंश कहना विरोधी बात नहीं है। लेकिन यह चेतन होते हुए भी मन-इंद्रियों के साथ बँधी होने के कारण इस मायारूपी जगत का हिस्सा बन गई है।

चेतन अंस आतमा सोई।[11] *दस नौ वार धार चल आई। चेतन जड़ यों गाँठि बँधाई॥*[12]–आत्मा चेतन है, शरीर जड़ है। जब आत्मा आँखों से ऊपर दसवें द्वार से शरीर के नौ द्वारों–दो आँखें, दो कान, दो नासिकायें, मुँह और मल-मूत्र के दो स्थानों–में उतर आई तो जड़-चेतन की गाँठ बँध गई। *निराकार आकार समाया। इच्छा रूप भई यक माया॥*[13]–निराकार आत्मा, साकार शरीर के साथ बँध गई और इसके अंदर माया के प्रभाव से इच्छाएँ उत्पन्न हो गईं।

तुलसी साहिब ने जीवात्मा की स्थिति स्पष्ट करते हुए उसके बंधन का कारण भी बताया है:

चौथे महल पुरुष इक स्वामी। जीव अंस वहि अन्तरजामी॥
उनकी अंस जीव जग आया। करता पाँच तत्त में लाया॥[14]

सब जिव सौंपि पुरुष यहि दीन्हा। तीन लोक का मालिक कीन्हा॥[15]

सत्त पुरुष सोइ सतगुरु गाया। जीव अंस सब वहाँ से आया॥
तीन लोक निरगुन का घाटा। उन सब रोकि जीव की बाटा॥[16]

चौथे लोक में निवास कर रहा आदिपुरुष या सतपुरुष संपूर्ण सृष्टि का मालिक है और जीव उसका अंश है। सतपुरुष ने काल को त्रिकुटी तक की रचना का स्वामी बना दिया और जीवों को भी उसके हवाले

कर दिया। काल या ब्रह्म ने जीवों को पाँच तत्त्वों की देह में क़ैद कर दिया। तभी से निर्गुण निरंजन, काल या ब्रह्म ने जीवों का मार्ग रोका हुआ है ताकि वे इस मायारूपी रचना से बाहर न चले जायें।

प्रियेलाल के साथ हुए संवाद में तुलसी साहिब कहते हैं:

प्रथमहि जीव पुरुष से आया। निरमल ज्ञान संग सम लाया॥[17]

पुरुष पास जिव निरमल आवा। जुग निरमल जिव निरमल गावा॥
धोवन बेद भाख कस भाई। जब उजला उजले की राही॥[18]

जब जीव सतपुरुष से बिछुड़कर संसार में आया तो यह पूरी तरह निर्मल और पूर्ण ज्ञानी था, फिर इसे निर्मल करने के लिये क्यों कहा गया है? जो पहले ही निर्मल है, उसे और निर्मल करने की क्या आवश्यकता थी? इसी शंका का समाधान करते हुए तुलसी साहिब फ़रमाते हैं:

अंस आदि से निरमल आया। ज्यौं धोये कपड़े की छाया॥
निरमल रहि जग रहन न पावे। मल के संग सहज उरझावे॥[19]

मैला रहै जगत भौ भावै। उजला रहै तो घर को जावै॥
मैला रहै खानि में आवै। येहि कारन किया बेद उपावै॥[20]

तीरथ ब्रत और चारों धामा। जप तप इष्ट नेम बहु कामा॥
ये सब पाप पुन्य बतलावा। येहि बिधि मैला बेद करावा॥
कर्म धर्म सब जीव फँदाई। उजले घर की राह भुलाई॥
घर की राह का धोका दीना। करे कर्म फिरि भयो मलीना॥
आदि अंत घर सुधि नहिं पावै। कर्म कर्म बिधि बेद बतावै॥[21]

प्रभु से बिछुड़कर रचना का हिस्सा बना जीव शुरू में साफ़ वस्त्र की तरह निर्मल था। निर्मल जीव कर्मों के बिना इस संसार में रह नहीं सकता था, इसलिये स्वाभाविक रूप से वह कर्मों की मैल से मैला होता गया।

जब पूर्ण ज्ञानी और निहकर्मी जीव को कर्मों की मैल लग जाती है तो वह चार खानियों और चौरासी लाख योनियों में फँस जाता है। पुजारी वर्ग जीव को पुण्य करने का उपदेश देते हैं। वे उसे तीर्थ, व्रत, जप-तप, अनेक इष्टों की पूजा इत्यादि धर्मकर्म करने की प्रेरणा देते हैं, जिनके परिणाम स्वरूप जीव कर्मों के फल से बँध जाता है। इसी लिये जीव निर्मल रहने के बजाय कर्म और फल की मैल से अधिक मलिन हो जाता है।

तत्त्वों के आधार पर जीवों की श्रेणियाँ

पूर्ण संतों ने चौरासी लाख योनियों को चार खानियों – अंडज, जरायुज, स्वेदज, उदभिज्ज में विभाजित किया है। इसी प्रकार तत्त्वों के आधार पर चौरासी लाख जीवों को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। इसके बारे में तुलसी साहिब लिखते हैं:

हिरदे नर तत पाँच कहाई। पिंडज पसू चार के माहीं॥
तीन तत्त अंडज तन पावे। दो तत्त उष्मज खानि कहावे॥
अस्थाबर तत एक रहाई। यों ततहीन गुनन के माहीं॥[22]

पाँच तत्त्व हैं: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। मनुष्य (नर) में पाँचों तत्त्व पूर्ण मात्रा में मौजूद होते हैं। इसी लिये इसे पाँच तत्त्वों का पुतला भी कहा जाता है। पशुओं (पिंडज) में पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु चार तत्त्व प्रधान होते हैं और आकाश (अस्थाबर) – जिससे बुद्धि या विवेक का जन्म होता है – नाममात्र होता है। पक्षियों (अडंज) में तीन तत्त्व प्रधान होते हैं। कीट-पतंगों (उष्मज) में दो तत्त्व प्रधान होते हैं। वनस्पति तथा पेड़-पौधों में केवल जल तत्त्व प्रधान होता है। सार तत्त्व का ज्ञान न होने के कारण जीव तीन गुणों और पाँच तत्त्वों के दायरे में भटकता रहता है।

बुद्धि या विवेक को जन्म देनेवाला तत्त्व (आकाश) केवल मनुष्य में विद्यमान होता है, जिसके कारण मनुष्य में सही-ग़लत की पहचान करने की योग्यता होती है। इसी लिये तुलसी साहिब कहते हैं कि प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु का रूप बनने का गुण केवल मनुष्य में ही है, परंतु जब

वह विवेक से इस गुण का विकास नहीं कर पाता तो उसे निचली योनि में भी जाना पड़ता है:

परथम नर बैराट बनाया। तीन लोक यहि उदर समाया॥
प्रभुता आप आपनी भूला। किरिया करम करे तज मूला॥
कर्म कलंदर ने भटकाया। पिंडज चार तत्त में आया॥[23]

तुलसी साहिब कहते हैं कि संपूर्ण त्रिलोकी मनुष्य के अंदर है। यही नहीं, प्रभु भी इसके अंदर है। दु:ख की बात तो यह है कि मनुष्य अपनी असली ताक़त भूलकर और अपने मूल (परमात्मा) को बिसारकर, कर्मजाल में फँस जाता है, जिस कारण यह पशुओं की योनि में तथा इसी प्रकार फिर पक्षियों, कीट-पतंगों और पेड़-पौधों इत्यादि की निचली योनियों में जन्म लेता है।

देवता और अवतार

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी के अनेक प्रसंगों में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि देवी-देवता और अवतार रचना का हिस्सा हैं, परंतु ये सब भोग योनियाँ हैं। इनकी पूजा-भक्ति को मुक्ति का साधन नहीं माना जा सकता, बल्कि उनकी भक्ति जीव को रचना के साथ बाँधकर रखती है। अवतार संसार का सुधार करने और दुष्टों का विनाश करने के लिये आते हैं, परंतु ये सब काल के अधीन हैं—*दस औतार निरंजन धरिया। सोऊ काल बस भौं में परिया॥*[24] सतपुरुष की भक्ति के बिना कोई भी जीव चौरासी से मुक्ति हासिल नहीं कर सकता। ऐसा केवल पूर्ण संत-सतगुरु ही करते हैं।

मन है पूरा दूत मूत से रचना ठानी।*
ब्रह्म कियो बनाइ रजोगुन ता को जानी॥
तम संकर सत बिस्नु तीन मन ही उपजाया।
अरे हाँ रे तुलसी मन आया गुन माहिं ताहि सरगुन करि गाया॥[25]

* वंशज भाव आत्माएँ

ब्रह्मांडी मन अपने मालिक काल का आज्ञाकारी सेवक है। उसने अपने मालिक के हुक्म से त्रिलोकी की रचना की और उसके पश्चात तीन गुणों का सृजन किया। आप समझाते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन गुणों के प्रतीक हैं—ब्रह्मा रजोगुण का, विष्णु सतोगुण का और शिव तमोगुण का। मन और तीनों देवता भी तीनों गुणों की सीमा में हैं।

सिव सनकादि आदि मुनि नारद, सारद सेस कुरंग।
ब्यास दत्त सुकदेव दिवाने, पावत फिर फिर अंग॥
स्रिंगी रिख पारासर मारे, कीन्ह काम ने तंग।
रिषी मुनी सब क्रोध कुबुद्धी, भयो तपस्या भंग॥
ब्रह्मा बिस्नु दसों औतारा, खुल खुल नच्यो अपंग।
और जगत जिव कहँ लग बरनूँ, आसा रंग तरंग॥[26]

जग में जम फाग रचो री, होरी हर मार मचो री॥ टेक॥
ब्रह्मा बिसुन कृस्न सिव नारद, सुकदेव ब्यास नचो री।
ऋषि मुनि सहित दसो अवतारी, भारी काछ कछो री।*
इष्ट तप जोग जचो री॥[27]

आप कहते हैं: बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी काल अनेक प्रकार से अपने इशारों पर नचा रहा है। ऋषियों और मुनियों ने सैकड़ों वर्ष तपस्या की, परंतु वे भी काम, क्रोध, अहंकार आदि से ऊपर नहीं उठ सके। काल संसार में मृत्यु की होली खेल रहा है। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी जैसे देवता और दस अवतार, काल द्वारा रचित प्रबल आशा-तृष्णा और आवागमन के जाल से बँधे हुए यह खेल, खेल रहे हैं।

* विष्णु के दस अवतारों की तरफ़ संकेत किया गया है। ये अवतार इस प्रकार हैं: मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि (श्रीमद्भागवत-महापुराण प्रथम स्कंध)

जम बड़ जबर कराल चाल कोइ लखै न भाई।
जब कर बाँधे हाथ संत बिन कौन छुड़ाई॥
बड़े कहैं भगवान ताहि को मारि गिराया।
अरे हाँ रे तुलसी राम कृस्न औतार दसों नहिं बचने पाया॥[28]

काल इतना भयानक और बलवान है कि उसकी चाल को कोई नहीं जान पाता। काल ने उनको भी मार दिया, जिन्हें लोग भगवान कहते थे। तुलसी साहिब कहते हैं कि राम, कृष्ण आदि दसों अवतार भी काल से बच नहीं पाये। काल के जाल में बँधे जीव को संतों के बिना कोई भी छुटकारा नहीं दिला सकता।

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में अनेक स्थानों पर ग्रंथ-शास्त्रों, अवतारों आदि का खंडन किया है, जिस कारण लोग उन्हें शास्त्रों की निंदा करनेवाले समझने लगे। परंतु यह लोगों की नासमझी है। तुलसी साहिब की वाणी के अर्थ पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने किसी मत को झूठा नहीं कहा बल्कि उन्होंने हर एक की सीमा का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। उनका वास्तविक उद्देश्य यह समझाना है कि नीचे के लोकों के धनियों की भक्ति करने में मेहनत तो उतनी ही करनी पड़ेगी परंतु पूरा लाभ प्राप्त नहीं होगा। दूसरे शब्दों में भक्त का कार्य अधूरा रह जायेगा और उसे आवागमन से मुक्ति नहीं मिलेगी। वह आवागमन के चक्कर से बँधा रहेगा क्योंकि सतलोक से निचले सब लोक या मंडल – चाहे कितने ही सूक्ष्म क्यों न हों – माया के ही घेरे में हैं।*

* *घट रामायण*, भाग 1, पृ.4

काल और माया

काल

तुलसी साहिब ने काल को जोत निरंजन भी कहा है, जो सतपुरुष की सोलह कलाओं में से एक है। काल ने कई युगों तक सतपुरुष की भक्ति करके उससे अपने लिये एक अलग देश माँग लिया। सतपुरुष ने मौज में आकर त्रिलोकी तक की रचना काल के सुपुर्द कर दी। इसी लिये काल को त्रिलोकी नाथ, त्रिलोकी का हाकिम और प्रबंधक भी कहा जाता है।

सोई निरंजन कहिये काला। आदहि जोति बिछाई जाला॥
पुरुष निरंजन जोती नारी। ये दोऊ मिलि सृष्टि रचा री॥[1]

जीवों के बिना जड़ त्रिलोकी किसी काम की नहीं थी। अतः काल ने फिर से अनेक युगों तक तपस्या करके सतपुरुष से जीवों की माँग की, ताकि उसकी त्रिलोकी में चहल-पहल हो जाये। सतपुरुष ने उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसे कुछ जीव भी सौंप दिये। साथ ही काल से यह वायदा भी ले लिया कि जो जीव अपनी इच्छा से तेरी नगरी में रहना चाहें, रह सकते हैं, परंतु पूर्ण संत जो अकालपुरुष का प्रत्यक्ष रूप होते हैं, जिन जीवों को जाग्रत करके निजघर वापस ले जाना चाहें, काल उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं डालेगा। चार खानियाँ, चौरासी लाख योनियाँ, नरक-स्वर्ग, धर्मराज और यमदूत आदि सब काल के विशाल प्रबंध के अंग हैं। त्रिलोकी में कर्म और फल के नियम को लागू करना, जीवों के कर्मों का हिसाब रखना और उनका भुगतान करवाना उसी का कार्य है।

सब जिव सौंपि पुरुष यहि दीन्हा। तीन लोक का मालिक कीन्हा॥
जो चाहे सो करे अनीता। यहि के सन्मुख कोइ नहिं जीता॥
जबरी जोर अपरबल भाई। संत बिना कोइ पार न पाई॥
नाक छेर जो नाग नचावे। ऐसे करि काबू में आवे॥[2]

पहले सभी जीव सतपुरुष के साथ थे। उसने ही अपनी मौज से जीवों को काल के सुपुर्द कर दिया। त्रिलोकी का शासक काल बहुत ज़ालिम और बलवान है। वह अपना हुक्म चलाता है। उसके सामने किसी का वश नहीं चलता। सतपुरुष के हुक्म से सतलोक से आये पूर्ण संत ही काल का पूर्ण भेद जानते हैं। उन्हें काल की सभी विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान है। जैसे चारों ओर से घेरकर और नुकीली चीज़ चुभोकर नाग को वश में करके नचाया जाता है, उसी प्रकार संत भी काल यानी त्रिलोकी नाथ को वश में कर लेते हैं। काल पूरी तरह संतों के हुक्म में रहता है, कभी भी उनके हुक्म का उल्लंघन नहीं करता।

काल के कौतुक

काल नहीं चाहता कि उसकी त्रिलोकी उजड़ जाये। वह नहीं चाहता कि उसके देश से एक भी जीव वापस सतलोक चला जाये। जीवों को त्रिलोकी में क़ैद रखने के लिये काल ने बहुत बड़ा प्रपंच रचा हुआ है।

सबसे पहले उसने त्रिलोकी में माया का प्रसार किया, जिस कारण सतपुरुष और सतलोक की याद भूल चुके जीवों को माया का यह झूठा प्रसार सत्य प्रतीत होता है। इसके साथ ही काल और माया ने इस रचना में अनेक शक्लों और पदार्थों का सृजन किया, जो जीव को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। जीव के हृदय में इनको प्राप्त करने की तृष्णा उत्पन्न हो जाती है और उस तृष्णा के अधीन हुआ जीव कर्म करता जाता है। अपने कर्मों का फल भोगने के लिये वह आवागमन के चक्कर में बुरी तरह फँसा रहता है। युगों-युगों से जीव अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये

कर्म करता रहता है और उनका फल भोगने के लिये चार खानियों और चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है।

तीन लोक कोठी भई पाप पुन्न भया माल॥
पाप पुन्न भया माल काल जग बालद कीन्हा।
भरी भर्म की गोन जोन चौरासी दीन्हा॥
नित नित आवै जाय मुक्ति बिन भई खराबी।
अंध अंध का संग कहो को करै दराबी॥
तुलसी बेद पुरान से करी करम की जाल।
तीन लोक कोठी भई पाप पुन्न भया माल॥[3]

कर्मजाल में जकड़ा हुआ जीव किस प्रकार काल के शिकंजे में क़ैद है, इसी का तुलसी साहिब ने यहाँ वर्णन किया है। वह कहते हैं कि संपूर्ण त्रिलोकी जेल की कोठरी के समान है, जिसमें पापों और पुण्यों का माल भरा हुआ है। काल ने समस्त संसार को बैल बनाकर लोगों पर पुण्यों और पापों का बोझ लाद रखा है। जीव के सिर पर कर्मों से भरी हुई गठरी रखी हुई है। वह अपने कर्मों का फल भुगतने के लिये चौरासी में भटकता रहता है और सदैव आवागमन के दु:खदायी चक्कर में पड़ा रहता है। अगर एक अंधा दूसरे अंधे का साथी हो तो दोनों ही ग़लत मार्ग को अपनाकर ठोकरें खाते रहते हैं। इसी प्रकार अज्ञानी मार्गदर्शकों ने अज्ञानी जीवों को अनेक प्रकार के भ्रमों में डाल रखा है। वेदों और पुराणों में भी पापों को छोड़कर पुण्य कर्म करने पर बल दिया गया है, जिसके परिणाम स्वरूप जीव कर्मों के जाल में फँसा रहता है।

खेले जुगजुग काल सिकारी। खाये जक्त जीव सब सारी॥
को रोके जबरी के माहीं। आड़े फिरें सामरथ नाहीं॥
सतगुरु से डरपत है भाई। कछू और न चले उपाई॥

जिव मूरख वो जबर कहावा। याको कछू चले नहिं दाँवा॥
कई परपंच करे जम काला। यासे बपुरा जीव बिहाला॥
कोई उपाव से बाचे नाहीं। सतगुरु सरन बिना कोइ भाई॥
उन बिन फंद कटन को नाहीं। जो कोइ कोटिन करे उपाई॥
मारग रोक बाट में बैठा। सनमुख होइ को खावे खेटा॥[4]

काल एक शिकारी की तरह युगों-युगों से बेबस जीवों का शिकार करता आ रहा है। अज्ञानी जीव उसकी चालाकियों का मुक़ाबला नहीं कर सकता। काल भाँति-भाँति के प्रपंच रचकर और कौतुक दिखाकर जीव को सदैव परेशान करता रहता है। जो भी उसका मुक़ाबला करने की कोशिश करता है, उसे उसकी लाठी खानी पड़ती है, उसकी मार सहनी पड़ती है।

ब्रह्मा बिस्नु महेस सेस सब बाँधे तानी।
नारद सुखदेव ब्यास फाँस कर डारे खानी॥
हनूमान और जनक भभीषन बचे न भाई।
अरे हाँ रे तुलसी ऋषि मुनि को गनै काल धर सब को खाई॥[5]

काल इतना शक्तिशाली है कि ऋषि-मुनि तो एक तरफ़, बड़े-बड़े देवता भी काल या मन की चाल से बच नहीं सके। आपका अभिप्राय है कि ये सभी तीन गुणों और पाँच-तत्त्वों की त्रिलोकी में क़ैद हैं।

काल-जाल से मुक्ति

काल केवल संत-सतगुरु से डरता है। उसका संत-सतगुरु के आगे कोई ज़ोर नहीं चलता—सतगुरु के टारे टरे, और न माने एक।[6] काल के जाल से मुक्ति का एकमात्र साधन सुरत को अंदर स्थिर करके सतलोक से आ रहे शब्द के साथ जोड़ना है। इसलिये सतपुरुष के हुक्म से धुरधाम से आये

पूर्ण संत जीव को सतपुरुष के अलावा किसी अन्य इष्ट की भक्ति करने के लिये नहीं कहते। वे अंतर्मुख भक्ति पर ही बल देते हैं। जो जीव पूर्ण संतों के उपदेशानुसार सुरत को अंदर शब्द की धारा के साथ जोड़ने में सफल हो जाते हैं, वे काल के जाल से मुक्त हो जाते हैं। तुलसी साहिब की वाणी का यह सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिसका उन्होंने कई प्रसंगों में अनेक प्रकार से विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। आप कहते हैं:

दुर्गम घाटी काल कराला। बाँधी बाट जुलम जम जाला॥
सतगुरु तेग सुरति से काटे। निकरि जाय जुलमी की बाटे॥
तन मन सोधि रहे निरबाना। तब लख पावे पुरुष पुराना॥
जुग जुग से जिव चले अनेरा। काटा कधी न जम का घेरा॥
जन्म जन्म चौरासी माहीं। कबहुँ न सुरति संधि को पाई॥
॥ दोहा ॥
सुरति सब्द के भेद बिन, होय न पूरन काम।
चमर चाम की दृस्टि में, तन तत तिमिर समान॥[7]

निजघर बहुत दूर है और उसका मार्ग अति दुर्गम है। ज़ालिम काल ने मार्ग में अपना जाल बिछाया हुआ है। केवल संत-सतगुरु ही अपनी शरण में आये जीव की काल से रक्षा कर सकते हैं। वे शब्द की तीखी तलवार से काल के जाल को काट देते हैं। शब्द से जुड़कर जीव मन-इंद्रियों के दायरे से ऊपर उठकर कर्मों के जाल से मुक्त हो जाता है और परमपुरुष के धाम वापस पहुँच जाता है। जब तक जीव सतगुरु की शरण लेकर सुरत को शब्द के साथ नहीं जोड़ता, उसके अंदर अज्ञानता का अंधकार भरा रहता है। उसकी उस मायानगरी की शक्लों और पदार्थों को देखनेवाली स्थूल दृष्टि तो कार्य करती है, परंतु अंतर में दिव्य प्रकाश को देखनेवाली दिव्य दृष्टि जाग्रत नहीं होती। दिव्य दृष्टि सुरत को शब्द के साथ जोड़ने से ही जाग्रत होती है और यह कार्य सतगुरु की शरण लेकर ही पूर्ण होता है।

माया

तुलसी साहिब जीव को संसार में फैले हुए माया के अति सूक्ष्म, सर्वव्यापक और अत्यंत शक्तिशाली जाल के बारे में भी सावधान करते हैं। भले ही स्वप्न में दिखाई देनेवाले दृश्य सत्य प्रतीत हों, परंतु उनकी कोई वास्तविकता नहीं होती। धूप में चमक रही रेत, पानी का भ्रम पैदा करती है। आसमान में फैले बादलों में अनेक प्रकार की आकृतियाँ दिखाई देती हैं, जो काल्पनिक हैं और केवल मन का भ्रम होती हैं। जब बादल सूर्य को ढक लेते हैं तो बादल सत्य प्रतीत होते हैं और सूर्य के न होने का भ्रम पैदा होता है। प्रकाश का न होना, अँधेरा है। इसी प्रकार माया के अस्तित्व का असली आधार जीवात्मा की अविद्या या अज्ञानता है।

माया सृष्टि में कार्यशील वह शक्ति है, जो जीव तथा परमात्मारूपी अमर-अविनाशी, आदि-जुगादि सत्य के बीच अज्ञानता का परदा खड़ा कर देती है। माया दृश्यमान, अस्थायी और नाशवान संसार तथा इसकी शक्लों और पदार्थों के स्थायी और सत्य होने का भ्रम उत्पन्न करती है, ताकि जीव परमात्मा को भूला रहे और उसे मायारूपी संसार के साथ बाँधकर रखा जा सके। तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में एक स्थान पर कबीर साहिब के इस शब्द का उल्लेख किया है—*आवै जाइ सो माया साधो, आवै जाइ सो माया।...ज्ञान हीन करता नहिं होई, माया जग भरमाया॥*[8]

सरगुन की माया मतवारी। भट्ठी भर्म चुवावनहारी॥
मद पियाय के कीन्ह बेहाला। यो बाँधे जग में जम जाला॥[9]

माया जीव को संसार के साथ बाँधकर रखने के लिये कई प्रकार की लीला रचती है। इसने संसार में इंद्रियों के भोगों, विषय-विकारों का जाल फैलाया हुआ है, ताकि जीवात्मा इस भ्रम का शिकार हो जाये कि ये सब सच्चे सुख का साधन हैं। माया जीव के अंदर इनकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करती है और इस इच्छा के अधीन जीव कर्म इकट्ठे करता है। फिर अपने कर्मों का फल भोगने के लिये वह आवागमन के चक्कर से बँध जाता है।

काल और माया यह नहीं चाहते कि यह कर्मभूमि पापमय हो जाये, क्योंकि पाप दु:खों का कारण होते हैं। यदि हर ओर दु:ख ही दु:ख होंगे तो संसार त्राहि-त्राहि कर उठेगा और जीव तीव्रता से प्रभु की खोज शुरू कर देंगे। इसलिये माया एक और सूक्ष्म खेल खेलती है। वह धर्म प्रचारकों द्वारा संसार में यह भ्रम पैदा करती है कि पुण्य कर्मों द्वारा पापों का नाश हो जायेगा और जीवात्मा का परमात्मा से मिलाप हो जायेगा। धर्म प्रचारक पुण्य-दान, तीर्थ-व्रत, होम-यज्ञ, ग्रंथ-शास्त्रों के पाठ-विचार, मूर्तिपूजा, अनेक प्रकार के हठकर्मों इत्यादि को जीव की मुक्ति का साधन बताकर भ्रम उत्पन्न कर देते हैं।

तुलसी साहिब कहते हैं:

तीरथ बरत नेम जग लागा। काहू मन धोखा नहिं भागा॥ ...
चारौ धाम काम करि आवा। भरमि भरमि कहुँ मुक्ति न पावा॥ ...
पूजा पाती करै अचारा। मैली बुधि सुध नाहिं बिचारा॥
पूजा मन मल नाहिं छुड़ावा। फूल तोड़ जल पाहन नावा॥[10]

इस संसार में पुण्यों और पापों में संतुलन रखने के लिये समय-समय पर ऐसे महापुरुष अवतरित होते रहते हैं, जो पापियों को दंडित करते हैं और पुण्यात्माओं की सहायता करते हैं। *सरगुण ब्रह्म भया औतारा। जिन जग माहिं निसाचर मारा॥*[11]—वे दानवों या राक्षसों का नाश करते हैं और देवताओं या भद्र पुरुषों की सहायता करते हैं, ताकि दु:खों से द्रवित होकर जीव संसार से ऊबकर प्रभु की खोज में न लग जायें। यदि जीव परमात्मा की ओर रुख़ करते भी हैं तो वे उन्हें प्रभुप्राप्ति के ग़लत साधनों में उलझा देते हैं, जिससे जीव इसी जगत में इधर-उधर भटकता रहता है।

माया का प्रभाव

माया जीव को कर्म करने के लिये उकसाती है और यदि हृदय में प्रभु के साथ मिलाप की इच्छा उत्पन्न हो जाये तो वह जीव से ऐसे कर्म करवाती है,

जो मुक्ति का साधन बनने के बजाय जीव को रचना के साथ बाँधे रखने का कारण बन जाते हैं।

माया भगवत की बड़ी, को पावै परभाव।
को लीला उनकी लखे, छल बल बहुर उपाव॥[12]

प्रभु और उसकी माया का पार पाना और माया के प्रपंच को समझ पाना असंभव है।

तुलसी साहिब ने कहा है कि माया के खेल समझ पाना जीव के लिये नामुमकिन है, क्योंकि इसका स्वरूप बड़ा विचित्र है:

पाँच तत्त बैराट बनाया, पिरथी जल पवन समाया।
अगिनि अकास भास मिलि पाँचो, सो यहि बिधि अंड कहाया॥
निरंकार आकार भया जब, या से उपजी माया।
बन ब्रह्मंड अण्ड सब कीन्हा, रज तम सत उपजाया॥[13]

काल ने पाँच तत्त्वों से संपूर्ण त्रिलोकी की रचना की और निराकार से आकार धारण किया, अर्थात् निर्गुण से सगुण हो गया। फिर माया और तीन गुणों का खेल शुरू हो गया।

तीन लोक के बीच में बंझा गऊ बियाय॥
बंझा गऊ बियाय खाय दधि माखन सारा।
बच्छा बड़ा अयान जान रहे ता की लारा॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस दूध से बचे न भाई।
नर पंछी सुख चैन लेन को नित नित जाई।
तुलसी बूझ बिचार बिन दुनिया दधि को जाय।
तीन लोक के बीच में बंझा गऊ बियाय॥[14]

आप कहते हैं कि तीनों लोकों में मायारूपी बाँझ गाय का पसारा बहुत विचित्र है। पशु-पक्षी, नर, देवी-देवता सभी बछड़े की भाँति मायारूपी बाँझ गाय के दूध, दही, मक्खन यानी भौतिक पदार्थों में सुख पाने का प्रयत्न करते हैं। यह सब अज्ञानता के कारण है। जब तक जीव माया के अज्ञानता भरे दु:खदायक प्रपंचों के प्रति सचेत नहीं होता, वह क़भी भी इस भ्रम-जाल से मुक्त होकर प्रभु के साथ मिलाप का सुख हासिल नहीं कर सकता।

बेली एक सिंध तजि आई। कँवल कूप किया बास जी॥
जड़ नहि पेड़ पात नहिं साखा। भवन तीन फल पाका जी॥
बेली बेल फैल घन छाई। तीन लोक लिपटाई जी॥
अंड ब्रह्मंड खंड जग जारा। वाही को सकल पसारा जी॥
ब्रह्मा बिस्नु बेद और सेसा। दस औतार महेसा जी॥
बेली फूल मूल नहिं पावै। खोजि खोजि पछताई जी॥
बाका भेद अभेद अकाया। संत बूझि जिन पाया जी॥
तुलसीदास बेलि लख पाई। भव जम जाल नसाई जी॥[15]

प्रभुरूपी सागर में एक अद्भुत बेल उत्पन्न हुई है। न उसकी जड़ें नज़र आती हैं, न पत्ते और न ही शाखाएँ। संपूर्ण त्रिलोकी में उस बेल का फल लगा है और वह बेल संपूर्ण त्रिलोकी पर फैली हुई है। त्रिलोकी तक के सारे शरीर या आकार, खंड और ब्रह्मांड माया की बेल का ही पसारा हैं। तीन देवता – ब्रह्मा, विष्णु, महेश – शेषनाग और दस अवतार, मायारूपी बेल के ही फूल हैं। ये सब माया का पार नहीं पा सके हैं। माया का कोई रंग-रूप और आकार नहीं है। उसका रहस्य केवल पूर्ण संत ही जान पाये हैं। जो कोई संतों की शरण में जाकर मायारूपी बेल का रहस्य जान लेता है, वह भवसागर और यमों के जाल से मुक्त हो जाता है।

मन

तुलसी साहिब ने मन के स्वरूप का परिचय देते हुए उसके व्यापक प्रभाव का वर्णन किया है। आपने अपनी बानी में मन को ब्रह्म का अंश कहा है। इसे ही निर्गुण और काल पुरुष भी कहा जाता है। यही शक्ति समय-समय पर संसार में अलग-अलग अवतार धारण करती है। इसी लिये आपने त्रिलोकी तक के समस्त पसारे को मन की उपज कहा है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश सभी को मन या काल ने ही उत्पन्न किया है:

अंड खंड ब्रह्मंड पसारा। ये सब जानौ मन की लारा॥
ब्रहमा बिस्नु महेस कहाये। ये सब मन मत गति उपजाये।[1]

लेकिन वेदों ने ब्रह्म या निर्गुण को ही परमात्मा मान लिया है:

निर्गुन कहिये ब्रह्म बेद परमातम गावा।
पाँच तत्त गुन बँधा जीव आतमा कहावा।
आतम इंद्री बास फाँस बिच रहा फँसाई।
अरे हाँ रे तुलसी जड़ चेतन की गाँठ ठाठ मन जग उपजाई॥[2]

वेदों ने निर्गुण ब्रह्म को परमात्मा कहा है, जबकि जीव का वास्तविक धाम सतलोक है। इस त्रिलोकी में आकर तीन गुणों और पाँच तत्त्वों से बँधी होने से आत्मा को जीवात्मा कहा जाता है। जीवात्मा के मन-इंद्रियों के साथ जुड़े होने को ही जड़-चेतन की गाँठ बँधना कहा जाता है। यह सारा कौतुक मन द्वारा रचा हुआ है।

मन का शक्तिशाली हथियार: इच्छा-तृष्णा

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में इच्छा-तृष्णा को मन का सबसे अधिक शक्तिशाली हथियार बताया है और इच्छा-तृष्णा के इस भयानक भ्रमजाल को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है।

मन इच्छा संग साथ चलावे। इच्छा मन संग तरंग उठावे॥
जहँ मन लगे तहाँ तन जावे। मन मन मिले मिलाप कहावे॥
जैसे नदी लहर की लहरी। जैसी बास चले मन केरी॥
यह जग जीव लहर में माता। दुनिया नाम पड़ो यहि भाँता॥
मन की कला अनेकन होई। मन इच्छा सँग बाद बिगोई॥
मदिरा को कलवार बनावे। पीवे दाम देइ दुख पावे॥
मन भट्ठी कलवार चढ़ावे। कलवारिन पी पीव छकावे॥[3]

तुलसी साहिब समझाते हैं कि मन कई कौतुक दिखाता है। सबसे पहले वह जीव के अंदर इच्छाएँ उत्पन्न करता है। जिधर मन का लगाव होता है, शरीर भी बार-बार उधर ही भागता है। जिस प्रकार दरिया में पल-पल लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार जीव के अंदर इच्छाओं की अनंत तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। मनरूपी कलाल, इच्छाओं की शराब निकालता है और माया वह शराब सबको पिलाती है। जैसे शराबी पैसे भी ख़ुद देता है और शराब पीकर बरबाद भी ख़ुद ही होता है, उसी प्रकार जीव को इच्छाओं की पूर्ति के लिये भरसक प्रयत्न भी करना पड़ता है और इच्छाओं के अधीन होकर कर्म करने पर फल भी भोगना पड़ता है।

जीव अपनी इच्छाओं को पूरा करने में इतना अधिक मग्न हो जाता है कि वे सपने में भी जीव का पीछा नहीं छोड़तीं। तुलसी साहिब इसी दशा का वर्णन इस प्रकार करते हैं:

जाग्रत में मन लागे जोई। पहुँचे सुपने में तहँ सोई॥
छल बल करे रीति दरसावे। जाग्रत सो सुपने में पावे॥

लहर उठे जो मन के माहीं। सो तदरूप देख दरसाई॥
या मन मन इच्छा जिव बाँधे। कर्म करूर ताहि में फाँदे॥[4]

जहाँ जाग्रत अवस्था में हमारे मन का लगाव होता है वहीं जीव स्वप्न में भी पहुँच जाता है। यानी जैसी इच्छाएँ जाग्रत अवस्था में हमारे मन में उठती हैं, हमें वैसे ही स्वप्न दिखाई देते हैं। जीव जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में छल-कपट करता है, वैसे ही स्वप्न देखता है। जागते हुए ही नहीं, सपने में भी जीव के अंदर इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। उन इच्छाओं के अधीन होकर कर्म करने पर, वह सदैव कर्म और फल के जाल से बँधा रहता है।

इच्छा-तृष्णा का जन्म

तुलसी साहिब ने इस रहस्य को खोल दिया है कि जीव के मन में इच्छाओं और तृष्णाओं का उत्पन्न होना ही जीव के विनाश का कारण बन जाता है:

नर से निकसी इक नारी, कोइ बूझै साध बिचारी॥ टेक॥
हाथ न पाँव सीस नहिं काया, खाया सब जग झारी।
माई न बाप आप से उपजी, करी खसम की ख्वारी॥
बारी न बूढ़ि तरुन तन नाहीं, सोवत सब जग मारी।
आवै न जाय मरै ना जीवै, जुग जुग रहत करारी॥
ऋषि मुनी सब झारि बिगारी, सब जग त्राह पुकारी।
रबि ससि सूर चंद्र तारा गन, ये सब खाइ बिडारी॥
चर और अचर सकल चर लीन्हा, कीन्हा ब्रह्मंड पसारी।[5]

तुलसी साहिब यहाँ कह रहे हैं कि कोई बिरला ही साधु इस रहस्य को जान पाया है कि इच्छारूपी नारी मन के अंदर उत्पन्न होती है और फिर मन को ही अपने वश में कर लेती है। उसके हाथ और पाँव नहीं हैं, सिर और शरीर नहीं है, परंतु वह समस्त संसार को खा जाती है।

इसका सृजन अपने आप ही होता है और अपने स्वामी यानी जिस मनुष्य के अंदर यह उत्पन्न होती है, उसको उलझन में डाल देती है। वह न बच्ची है, न जवान और न बूढ़ी। परंतु अज्ञानता की नींद में सोये हुए सारे संसार को अपना भोजन बना लेती है। वह आवागमन और जीवन-मरण के दायरे से बाहर है। वह सदैव बलवान और स्वस्थ रहती है। वह चाँद, सूर्य और तारा मंडल को भी खा जाती है। इच्छारूपी नारी ऋषियों और मुनियों को भी अपने वश में कर लेती है। उसका पसारा संपूर्ण त्रिलोकी तक है। वह चल और अचल हर प्रकार के जीवों को अपना भोजन बना लेती है।

पाँच तत्त नर कीन्ह बनाई। इच्छा नारि तुरत उपजाई॥
जड़ चेतन जब गाँठि बँधानी। इच्छा नारि भई पटरानी॥
इन अपना परिवार बसाया। सार तेज का भास नसाया॥
जब नर हुआ जगत का रासी। राज करे मन इच्छा बासी॥
जो इच्छा मन उठे तरंगा। जस जस खेल करे परसंगा॥
उधर आस सब दीन्ह छुटाई। इधर तरंग मन इच्छा माहीं॥[6]

तुलसी साहिब समझाते हैं कि जैसे ही चेतन आत्मा पाँच तत्त्वों के स्थूल शरीर में आई, जड़-चेतन की गाँठ बँध गई और शरीर पर इच्छा का राज्य हो गया। आत्मा का अपना निर्मल प्रकाश मन-इंद्रियों के नीचे दब गया। जीव माया के भोगों का रसिक बनकर रह गया और इसके अंदर इस संसार पर राज करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई। इसने मन की इच्छाओं के अनुसार कर्म करने आरंभ कर दिये और जीव के अंदर जो निजघर वापस जाने की इच्छा थी, वह सांसारिक शक्लों और पदार्थों को पाने की इच्छा के नीचे दबकर रह गई।

इच्छा मन कीन्ही फुलवारी। तन मन जीव ब्रह्मंड सँवारी॥
इच्छा से जग उपजा भाई। सोइ इच्छा जग खाइ बुड़ाई॥[7]

इच्छा मनरूपी फुलवारी में उगी वह बेल है, जिसके रंग में तन, मन, जीव और यह ब्रह्मांड रँगा हुआ है। सब लोग इच्छा के कारण ही संसार में जन्म लेते हैं और इच्छा ही उन्हें खा जाती है।

तुलसी साहिब कहते हैं कि इच्छाओं की प्रबल धारा में बहता हुआ जीव इतना बेबस हो जाता है कि उसे अपने भले-बुरे का ज्ञान ही नहीं रहता। फलस्वरूप वह कई जन्मों तक भटकता रहता है:

आसा नदी बहे तट नाहीं, भारी भरम भर्‌यो रे॥
दिन और रैन चैन नहिं पावे, तृसना माहिं मर्‌यो रे॥
लोभ अगिनि धरि दीन्ह पलीती, जीता जनम जर्‌यो रे॥
नर तन पाय परख नहिं कीन्हा, भव सिंध नाहिं तर्‌यो रे॥
तुलसी ताव दाव नहिं देखा, मन की चाह चर्‌यो रे॥[8]

संसार इच्छा-तृष्णा और भ्रम के पानी से भरा हुआ वह दरिया है, जिसके पार जाने का कोई किनारा दिखाई नहीं देता। ऐसी अवस्था में मनुष्य भ्रमित हो जाता है। इच्छा ही जीव के अंदर लोभ की अग्नि प्रचंड करती है और उसे सदैव व्याकुल रखती है। एक के बाद एक इच्छा की पूर्ति के लोभ में जीव अंधाधुंध कर्म करता जाता है। वह सही और ग़लत यानी करने योग्य और न करने योग्य की परवाह किये बिना अंधाधुंध कर्म करता है, परिणाम स्वरूप उसका भवसागर से पार जाना असंभव हो जाता है।

इच्छा आसा देत घुमाई। जहँ मन लीन देह तस पाई॥
चार खानि उत्पति रस माया। चर और अचर चराचर खाया॥
उपजे मरे धरे फिर देही। आसा बँध बस बास सनेही॥

॥ दोहा॥

जुगन जुगन जड़ जीव यह, बिष बिसेष रस खाय।
भँवर पुहुप गुंजार ज्यों, मायहिं माहिं बिलाय॥[9]

केवल इच्छाओं की पूर्ति के लिये किये गये कर्म ही हमें बंधन में नहीं बाँधते, बल्कि अधूरी इच्छाएँ भी बंधन बन जाती हैं। जहां आसा तहां बासा। जीवन भर की इच्छाएँ ही अंत समय एक प्रबल संकल्प का रूप ले लेती हैं। उस संकल्प के अधीन जीव को अगला जन्म उसी योनि में दिया जाता है, जहाँ वह अपनी अधूरी इच्छाओं को पूरा कर सके। इस प्रकार इच्छाएँ और तृष्णाएँ ही जीव के संसार में बार-बार अनेक योनियों में जन्म लेने का कारण बन जाती हैं। माया के रचे भोगों में लिप्त जीव, इच्छाओं की पूर्ति के लिये कभी ऐसे पेड़-पौधों के रूप में जन्म लेता है, जो चल नहीं सकते और कभी चलने-फिरनेवाले कीड़ों, पक्षियों, पशुओं और मनुष्यों के रूप में जन्म लेता रहता है। जैसे भौंरा फूल के रस के लोभ में रात को उसी में बंद हो जाता है और आख़िर अपनी जान गँवा बैठता है, इसी प्रकार जीव भी इच्छा के वश में होकर आवागमन के जाल में फँसा रहता है।

मन के विकार

तुलसी साहिब कहते हैं कि काम, क्रोध आदि विकारों के शिकंजे में फँसा जीव अपना सारा जीवन इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों में नष्ट कर लेता है:

मन तन रस को पल पल धावे। इंद्री के रस को सुख चावे॥
फीकी नीकि चिकन कड़ुवाई। षटरस भोजन माहिं मिठाई॥
इंद्री भोजन भोग बिलासा। यह मन में उपजे बिस्वासा॥
राग रंग नित सुने बिलासा। आवे न नींद रात भर पासा॥

॥ दोहा॥

इंद्री सुख रस रीति में, बिलसत जनम सिराय।
कहा कहूँ अज्ञान की, नेक न मन सरमाय॥[10]

मन बिषम यह बिष बाद के बस, समझ कर थिर ना रहे॥
रस भोग सोग सुनाय कहि कोइ, तुरत उदमद में बहे॥

कोइ नीक फीक बिचारि बंधन, यह समझ सुध ना लहे॥
पल पल परख रस रीति सुख यह, दुख समझ निस दिन दहे॥[11]

सब को करे काम बेहाला। मन दारुन यह काल कराला॥[12]

इन विकारों द्वारा भ्रमित हुआ जीव हमेशा इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों में सुख ढूँढ़ता रहता है। वह भाँति-भाँति के भोजन, राग-रंग की महफ़िलों आदि में इतना मस्त रहता है कि सारी रात नींद इसके नज़दीक नहीं आती। जीव की मूर्खता की यह हालत है कि इसे अपने बुरे कर्मों के लिये तनिक भी अफ़सोस नहीं है। यह विषयों के विषैले प्रभाव को समझने का प्रयत्न नहीं करता है। जैसे ही कोई विषय-विकारों और इंद्रियों भोगों की बात करता है, यह मस्त होकर उसी ओर आकर्षित हो जाता है। यह सही-ग़लत, अच्छे-बुरे की परवाह किये बिना उन भोगों की तरफ़ दौड़ता है। इन विकारों में सबसे अधिक प्रभाव जिस विकार का है वह है काम, यह जीव को बेहाल कर देता है। इस पर क़ाबू पाने का कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाये, परंतु इसकी कोई थाह नहीं पा सकता। विषय-विकार वास्तव में दु:ख का मूल कारण हैं, परंतु जीव इन्हें सुख का साधन समझकर दिन-रात इनकी आग में सुलगता रहता है।

तुलसी साहिब कहते हैं कि यह मन जीव को इतना विकारग्रस्त कर देता है कि इसका विवेक नष्ट हो जाता है। हिरदे मन की रीति, चित्त न सोचे आपने। भव भर्मन की प्रीति, कोई कहन माने नहीं॥[13]—इसे लाख-बार समझा लो, परंतु इस पर कोई असर नहीं होता। यह भवसागर में भटकते रहने की अपनी आदत को बदलने के लिये तैयार नहीं होता। इसी आदत के बारे में तुलसी साहिब ने बहुत सटीक दृष्टांत दिया है:

नीम कीट जिमि नीम पियारी। बसि रहे बिष सही अमृत जाना॥
गुबरीला गोबर बिष्टा में। उठि बैठे जहँ बास बसाना॥
ज्यों मदिरा मद पियत सराबी। पियत अमल मद में मस्ताना॥
यह गो गुन मन मगन मिलापी। सो तुलसी कहिं नहिं कसकाना॥[14]

नीम के कीड़े को विष के समान कड़वी नीम अमृत प्रतीत होती है। गोबर और विष्टा के कीड़े को उसी में रहना अच्छा लगता है। शराबी को शराब का विनाशकारी नशा ही आनंद देता है। उसी प्रकार मन तीन गुणों, इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों में मग्न रहता है और फिर उस पर संतों के वचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मन के विकारों के परिणाम स्वरूप जीव की जो हालत होती है, तुलसी साहिब उसी का वर्णन करते हुए समझाते हैं कि मन-माया ने तो ऋषियों, मुनियों और देवताओं को भी अपने जाल में फँसा लिया, साधारण जीव की तो बिसात ही क्या है।[15]

ब्रह्मा बिस्नु देव मुनि नारद, सारद सेस चरो री।
जग जिज्ञास सकल चरि खाये, सो जम जग जानि न जोरी॥[16]

आपने रत्न सागर में समझाया है कि शृंगी ऋषि ने लंबे समय तक घोर तप किया, परंतु राजा दशरथ द्वारा भेजी गई वेश्या ने उन्हें अपने रूप और सौंदर्य से भ्रमित करके गृहस्थी के मोहजाल में फँसा लिया। पराशर ऋषि घोर तपस्या के पश्चात जंगल से आबादी की तरफ़ वापस आ रहे थे। मार्ग में दरिया था। मल्लाह की बेटी उन्हें नाव में बिठाकर पार ले जा रही थी। उनका मन उस कन्या पर मोहित हो गया और ऋषि ने अपना बुरा विचार प्रकट कर दिया। इसी प्रकार विष्णु द्वारा भेजी गई माया की पुतली ने शिवजी को भ्रमित कर लिया। शिवजी को जब वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उन्होंने विष्णु को श्राप दिया कि जिस प्रकार मैं स्त्री के लिये परेशान हुआ हूँ, उसी प्रकार तुम भी त्रेता युग में राम के रूप में अवतार धारण करके स्त्री के लिये परेशान रहोगे।[17]

बिषै बासना में मन राचा। जक्त भोग से कोइ नहिं बाचा॥
रस बस रीति जीति नहिं जानी। ज्यों माखी मद में लिपटानी॥
यों जिव रस माहीं मदमाता। इंद्री सँग रस भोग सनाथा॥

॥ दोहा ॥

दस इंद्री रस भोग से, भूले मूल मुकाम॥
सदा रहे भव चक्र में, उलटि न बूझे धाम॥[18]

जैसे जब मक्खी शहद पर बैठती है, तो शहद उसके पंखों से चिपक जाता है, तब वह उड़ नहीं पाती और तड़प-तड़पकर अपनी जान दे देती है। उसी प्रकार मन, तीन गुणों और इंद्रियों के भोगों में ऐसे मग्न रहता है कि अपने निजघर को बिलकुल भूल जाता है। परिणाम यह होता है कि जीव सदा आवागमन के चक्कर में भटकता रहता है और निज धाम वापस नहीं जा पाता।

मन को वश में करना

तुलसी साहिब ने मन के विकारों का ही वर्णन नहीं किया, बल्कि इस कपटी मन को सुधारने के लिये जीव को चेतावनी भी दी है और मन पर विजय प्राप्त करने के साधनों का वर्णन भी किया है।

चेत सबेरे चलना बाट॥ टेक॥
मन माली तन बाग लगाया, चलत मुसाफिर को बिलमाया।
बिष के लड्डू ताहि खवाये, लूट लिया स्वादन की चाट॥
तन सराय में मन उरझाना, भठियारी के रूप लुभाना।
निस बासर वाही सँग रहना, कर हिसाब सतगुर की हाट॥
ज्ञान का घोड़ा बनाय के लीजे, प्रेम लगाम ताहि मुख दीजे।
सुरति एड़ दे आगे चलना, भव सागर का चौड़ा फाट॥
क्या सोवे उठ साहिब सुमिरो, दसो दिसा काल निज घेरो।
तुलसी कहै चेत नर अंधा, अब क्या पड़ा बिछाये खाट॥[19]

तुलसी साहिब जीव को सावधान करते हुए कहते हैं: ऐ मुसाफ़िर! तेरा सफ़र लंबा है। तुझे सचखंडरूपी निजघर पहुँचना है। तू जितनी जल्दी

सफ़र शुरू कर देगा, उतना ही अच्छा है। इसलिये सावधान होकर चल। मनरूपी माली ने शरीररूपी बाग़ में अनेक प्रकार के फल और फूल उगाये हुए हैं ताकि जीव को उनमें भ्रमित कर सके। वह जीव को विषय-विकारों के लड्डू खिलाता है, जो मीठे तो लगते हैं, परंतु विष भरे होते हैं। वह जीव को इंद्रियों के भोगों का स्वाद चखा देता है। इस प्रकार मन जीवरूपी मुसाफ़िर को शरीर की इस सराय में उलझाये रखता है। इस सराय में जीव मायारूपी भठियारिन* पर मोहित होकर निजघर वापस जाना भूल जाता है।

तुलसी साहिब चेतावनी देते हैं कि तुमने बहुत देर तक मन-माया की संगति में रहकर देख लिया है। अब सतगुरु की शरण प्राप्त करके ज्ञान के घोड़े पर सवार हो जा और प्रेम की लगाम को खींचकर विशाल भवसागर को पार कर ले। अज्ञानता की नींद से जाग और सचेत होकर चल, क्योंकि हर ओर काल यानी मन का पहरा है। तू गहरी नींद में न सोया रह। सतगुरु के उपदेशानुसार सुरत को शब्द में लीन कर दे और मन-माया तथा काल के देश को पार करके प्रभु के परमधाम वापस पहुँच जा।

अपनी वाणी में तुलसी साहिब ने परमार्थ के मार्ग में बाधा बने इन विकारों से छुटकारा पाने का उपाय भी बताया है:

मोह अपर्बल जग में भारी। ज्ञान बान लै लौ से मारी॥
क्रोध पलीत प्रचंड कहाई। यह तो मारे छिमा के माहीं॥
कुमति नारि मोह की पटरानी। पाखँड पुत्र बड़े अभिमानी॥
कपट बजीर मान मतवारे। डिंभी मंत्र जुझावन हारे॥
इनके संग लड़न को जोई। बिन गुरु बाँह हटे नहिं कोई॥
आसा त्रिस्ना पुत्री दोई। अंतर बान चलावें सोई॥
आसा तजि निरआस कहावे। तब इनसे कोइ छूटन पावे॥
यह उमराव फौज मन साथा। कहो क्योंकर आवे यह हाथा॥

* सराय के प्रबंधक की स्त्री

राय बिबेक साज दल आवे। तौ कदाचि उनसे हट जावे॥
ज्ञान निसान घुरे घट माहीं। सत की कला रहे उर छाई॥

॥ दोहा ॥

बान बिचारे जुद्ध को, मन मनसा रनभुम्म।
सब्द सिरोही गुरुन की, ले फोड़ै घट कुम्भ॥[20]

चेतन जाग भाग सोइ बाचे, जिन सतगुरु सरनि सुधारी॥
चीन्है नारि सार सोइ पावै, तब उतरै भौ पारी।
तुलसीदास फाँस तजि भागै, संतन साथ उबारी॥[21]

आप समझाते हैं कि जो कोई भी मन के विकारों के विरुद्ध युद्ध करना चाहता है, सतगुरु की सहायता के बिना वह इस कार्य में सफल नहीं हो सकता। मोह ने जगत को पूरी तरह प्रभावित किया हुआ है, लेकिन सतगुरु द्वारा प्राप्त ज्ञानरूपी बाण से इसका विनाश किया जा सकता है। क्रोध को बहुत बुरा विकार कहा जाता है और इसके विनाश का एकमात्र साधन क्षमा है। कपटी अभिमान, सतगुरु की शरण से ही दूर भाग सकता है। इस तरह जब जीव संयम, संतोष, क्षमा, विवेक और नम्रता आदि गुणों की फ़ौज लेकर मन को आशाओं और तृष्णाओं की ओर से मोड़कर, सतगुरु द्वारा बख़्शी गई शब्द की तलवार से विकारों पर हमला करता है तो विकारों का घड़ा फूट जाता है। जो भाग्यशाली जीव संत-सतगुरु की शरण ले लेता है, वह अज्ञानता की नींद से जाग जाता है। वह इच्छारूपी नारी का रहस्य जान जाता है। इच्छा-तृष्णा की फाँस से उसका छुटकारा हो जाता है। संतों की संगति में रहते हुए उसका भवसागर से उद्धार हो जाता है और वह विकारों से मुक्त होकर निजघर वापस पहुँच जाता है।

तुलसी साहिब ने मन को वश में करने के लिये सतगुरु की दया-मेहर को ही प्रमुख माना है:

या से उबरे जोइ जन भाई। सतगुरु सत्त पुरुष दरसाई॥
सूरति सत्त लोक में बासा। सो बाचै सतगुरु का दासा॥[22]

जल ओला गोला भयो, फिर घुल पानी होय।
संत चरन गुरु ध्यान से, मन घुल जावे सोय॥[23]

वह कहते हैं कि सतगुरु के उपदेश पर चलनेवाला सेवक, इच्छा के जाल को तोड़कर सतलोक पहुँच जाता है। सतगुरु की दया से ही उसे सतपुरुष के दर्शन हो जाते हैं। जैसे पानी जमकर गोले की शक्ल में ओला बन जाता है और घुल जाने पर फिर से पानी बन जाता है, उसी प्रकार माया के संग से अपना वास्तविक स्वरूप भूल चुका मन संतों की शरण में आने पर, गुरु के ध्यान द्वारा अंतर में अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करके अपने स्रोत में लीन हो जाता है तथा आत्मा भवबंधन से मुक्त हो जाती है।

मनुष्य-जन्म

परमात्मा जब जीव का अपने साथ मिलाप करना चाहता है तो जीव को मनुष्य के रूप में जन्म देता है। मनुष्य-जन्म के अलावा पशु-पक्षी आदि किसी अन्य योनि में परमात्मा से मिलाप कर पाना असंभव है। वास्तव में यह विधान परमात्मा का ख़ुद का बनाया हुआ है। तुलसी साहिब इस बात पर बल देते हैं कि परमात्मा के साथ आत्मा को मिलाप करना है, शरीर को नहीं। आत्मा भी शरीर के अंदर है, परमात्मा भी शरीर के अंदर है और परमात्मा के साथ मिलाप का साधन और मार्ग भी शरीर के अंदर है। यह मनुष्य-जन्म 84 लाख योनियाँ भुगतने के बाद मिलता है, इसलिये यह अत्यंत दुर्लभ है। परमात्मा जीव को मनुष्य के रूप में जन्म देकर उसे विवेक की शक्ति भी देता है ताकि जीव परमात्मा के बनाये विधान को समझ ले। संतों की शरण में जाकर उसकी विवेक-शक्ति जाग्रत हो जाती है और उसे ज्ञान हो जाता है कि यह मनुष्य-देह तो 'नर-नारायणी देह' है। तुलसी साहिब मनुष्य-देह में जन्म लेनेवाले जीव का विवेक जाग्रत करने के लिये उपदेश देते हैं:

ता से अब ये नर तन पाई। अब तुम समझि चलौ घर माईं॥[1]

अब कुलमालिक ने दया करके चौरासी की भटकन के बाद पुन: मनुष्य-जन्म का सुनहरी अवसर बख़्शा है, ताकि जीवात्मा मायारूपी संसार और शरीर के बंधनों से आज़ाद होकर परमात्मारूपी प्रियतम के साथ मिलाप का आनंद प्राप्त कर ले।

मनुष्य-जन्म : एक दुर्लभ अवसर

तुलसी साहिब कहते हैं कि मनुष्य-शरीर ऐसे अनमोल रत्न के समान है, जो बार-बार प्राप्त नहीं होता। आपने मनुष्य-शरीर को दुर्लभ कहा है, यहाँ तक कि देवी-देवता भी इस मनुष्य-शरीर को पाने के लिये लालायित हैं।

ये तन रतन समान, बार बार पावै नहीं।
सतगुरु करत बखान, सुपन जानि जग पेखना॥[2]

यह तन दुर्लभ देव को सब कोइ कहत पुकारि॥
सब कोइ कहत पुकारि देव देही नहिं पावैं।
ऐसे मूरख लोग स्वर्ग की आस लगावैं॥
पुन्न छीन सोइ देव स्वर्ग से नरकै आवैं।
भर्मैं चारो खान पुन्न कहि ताहि रिझावैं॥
तुलसी तन मन तत लखै स्वर्ग पै करै खखारि।
यह तन दुर्लभ देव को सब कोइ कहत पुकारि॥[3]

तुलसी साहिब देवताओं की पूजा करनेवाले और स्वर्ग की इच्छा रखकर प्रभु की भक्ति करनेवाले लोगों की मूर्खता पर दु:ख प्रकट करते हुए कहते हैं कि मनुष्य-देह के लिये तो देवता भी तरसते हैं। श्रेष्ठ पुण्यों के फलस्वरूप जीव को स्वर्गों में निवास मिल जाता है, परंतु जब पुण्यों का फल समाप्त हो जाता है तो उसे पुन: मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ता है और अपने कर्मों के कारण नरकों में भी जाना पड़ सकता है। जब तक जीव देवताओं की पूजा और स्वर्गों की प्राप्ति की इच्छा त्यागकर, संतों द्वारा समझाई गई युक्ति के अनुसार आंतरिक अभ्यास करके प्रभु के साथ मिलाप करने का प्रयत्न नहीं करता, वह अनंत जन्मों तक अनेक योनियों में भटकते हुए बरबाद होता रहता है। तुलसी साहिब कहते हैं, जो जीव इस तन में रहते हुए मन को एकाग्र करके सार तत्त्व को जान लेते हैं, वे स्वर्ग की ओर झाँकना भी नहीं चाहते।

नर की देहि देव नहिं पावे। स्वर्ग आस नर को बँधवावे॥
नर तन दुरलभ देव न पावे। यह नर अधम स्वर्ग को चावे॥
सुख सुर लोक में अधिक कहावे। तो सुर नर देही क्यों चावे॥
यों नहिं मूरख बूझे बानी। देव स्वर्ग तजि नर तन ठानी॥

॥ दोहा॥

स्वर्ग छाँड़ि सब देव यह, नर तन माँगत झार।
यह बिचार मन में करे, तब पावे निरधार॥[4]

देवता भी मनुष्य-शरीर प्राप्त करने की कामना करते हैं, क्योंकि केवल मनुष्य-शरीर में ही परमात्मा से मिलाप हो सकता है और चौरासी से छुटकारा मिल सकता है। फिर भी अज्ञानी जीव स्वर्गों की इच्छा रखकर अनेक प्रकार के कर्म करने में लगा रहता है। तुलसी साहिब प्रश्न करते हैं कि यदि स्वर्ग का सुख उत्तम होता तो देवता मनुष्य-जन्म के लिये क्यों तरसते?

तुलसी साहिब समझाते हैं कि स्वर्ग में मृत्युलोक से अधिक सुख तो हैं, परंतु वे सभी सूक्ष्म शरीर द्वारा भोगे जानेवाले सूक्ष्म भोग हैं, जो परमात्मा के परमधाम के पूर्ण, अविनाशी और अनुपम आत्मिक आनंद की बराबरी नहीं कर सकते। मनुष्य-जन्म के महत्त्व को समझकर ही देवता स्वर्ग के आनंद को छोड़कर मनुष्य-जन्म पाना चाहते हैं।

मनुष्य-शरीर की महिमा

तुलसी साहिब ने मनुष्य-शरीर की अपार महिमा भी की है। नाव मिली अब चढ़न को, नर तन दुरलभ दाव॥[5]—मनुष्य-शरीर भवसागर से पार ले जानेवाली दुर्लभ नाव है।

तुलसी साहिब इसी रहस्य की जानकारी देते हैं कि सार वस्तु अर्थात् परमात्मा इसी शरीर में मौजूद है:

जिन ने तन का ठाट सँवारा। जीव अंस का किया पसारा॥
किया पिंड तन रचा बनाई। सात दीप नौखंड रचाई॥

सो स्वामी है घट के माईं। ता से जीव सकल चलि आई॥
सो स्वामी घट माहिं समाना। सबहि संत ये कहत बखाना॥
पिंड ब्रह्मंड दोऊ से दूरा। बसै पास रहै सदा हजूरा॥
वा का भेद संत से पावै। चढै सुरति छिन छिन में जावै॥[6]

जिस परमपुरुष ने शरीर की रचना की है, उसी ने इसके अंदर आत्मा के रूप में अपना अंश रखा हुआ है। वह रचयिता शरीर की रचना करके स्वयं भी शरीर के अंदर बैठ गया है। सात द्वीप और नौ खंड यानी संपूर्ण सृष्टि उसी ने बनाई है। जो प्रभु पिंड और ब्रह्मांड यानी संपूर्ण सृष्टि से परे माना जाता है, असल में वह शरीर के अंदर स्वयं विराजमान है। जो जीव किसी संत से प्रभु मिलाप के साधन और मार्ग का ज्ञान प्राप्त करके अपने ध्यान को बाहर से अंदर की ओर पलटकर ऊपर चढ़ाई करता है, उसे अपने अंदर ही प्रभु प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है।

जस तिल्ली तन तेल, भा फुलेल फूलै मिलै।
तन भीतर अस खेल, खिलै कँवल मिलि पुरुष में॥
ज्यों तिल्ली बिच तेल निकारा। मिलि गया फूल फुलेल पुकारा॥
ऐसे संग पुरुष तन माईं। सतगुरु जानि भेद बतलाई॥[7]

जैसे तिलों में तेल समाया होता है और वह तेल फूलों के साथ मिलकर इत्र बन जाता है, उसी प्रकार प्रभु शरीर के अंदर समाया हुआ है। सतगुरु सुरत को शब्द के साथ जोड़ने की युक्ति सिखा देता है, जिसका अभ्यास करने पर आत्मा शरीर के स्तर से ऊपर उठकर निजघर वापस पहुँच जाती है—सतगुरु सूरति संध लखावै। तजि सब बंध जीव घर आवै॥[8]

सभी संतजनों की तरह तुलसी साहिब ने भी अपने अंतर में जो अनुभव किया, अपनी वाणी में उसका संकेत दिया है, वह कहते हैं:

ये तन भीतर संतन देखा। यह अदेख गति कहौं अलेखा॥
गंगा जमुना और त्रिबेनी। तन भीतर ब्रह्मण्ड की सैनी॥

पृथ्वी पवन गगन आकासा। यह सब देखे घटहि निवासा॥
पाँच तत्त जल अगिनि समाना। पिंड माहिं ब्रह्मंड बखाना॥
रबि चंदा तारागन होई। और अनेक बिधान समोई॥[9]

यहाँ तुलसी साहिब बता रहे हैं कि मैंने गंगा, यमुना, सरस्वती और इनका संगम भी शरीर के अंदर ही देखा है। धरती, आकाश, चाँद, सूर्य, तारे, पाँच तत्त्व तथा अनेक वस्तुएँ शरीर के अंदर मौजूद हैं। वास्तव में संपूर्ण ब्रह्मांड ही शरीर के अंदर समाया हुआ है।

तुलसी साहिब कहते हैं कि सभी लोक और परमात्मा भी इस शरीर के अंदर ही हैं। इसलिये वह जीव को इस शरीर के अंदर ही प्रेमपूर्वक परमात्मा की खोज करने की प्रेरणा देते हैं:

अली री कोइ गगन घोर घहराई॥ टेक॥
चढ़ि कर गगन दसो दिस देखो, धमधम धमक सुनाई।
अली री अधर घर सुरत लगावे, पावे निरत लखाई॥
पार पुकार सबद धुन बाजे, धरर मगन सरसाई।
नौ पर नैन ऐन अंदर में, सूई में सुमेर समाई॥
सागर छीर मीन मारग होय, द्वय दल कँवल कहाई॥
अगम अपार पार स्रुत चाले, हाल डोल थिरताई।
जोइ मठ मकर तार दृढ़ डोरी, पौरी पकरि दिखाई॥
धस करि धाय जाय तुलसी जो, सो सब भेद बताई।
पिय पद पीर परस सोइ सजनी, मगन प्रीत गुन गाई॥[10]

आत्मा को संबोधित करते हुए तुलसी साहिब कहते हैं: हे सखी! आंतरिक आकाश में पहुँचकर वहाँ शब्द की घोर गुँजार को सुन। मेरी प्यारी! तू निरत को जाग्रत करके आंतरिक आकाश में चारों तरफ़ देख और सुरत को शब्द की धार से जोड़। जब तुम अपने ध्यान को नौ द्वारों से समेटकर अंदर दसवें दरवाज़े यानी तीसरे तिल पर पहुँचोगी तो तुम्हें

सूई के छिद्र में सुमेरु पर्वत समाया हुआ दिखाई देगा अर्थात् दसवें दरवाज़े पर पहुँचकर आंतरिक रूहानी जगत के विशाल दृश्य दिखाई देने शुरू हो जायेंगे और शब्द के बाजे सुनाई देने लगेंगे। तू उस रस में मस्त हो जायेगी और तुझे उसमें से अपार आनंद प्राप्त होगा। अंतर में शब्दरूपी सागर से होकर मीन मार्ग द्वारा सुरत उस स्थान पर पहुँचती है, जिसे दो दल का कमल कहा जाता है। जो आत्मा मकड़ीमार्ग और मीनमार्ग पर चलती हुई प्रभु प्रियतम के अगम धाम में पहुँच जाती है, वह सदैव प्रभु के प्रेम में मगन होकर उसके गुण गाती रहती है।

मनुष्य-जन्म का उद्देश्य

जब तक जीव को सतगुरु से सुरत को शब्द के साथ जोड़ने की युक्ति प्राप्त नहीं होती, तब तक मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता। जब तक जीव *चमर चाम की दृस्टि में, तन तत तिमिर समान॥*[11] अर्थात् स्थूल आँखों से दिखाई देनेवाले संसार तक ही सीमित रहता है, तब तक उसे आंतरिक सार पदार्थ को देखनेवाली दिव्य दृष्टि प्राप्त नहीं होती। तुलसी साहिब मनुष्य-जन्म के मक़सद के बारे में जीवों को सचेत करते हुए यह संदेश देते हैं:

बहुत काल भये पिउ तजे, माया मोह भुलान।
नर तन पाइ न पिउ लखा, कस घर परै पिछान॥[12]

अनंत काल से प्रभु से बिछुड़ी हुई आत्मा संसार में आकर मोह-माया के जाल में फँस गई है। जो जीवात्मा मनुष्य-जन्म से लाभ उठाकर प्रभुरूपी प्रियतम की पहचान नहीं करती, वह निजघर वापस कैसे पहुँच सकती है?

कल्प कल्प कलपत भये, जुग जुग जोवत बाट।
कोई री सोहागिनि ना मिली, पूछौं पिया घर घाट॥
नर तन नगर डगर मिलै, कहैं सब संत सुजान।
फिरि पसु पंछिन में नहीं, जड़वत जीव भुलान॥[13]

जीव युगों-युगों से प्रभु के वियोग में विलाप करता और तड़पता रहता है। उसका किसी ऐसी सुहागिन से मेल नहीं हुआ है जो प्रभुरूपी प्रियतम के साथ मिलाप कर चुकी है और जो उसे प्रियतम के घर जाने का मार्ग बता सके। सभी पूर्ण संतों ने उपदेश दिया है कि उस प्रभु प्रियतम के साथ मिलाप का मार्ग मनुष्य-शरीररूपी नगर के अंदर है और इस मार्ग का ज्ञान केवल पूर्ण संत-महात्माओं से ही प्राप्त हो सकता है। पशु-पक्षी आदि अन्य किसी योनि में प्रभु के साथ मिलाप के मार्ग का ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता।

हे मुसाफिर जागो, क्या सोवत बीती है रैन॥ टेक॥
जो सोये तिन सरबस खोये, जागे जोइ बड़ भाग रे॥
सतगुर मूल मरम घर भूले, फूले फिरत अभाग रे॥
माया मोह मान गसि गाढ़े, बढ़ी कुमति की लाग रे॥
नर तन सार समझ यहि औसर, अब सब बन्धन त्याग रे॥
तुलसी तीर भीर भवसागर, हंस बसो तजि काग रे॥[14]

तुलसी साहिब उपदेश देते हैं: मेरे प्यारे! तू अज्ञानता की नींद से जाग। जो मुसाफ़िर अज्ञानता की नींद में सोये रहे, उनका जन्म व्यर्थ हो गया। जिन्होंने सावधान होकर निजघर की ओर अपना सफ़र शुरू कर दिया है, वे भाग्यशाली हैं। जो अज्ञानी जीव दुर्मति का शिकार हो गये हैं, वे मोह-माया और मान-सम्मान में बुरी तरह जकड़े हुए हैं। मेरे प्यारे! तू बहुत देर से अज्ञानता की नींद में सोया हुआ है। अब तो जागकर मनुष्य-जन्म के वास्तविक उद्देश्य को समझने का यत्न कर। तू माया के सारे बंधन तोड़कर इस अमूल्य अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न कर। इस भवसागर के किनारे पर जीवों की भारी भीड़ लगी है। तू माया के पदार्थों की गंदगी खाने की कागवृत्ति त्यागकर, नाम के मोती चुगनेवाले हंस की तरह निर्मल आत्मिक स्वरूप को प्राप्त करके निजघर वापस पहुँच जा।

तुलसी साहिब ने मनुष्य-जन्म की उपमा होली के त्यौहार और बसंत ऋतु से की है और साथ ही साथ इस दुर्लभ मनुष्य-जन्म को प्रभु मिलाप के उद्देश्य को पूरा करने का सही मौक़ा बताया है:

नर तन नगर बिंद बिन्द्रावन, तन मन चीन्ह बिहार।
होरी अँग भंग कर जानौ, तुलसी सज साज मिलौ री॥[15]

अहो आली होरी लख बौरी हो॥ टेक॥
सूरति रंग रँगौ मन केसरि, ले पच पाँच निकारि।
सखियाँ पचीस पकरि पिचुकारी, मारौ मन को मुख मोरी॥[16]

आप कहते हैं कि शरीररूपी नगर में भ्रूमध्य यानी दोनों नेत्रों के बीच, मस्तक में वृन्दावन है जहाँ मन आनंद लेता है। सुरत सखी को जीते-जी शरीर से ऊपर उठकर भक्ति के शृंगार द्वारा प्रभु-प्रियतम के साथ मिलाप की होली खेलनी चाहिये। इस अवसर से लाभ उठाकर सुरत को प्रेम और भक्तिरूपी केसर के रंग में रँग जाना चाहिये और शरीररूपी पिचकारी में भरा हुआ पाँच विकारों और पच्चीस प्रकृतियों का रंग बाहर फेंक देना चाहिये। यह कार्य मन का रुख़ बाहर से अंदर और नीचे से ऊपर की ओर मोड़कर ही हो सकता है।

फिर वह मनुष्य-जन्म की उपमा बसंत ऋतु से करते हुए कहते हैं:

आई आई कंथ बसंत लाग। काया बन फूले भँवर बाग॥ टेक॥
तन भीतर नैना निहार। सुरति निरति लेकर गुँजार॥
नौ पल्लव बेली भँवर जाग। ले सुगंध तन बिषय त्याग॥
अमर लोक इक अजर दूब। हद अनहद के पार खूब॥
चढ़ि कर देखौ सुरति साग। जो कोइ निरखै बड़े भाग॥
कोइ खेलै संत बसंत बूझ। जिन आदि अंत की राह सूझ॥
ये अदेख अंदर में फाग। जहँ बिबिध तरंग रँग उठत राग॥

सत्त पुरुष पद पुहुप पास। जहँ भूमि भँवर मन कर निवास॥
तुलसीदास भौ भरम आग। कोइ जरत न जागै बड़ अभाग॥[17]

मनुष्य-जन्म बसंत की सुहावनी ऋतु के समान है। शरीर के अंदर रूहानी दृश्यरूपी फूलों के बाग़ खिले हुए हैं और अनेक आत्मारूपी भँवरे वहाँ आनंद उठा रहे हैं। इस अवसर से लाभ उठाकर कंत के साथ मिलाप कर लो तथा ध्यान को बाहर से अंदर की ओर पलटकर सुरत द्वारा अंतर में शब्द के राग सुनो और निरत द्वारा शब्द का प्रकाश देखो। विषय-विकारों का त्याग करके अंतर में नई-नई खिली फुलवारी का आनंद उठाओ। तुलसी साहिब कहते हैं कि देश-काल की सीमा से परे एक अमर लोक है, जहाँ ऐसी हरी-भरी घास है, जो कभी मुरझाती नहीं अर्थात् सचखंड में सदा एकरस बसंत ऋतु छाई रहती है। कोई भाग्यशाली जीवात्मा ही उस देश तक पहुँचकर वहाँ के सुंदर दृश्य का आनंद उठा सकती है। अनादि और अमर सतलोक के मार्ग का ज्ञानी, केवल कोई पूर्ण संत ही अविनाशी मंडल में पहुँचकर, वहाँ के बसंत का आनंद लेता है। वह आगे कहते हैं कि अंतर में अद्भुत होली मनाई जा रही है और शब्द की रंग-बिरंगी, भाँति-भाँति की राग-रागिनियाँ सुनाई दे रही हैं। सतपुरुष कमल पर विराजमान है और हर तरफ़ आत्मारूपी भँवरे गुँजार कर रहे हैं। जो व्यक्ति मनुष्य-जन्म के बसंत से लाभ उठाकर निज धाम नहीं पहुँचता, वह उस बसंत का आनंद उठाने के बजाय, इस मायारूपी संसार के भय और भ्रम की अग्नि में जलता रहता है, यह जीव का दुर्भाग्य है।

जीव की अज्ञानता

मनुष्य-जन्म के उद्देश्य के प्रति लापरवाह रहनेवाले जीव की हालत का वर्णन करते हुए तुलसी साहिब कहते हैं:

नर तन पाय किया का भाई। अंदर की नहिं अगिन बुझाई॥
जुग जुग रहा खानि में भटका। काल कला कर्मन में लटका॥

नर तन ले कहो का फल पाया। जाना जो जिन आप बनाया॥
यह औसर भलि भाँति बिचारे। नहिं यह जन्म वायदे हारे॥
मन आपने बिबेक बसावे। बढ़ी घटी सब नजर में आवे॥[18]

हे अज्ञानी जीव! तू मनुष्य-जन्म के दुर्लभ और अनमोल अवसर से लाभ उठाकर आशा-तृष्णा और विषय-विकारों की आग को क्यों नहीं बुझाता और अपने रचयिता की पहचान क्यों नहीं करता? तू इस अवसर से पूरा लाभ उठा ले। माता के गर्भ में तूने प्रभु के साथ जो वायदा किया था कि मैं पल-पल, श्वास-श्वास तेरी भक्ति करूँगा, उसको सदा याद रख। तू अपने मन को निर्मल करके विवेक का गुण धारण कर ताकि तुझे भले-बुरे का ज्ञान हो जाये।

तुलसी साहिब जीव की ग़फ़लत पर दु:ख प्रकट करते हुए कहते हैं:

जग धंधे में जन्म बिताया। साँझ पड़े घर अपने आया॥
भोजन करिके खाट बिछाई। पौंढ़े पाँव पसारे जाई॥
ऐसे जन्म गयो सब बीती। कस आवे सतसंग की रीती॥[19]

आपका कहना है कि मनुष्य दिन भर दुनिया के धंधों में उलझा रहता है और रात को भरपेट भोजन करके पैर पसारकर सो जाता है। वह अपना जन्म इसी तरह बरबाद कर लेता है। ऐसी हालत में उसका ध्यान सच्चे ज्ञान का प्रकाश प्रदान करनेवाले सत्संग की तरफ़ किस प्रकार जा सकता है?

जिन नर तन में मूल बिसारा। कबहु न होय खानि निरबारा॥
उत्पति परलय में जिव जावे। फिरि फिरि जग जिव खानि समावे॥
करनी करे भोग फल भाई। जोनी धर फल को भुगताई॥[20]

जो अज्ञानी जीव मनुष्य-शरीर को प्राप्त करके अपने मूल की अर्थात् परमपिता परमात्मा की पहचान नहीं करते, वे सदैव चौरासी के चक्कर में

पड़े रहते हैं और अपने कर्मों का फल भोगने के लिये बार-बार जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

तुलसी साहिब सांसारिक भोगों में लिप्त रहनेवाले जीव को चेतावनी देते हुए कहते है:

नर धरि देह कुसल कहा कीन्ही॥ टेक॥
साधू संग रंग नहिं राचे, खोटी बुद्धि लटक लौ लीन्ही॥
आठों पहर बिषय बस माहीं, जुग जुग रही रे सुरति रस भीनी॥
धुर गुर आदि उमेद न राखी, चाखी चौरस परस न पीनी॥
तुलसी तन बरबाद गँवायो, खायो माहुर मरम न चीन्ही॥[21]

मेरे प्यारे! तुमने मनुष्य-शरीर में आने के बाद सच्चे सुख की प्राप्ति के लिये कौन-सा प्रयत्न किया है? तुमने कभी भी पूर्ण साधु की संगति द्वारा हृदय को प्रभु-प्रेम के रंग में रँगने का प्रयत्न नहीं किया। तू सदैव मूर्खता का शिकार रहा। तू दिन-रात विषयों में लिप्त रहा और तेरी सुरत युगों से इनके रस में मग्न रही। तुमने कभी भी सतगुरु की सहायता से अपने मूल यानी असली घर वापस जाने का प्रयत्न नहीं किया। तू सदैव चौरासी के चक्कर में पड़ा रहा, परंतु प्रभु-प्रेम का रस पीने का प्रयत्न नहीं किया। जिन भोगों को तू अमृत के समान समझता है, वे वास्तव में आत्मिक जीवन का नाश करनेवाले विष हैं। तू इस विष को पीता रहा और मनुष्य-जन्म का यह दुर्लभ अवसर तूने व्यर्थ में गँवा दिया। तूने कभी भी प्रभु का रहस्य समझने की कोशिश नहीं की।

चेतावनी के साथ-साथ तुलसी साहिब जीव को प्रभुप्राप्ति के लक्ष्य को हासिल करने की प्रेरणा भी देते हैं:

जात रे तन बाद बिताना॥ टेक॥
छिन छिन उमर घटत दिन राती, सोवत क्या उठि जाग बिहाना॥
यह देही बारू सम भीती, बिनसत पल बेहोस हैवाना॥ ...

यह तन की अन आस अनाड़ी, तैं बिषबंधन फाँस फँदाना॥
यह माया काया छिन भगी, रँग रस करि करि डारत खाना॥
सुख सम्पति आसिक इंद्री में, बिष बस चौज मौज मन माना॥
तुलसी ताव दाव यहि औसर, बासर निसि गइ भजन न जाना॥[22]

तुलसी साहिब जीव को सावधान करते हैं: मेरे प्यारे! तेरा मनुष्य-जन्म बरबाद हो रहा है। तेरी आयु पल-पल घटती जा रही है, तू अब अज्ञानता की नींद से जाग जा। यह देह रेत की दीवार के समान है जो किसी भी पल गिर सकती है, तू पशुओं की तरह क्यों लापरवाह बना बैठा है?

तुझे यह अवसर प्रभु की भक्ति द्वारा, उससे मिलाप करने के लिये मिला था, परंतु तूने दिन-रात भजन के बिना व्यर्थ गँवा दिये। तू अज्ञानतावश इंद्रियों के भोगों, धन-दौलत, संपत्ति आदि को सुख का साधन समझकर इनमें मस्त रहा, जबकि वास्तव में ये विष से भरे हुए हैं। परमार्थ की दृष्टि से मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य प्रभु के साथ मिलाप करना है। जिसने यह कार्य नहीं किया, उसके दिन-रात यूँ ही बरबाद हो गये। उसका अनमोल मनुष्य-जन्म कौड़ियों के भाव बिक गया।

तुलसी साहिब अफ़सोस प्रकट करते हैं कि अज्ञानी जीव पत्थर की मूर्तियों को शुद्ध या चेतन कहता है, परंतु जिस शरीर के अंदर चेतन आत्मा और परमचेतन परमात्मा साक्षात विराजमान है, वह उसको निकृष्ट यानी अशुद्ध मानता है।

आतम चेतन निष्ट जो भइया। पाहन जड़ सुध केहि बिधि रहिया॥
पाहन को तुम सुद्ध बतावौ। चेतन को धरि दोष लगावौ॥[23]

शरीर के अंदर मौजूद परमचेतन परमात्मा को छोड़कर पत्थर की जड़ मूर्तियों की पूजा करना घोर अज्ञानता है:

अपना पिंड न खोजो भाई। तुम पत्थर में ढूँढ़ौ जाई॥
खोज राह तुम दूर बहाई। सूरति पाहन माहिं लगाई॥[24]

तुलसी साहिब जीव की अज्ञानता देखकर कहते हैं कि वह परमात्मा शरीर के अंदर है, परंतु अज्ञानी जीव उसे अपने अंदर से खोजने के बजाय बाहर पत्थरों की मूर्तियों में ढूँढ़ता रहता है, ऐसे बाहरमुखी साधनों द्वारा हम उस परमात्मा से और दूर होते जाते हैं।

तुलसी साहिब ने पत्थर की पूजा का फल भी स्पष्ट रूप से बताया है:

पाहन पूजा साध न गावैं। और जीव को नाहिं बतावैं॥
साधू चेतन आतम भाखा। चेतन की पूजा बिधि राखा॥
तुम सिष जड़ पूजा बतलावा। पाहन आसा बास लखावा॥
छूटै तन पाहन मन जावै। आसा जहँ जेहि तहाँ समावै॥
पुनि पाहन में होइ है बासा। अस अस सिष्य बँधाई आसा॥[25]

आप कहते हैं कि पूर्ण संत-महात्मा कभी भी चेतन जीवात्मा को जड़ मूर्तियों की पूजा करने का उपदेश नहीं देते, जबकि अधूरे साधु जीवों को मूर्तियों की पूजा में लगाकर भ्रमों में डाल देते हैं। जो लोग उन अज्ञानी साधुओं के पीछे लगकर निर्जीव मूर्तियों की पूजा में लगे रहते हैं, वे मृत्यु के पश्चात पत्थरों में जन्म लेते हैं।

तुलसी साहिब कहते हैं कि मनुष्य-जन्म अति दुर्लभ है और अज्ञानी जीव इसे व्यर्थ में ही गँवा देता है। इन जन्म का एकमात्र उद्देश्य प्रभु से मिलाप करना है। अतः हमें इस अवसर को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये।

कर्म और फल

तुलसी साहिब की वाणी में कर्म और फल विषय को प्रमुख स्थान मिला है। दरअसल कर्म और फल का नियम परमार्थ का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसका मनुष्य के लोक और परलोक दोनों के साथ गहरा संबंध है। प्रत्येक मनुष्य सुख की इच्छा रखता है, परंतु वह बीज ऐसे कर्मों के बोता है जिनसे दु:खों की फ़सल पैदा होती है। संतों ने संसार को वह कर्मभूमि कहा है, जिसमें 'जैसा बीज, वैसा फल' का नियम लागू होता है।

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में कर्मफल के बारे में दृढ़तापूर्वक कहा है:

कर्म आस की बास में, जोनी जोनि समाय।
जो जैसी करनी करे, सो तैसे फल खाय॥[1]

कर्म जोग जोनी भरमाये। कर्म किया सोई फल पाये॥[2]

तुलसी साहिब के इस कथन की सच्चाई के पक्ष में कई प्रमाण मिलते हैं। जब हम देखते हैं कि संसार में कुछ लोग दृष्टि वाले होते हैं, कुछ अंधे होते हैं, कुछ अमीर और कुछ ग़रीब, कुछ बुद्धिमान और कुछ मूर्ख, कुछ स्वस्थ, सुंदर और कुछ बहरे, गूँगे, लँगड़े या कुरूप होते हैं तो हमें विचार करना चाहिये कि ऐसा क्यों होता है? वास्तव में यह सब कुछ परमात्मा द्वारा बनाये गये कर्मफल के विधान के अनुसार ही होता है। जीव का प्रारब्ध विधाता ही लिखता है, परंतु उसका आधार जीव के अपने कर्म होते हैं। जब तक हम इस मूल सिद्धांत को नहीं समझते, हमारे लिये संसार में व्याप्त अनेकरूपता का कारण समझ पाना असंभव हो जाता है।

कर्मफल का सिद्धांत

कर्मफल के सिद्धांत का सूक्ष्म पहलू यह है कि मनुष्य की कर्म करने की आज़ादी जहाँ एक ओर उसके लिये सबसे बड़ा वरदान है, वहीं दूसरी ओर संताप का कारण भी है। मनुष्य की त्रासदी यह है कि वह मनमरज़ी के कर्म से मनचाहा फल लेना चाहता है। मन की मरज़ी से किया गया कर्म ही फल को भुगतने की मजबूरी बन जाता है।

मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन उसकी अज्ञानता है। वह सोचता है कि न ही कोई उसके कर्मों का हिसाब रख रहा है और न ही उसे अपने कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। लोगों को इस बात का भी भ्रम है कि अच्छे कर्म करने से बुरे कर्मों का फल भोगने से छुटकारा मिल जाता है। दरअसल दोनों प्रकार के कर्मों का फल अलग-अलग भोगना पड़ता है। इसलिये अच्छे और बुरे कर्म यानी पुण्य और पाप दोनों ही हमें बाँधनेवाले हैं। कर्म और फल जीव को माया की इस रचना के साथ बाँधकर रखने के लिये काल और माया द्वारा बुना गया बहुत सूक्ष्म, विशाल और मज़बूत जाल है।

पारमार्थिक साहित्य में इन तीन प्रकार के कर्मों का वर्णन किया गया है: प्रारब्ध, संचित और क्रियमान। एक जन्म के सभी कर्मों का भुगतान उसी जन्म में या अगले जन्म में संभव नहीं होता। इस प्रकार हर जन्म के अनभोगे कर्मों को इकट्ठा रखा जाता है जो धीरे-धीरे कर्मों का विशाल भंडार बन जाता है। अनेक जन्मों के इन अनभोगे कर्मों के भंडार को संचित कर्म कहा जाता है। प्रत्येक जन्म में, पिछले जन्म के कुछ कर्मों और संचित कर्मों में से प्रारब्ध तैयार होती है। उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। उस प्रारब्ध का भुगतान करते हुए, जीव जो भी नये कर्म करता है, उन्हें क्रियमान कर्म या नये कर्म कहा जाता है। जीव पूर्वजन्मों के कर्मों का भुगतान भी करता है और उनके भंडार को निरंतर बढ़ाता भी रहता है। आपकी वाणी में इन तीनों अंगों का उल्लेख मिलता है:

इस प्रकार वह सदैव आवागमन के चक्कर से बँधा रहता है। चार खानियाँ, चौरासी लाख योनियाँ और नरक-स्वर्ग इसी चक्कर का अंग हैं।

अटल कर्मगति

कर्म और फल का सिद्धांत सृष्टि के आरंभ से ही चला आ रहा है और इसी तथ्य की पुष्टि के लिये तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में सूरदास जी का निम्नलिखित शब्द भी सम्मिलित किया है, जिसमें अनेकों दृष्टांत इस सत्य को उजागर करते हैं कि भले ही कितने उपाय क्यों न कर लिये जायें, लेकिन कर्मगति अटल है:

कर्म गति टारैउ नाहिं टरै।
कहँ वै राहु कहाँ वै रबि ससि, आनि सँजोग परै॥ टेक॥
गुरु बसिष्ठ पंडित मुनि ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरै।
तात मरन सिया हरन राम बन, बिपति में बिपति परै॥
पंडो के प्रभु बड़े सारथी, सोऊ बन निकरै।
दुरबासा से स्राप दिवायौ, जदु कुल नास करै॥
रावन अस तैंतीस कोटि सब, एकछत राज करै।
मिरतक बाँधि कूप में डारै, भावी सोच मरै॥
हरीचंद ऐसे भये राजा, डोम घर पानी भरै।
भारथ में भरुही के अंडा, घंटा टूटि परै॥
तीनि लोक करमन के बस में, जो जो जनम धरै।
दस औतार भावी के बस में, सूर सुरति उबरै॥[3]

सूरदास जी ने अनेक उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि कर्मों का फल हर हाल में भोगना ही पड़ता है। आप कहते हैं कि राहू, चंद्रमा और सूर्य अलग-अलग प्रभाव वाले ग्रह हैं, परंतु वे कर्मों के फल के ही कारण भगवान राम की जन्म कुंडली में इकट्ठे हो गये। वसिष्ठ मुनि जैसे गुरु ने बहुत सावधानी से सूर्य, चंद्रमा और राहू आदि ग्रहों की स्थिति देखते हुए भगवान राम के विवाह के लिये लगन निकाला। इसके बावजूद उनके पिता राजा दशरथ ने पुत्र के वियोग में प्राण त्याग दिये; भगवान राम को बनवास मिला; रावण ने सीता का हरण किया और भगवान राम को अनेक दु:ख

सहने पड़े। भगवान कृष्ण पाँडवों के सारथी थे, इसके बावजूद पाँडवों को बनवास दिया गया और वे कई साल जंगलों में भटकते रहे। यादव वंश के कुछ शरारती लड़कों ने एक लड़के के पेट पर कपड़े से बाटी को उलटा बाँध दिया और उसे लड़कियों के वस्त्र पहनाकर दुर्वासा ऋषि के पास ले गये। उन्होंने मज़ाक करते हुए ऋषि से पूछा कि इसके पेट से क्या पैदा होगा? दुर्वासा ऋषि ने क्रोध में आकर श्राप दे दिया कि इसके पेट से वह पैदा होगा, जिसके कारण यादव वंश का नाश हो जायेगा। लड़के घबरा गये। उन्होंने उस बाटी को पत्थर पर रगड़-रगड़कर ख़त्म कर दिया और उसके बचे हुए टुकड़े को दरिया में फेंक दिया। उन्होंने जिस पत्थर पर उस बाटी को रगड़ा था, वहाँ तीर की तरह तीखी और लंबी जंगली घास उग आई। बाटी का जो टुकड़ा बच गया था, उसे एक मछली ने निगल लिया। उस मछली को मछुआरे ने पकड़ लिया। मछली के पेट से मिले उस तीखे टुकड़े को मछुआरे ने अपने तीर के आगे लगा लिया। उसी तीर द्वारा उसने भगवान कृष्ण के पैर में चमक रहे पद्म को हिरण की आँख समझकर बेध दिया। यह सब उनके द्वारा पूर्वजन्म में तीर से बाली का वध करने के फलस्वरूप हुआ। यदुवंशियों का आपस में झगड़ा हो गया। लड़ते-लड़ते वे उस तीखी घास के जंगल में पहुँच गये और वह घास ही उनकी मृत्यु का कारण बन गई।

रावण जैसा महाबली, जिसने तेंतीस करोड़ देवताओं को वश में किया हुआ था और जिसने 'एकछत राज' यानी एकछत्र राज्य का वरदान प्राप्त किया हुआ था, वह भी अंत में मृत्यु का शिकार हो गया और उसके मृत शरीर को कुएँ में फेंक दिया गया। हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी को डोम* का सेवक बनकर रहना पड़ा। महाभारत के युद्ध के समय एक चिड़िया ने युद्ध के मैदान में अंडा दिया था और उसे डर था कि कहीं उसका अंडा फूट न जाये। परमात्मा की दया से हाथी के गले में लटक रहा घंटा टूटकर अंडे के ऊपर आ गया। उस घंटे ने अंडे को ढक दिया और अंडा नहीं फूटा।

* मृतकों को आग देने का कार्य करनेवाली एक जाति।

आप समझाते हैं कि कर्म और फल का नियम समस्त त्रिलोकी पर एक समान लागू होता है। और तो और, विष्णु के दस अवतार भी कर्मों के कारण ही हुए हैं। कोई बिरला शूरवीर ही अपनी सुरत को अंदर स्थिर करके, कर्मों का जाल तोड़ने में सफल होता है।

तुलसी साहिब ने अमरता का वरदान पानेवाले रावण और सत्यमार्ग पर चलनेवाले पाँडवों का दृष्टांत देकर कर्मफल के नियम को अटल सिद्ध किया है:

रावन लंकपती पै हती, सो रती नहिं बास बसे री।
पंडौ पाँच गये तजि देही, सोई हाड़ हिमाले गले री।
डगर जम ने घट घेरी॥[4]

तुलसी साहिब कहते हैं: लंका का राजा रावण भगवान राम के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। उसका सारा जीवन अशांति में बीता। पाँचों पाँडव विजयप्राप्ति के बाद हिमालय पर चढ़ाई करते हुए बर्फ़ में गल गये।

तुलसी साहिब ने अपने शिष्य हिरदे के माध्यम से यही उपदेश दोहराया है कि जीव पर कर्मों का प्रभाव युगों-युगों तक बना रहता है। देवी-देवता भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके हैं।

राम सिया कह कानन जोगू। कर्म प्रधान सत्त कहे लोगू॥
अस बोले रघुबंस कुमारा। बिध का लिखा को मेटन हारा॥
कर्म प्रधान बिस्व रच राखा। जो जस किया सोई फल चाखा॥
ऐसे साख पुकारे बानी। पढ़ करके कोइ नहिं पहिचानी॥
हिरदे कर्म बिषाद, बाद जन्म ऐसे गयो।
रहयौ जुगन में साथ, हाथ पकरि आवे नहीं॥[5]

इस दृष्टांत द्वारा तुलसी साहिब पुनः कर्मगति के अटल होने की बात दोहराते हुए कहते हैं कि भगवान राम और सीता को घासफूस के बिछौने पर सोया देखकर निषाद बहुत दुखी हुआ। उसने अपने हृदय का दुःख

लक्ष्मण के आगे प्रकट करते हुए कहा: क्या अयोध्या के राजा श्री रामचंद्र और उनकी पत्नी सीता जंगल में रहने के क़ाबिल हैं? लक्ष्मण जी निषाद को समझाते हैं कि संसार में हर जीव अपने ही कर्मों का फल भोगता है। आप कहते हैं कि संत-महात्माओं ने अपनी वाणी में यही उपदेश दिया है, परंतु लोग वाणी पढ़ने के बावजूद इस कर्मफल के रहस्य को नहीं जान पाते हैं।

जीव जो कर्म करता है उसका फल उसका पीछा नहीं छोड़ता और उसका जन्म व्यर्थ हो जाता है। कर्मों का प्रभाव युगों-युगों तक क़ायम रहता है। कमान में से निकला तीर पुन: वापस नहीं आता। इसी प्रकार जीव अपने कर्मों के फल से बच नहीं सकता। *राम कृष्ण औतारी आहीं। भोगे कर्म जाइ तन माहीं॥*[6]—साधारण जीव तो एक तरफ़ रहे, राम और कृष्ण जैसे अवतारों को भी कर्मों का फल भोगना पड़ा है।

कर्म और काया का अटूट संबंध

तुलसी साहिब कहते हैं कि कर्म करने की प्रेरणा बुद्धि से मिलती है, इसलिये जीव अपनी बुद्धि के अनुसार जैसे कर्म करता है, उसी के अनुसार उसे शरीर मिलता है:

कर्म प्रधान बुद्धि उपजाई। रह सुभ असुभ कर्म के माहीं॥
जस जस कर्म कीन्ह अधिकारा। जो जस जोनि बंद में डारा॥
जो जस बनिज किया बैपारी। दुख सुख हानि लाभ सँग चारी॥
जो आसा बस बनिज बिचारा। बहा भवसिंध चौरासी धारा॥
खान खान करनी से काया। फैली प्रगट सृस्टि में माया॥
उपजे मरे धरे फिर देही। जो जस करनी के फल लेही॥
लख चौरासी रह्यो अचेता। नर तन में बिरला कोइ चेता॥
सतगुरु साख समझ कोइ बूझी। अंजन तिमर आँख जब सूझी॥[7]

यहाँ तुलसी साहिब समझाते हैं: इस जन्म में जीव को पूर्वजन्मों के अनुसार बुद्धि और वृत्ति प्राप्त होती है और जीव जो भी अच्छे-बुरे कर्म

करता है, पूर्वकर्मों के प्रभाव से उपजी बुद्धि के अनुसार करता है। जिस प्रकार के वह कर्म करता है, उनके भुगतान के लिये उसी प्रकार की योनि में उसे जन्म लेना पड़ता है। जिस प्रकार व्यापारी को व्यापार में हुई लाभ-हानि को सहन करना पड़ता है, उसी प्रकार जीव कर्मों का फल भोगने के लिये मजबूर है, जिसके फलस्वरूप वह चौरासी में भटकता रहता है। यह संसार माया का पसारा है। जीव माया के लोभ में पड़कर ही कर्मों का फल भोगने के लिये चार खानियों में अनेक शरीर धारण करता है। चौरासी की निचली भोग योनियों में जीव हमेशा अचेत अवस्था में रहता है। मनुष्य-जन्म में इसे विवेक की शक्ति दी जाती है, परंतु फिर भी कोई बिरला जीव ही उसका प्रयोग करके चौरासी के जंजाल से निकलने के बारे में सोचता है। जो भाग्यशाली जीव सतगुरु के उपदेश का रहस्य समझ लेता है और उनका ज्ञानरूपी अंजन आँखों में डालता है, उसका अज्ञानता का अंधकार मिट जाता है।

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में यह स्पष्ट रूप से समझाया है कि कर्म का काया से और काया का कर्म से संबंध निरंतर बना रहता है:

कर्म अपरबल भारी भोगू। सब जग जार जबर यह रोगू॥
बिना कर्म कोइ काया नाहीं। जग बस रहा कर्म के माहीं॥
काया बिना कर्म नहिं होई। कर्म बिना काया नहिं कोई॥
यह अनादि से रचना भाई। जुगन जुगन ऐसे चलि आई॥
कर्म भूत सब जग को लागा। यासे बची नहीं कोई जागा॥
कीट पतंग संग सब केरे। तीन लोक अंडा सब घेरे॥
सात दीप नव खंड कहावे। चौदह लोक कर्म बस गावे॥
चन्द्र सूर अरु दस औतारा। यह सब बँधे कर्म की जारा॥[8]

वह कहते हैं कि सारा संसार कर्मों के विकराल रोग से पीड़ित है। सभी प्राणी एक भयानक चक्रव्यूह में फँसे हुए हैं। कर्म के बिना शरीर नहीं और शरीर के बिना कर्म नहीं। अनादि काल से, युगों-युगों से यही

सिलसिला चला आ रहा है। सारे संसार को कर्मों के भूत ने अपने वश में किया हुआ है। कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ कर्म और फल का चक्कर न चल रहा हो। कीट-पतंगों से लेकर तीन लोकों, सात द्वीपों, नौ खंडों तथा चौदह भवनों तक कर्मों का महाजाल फैला हुआ है। धर्मग्रंथों में समझाया गया है कि चाँद, सूर्य और दस अवतार भी कर्म के महाजाल में बँधे हुए हैं।

कर्मफल के प्रति अज्ञानता

मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन उसका अज्ञान है। वह इस धोखे में रहता है कि उसके कर्मों का कोई हिसाब-किताब नहीं है और उसे अपने कर्मों का फल भी नहीं भोगना पड़ेगा। उसे इस बात का भी भ्रम है कि उसके पुण्य-कर्म पापों का नाश कर देंगे। परंतु जीव को इस बात की समझ ही नहीं है कि अगर पाप लोहे की ज़ंजीरें हैं तो पुण्य सोने की बेड़ियाँ। दोनों प्रकार के कर्म जीव को आवागमन के चक्कर में फँसाये रखने के लिये समान रूप से प्रभावी हैं।

संत-महात्मा कर्म और उसके फल से संबंधित दो बातों पर सबसे अधिक बल देते हैं। पहली यह कि कर्म के पीछे सुख की लालसा होती है, परंतु अज्ञानी जीव यह नहीं जानता कि कर्म, फल को जन्म देता है और फल भोगने के लिये फिर से जन्म लेना पड़ता है। इसलिये कर्म सुख का साधन न होकर, दु:ख का कारण बन जाता है। कर्म करने की आज़ादी फल भोगने के बंधन को जन्म देती है। इसलिये जीव को कर्म करने की आज़ादी की नहीं, बल्कि कर्म करने से आज़ाद होने की आवश्यकता है।

संतजन दूसरी बात यह समझाते हैं कि परमात्मा आनंदरूप है। परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा भी अपनी मूल प्रकृति से आनंद रूप है। कर्मों के कारण इसकी मूल प्रकृति दब गई है। मन-इंद्रियों की संगति और उनके द्वारा उत्पन्न हुई इच्छाओं के अधीन जीव जो कर्म करता है उससे आत्मा के मूल स्वभाव पर परदा पड़ जाता है।

कर्मजाल से मुक्ति

अब प्रश्न यह है कि जीव कर्मजाल से मुक्त कैसे हो? जिस प्रकार एक बड़ा साहूकार अनेक छोटे क़र्ज़दारों के क़र्ज़ का भुगतान करके, उन्हें क़र्ज़ से मुक्त कर सकता है, उसी प्रकार पूर्ण संत-सतगुरु जो प्रभु में समाकर उसका रूप हो चुके होते हैं, अनंत जीवों को कर्मों के क़र्ज़ से मुक्त करने का सामर्थ्य भी रखते हैं और जीवों को कर्मजाल से मुक्त होने की युक्ति भी सिखा सकते हैं। जीव को चाहिये कि उस युक्ति के अनुसार अंतर्मुखी अभ्यास करे। जब वह सतगुरु के उपदेश पर अमल करके, सुरत को शब्द में लीन कर देता है तो वह मन-इंद्रियों, कर्मों-संस्कारों और इच्छाओं-तृष्णाओं से पूरी तरह मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जीव को अपने मूल स्वरूप की पहचान हो जाती है।

तुलसी साहिब कहते हैं:

सतगुरु संत दयाल से, करम रेख मिटि जाय।
मन तन सूरति साँच से, ज्यों का त्यों रहि जाय॥[9]

काल जीव से कर्मों की पाई-पाई का हिसाब माँगता है। सतगुरु दयालु है, वह जीव के हर प्रकार के कर्मों के बावजूद उसे बख़्शने के लिये तैयार रहता है। वह उसकी सुरत को अंदर प्रभु के नाम के साथ जोड़ देते हैं, जिससे जीव के सब पापों का नाश हो जाता है और वह जिस प्रकार सृष्टि में आने से पहले निर्मल था, उसी प्रकार निर्मल होकर प्रभु में समाकर प्रभु का रूप बन जाता है।

संत-सतगुरु

संत शब्द का मूल अर्थ शुद्ध अस्तित्व, निर्मल सत्ता या अमर हस्ती है। यह शब्द सत् से बना है जो उस परमपुरुष के लिये प्रयोग में लिया जाता है, जो अविनाशी है, जो सदा एकरस, एकरंग और एकरूप रहता है और जिसे 'सत्य' भी कहा जाता है। सभी संतों ने इस बात पर बल दिया है कि केवल गुरु का होना ही काफ़ी नहीं है, बल्कि यह ज़रूरी है कि गुरु संत-सतगुरु हो, जो जीव को रचना से मुक्त करके रचयिता के साथ मिलाने का सामर्थ्य रखता हो।

सतगुरु के ज्ञान, उपदेश या दीक्षा के तीन अंग हैं: सुमिरन, ध्यान और शब्द धुन। सतगुरु शिष्य को अपनी सुरत अंदर एकाग्र और स्थिर करने की युक्ति सिखाता है, जिससे सुरत अंदर शब्द की ध्वनि के साथ जुड़ जाती है और निजघर का मार्ग तय करते हुए अपने असली ठिकाने पहुँच जाती है। आपने अपनी वाणी में इन तीनों का वर्णन किया है। सुमिरन: *अब तोहि नेक न बिसरौं साँईं। बार बार सुमिरौं चित्त लाईं॥*[1] ध्यान: *सुंदर सुरति सुधारि के, गुरु चरनन करि ध्यान।*[2] शब्द: *धुनि धधक धीर गँभीर मुरली। मरम मन मारग गहौ॥*[3]

इस युक्ति को मंत्र या गुरुमंत्र भी कहा जाता है। शिष्य गुरु के दिये हुए मंत्र के द्वारा कालरूपी साँप को वश में कर लेता है। तुलसी साहिब लिखते हैं:

ईया इतना भेद अभेद गुरन से मिलै ठिकाना।
कहैं अगम की राह सुरति से फोड़ निसाना॥[4]

गुरु गैल मेल मिलाप तुलसी। मन्त्र बिषधर बसि करै॥[5]

संतों के लक्षण

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में संत-सतगुरु के लिये साधु शब्द का प्रयोग भी किया है। ऐसे पूर्ण साधुओं के गुणों के बारे में आप लिखते हैं:

साध वोही जो सब कछु साधे। नहिं अनुमान बिरत अनुरागे॥
संजम बिना साध नहिं होई। बिन साधे साधू नहिं सोई॥
स्वाल करे नहिं मुख से माँगे। बैठे रहे नाहिं इक जागे॥
गदला पानी बंधन सोई। बहता सदा निर्मला होई॥
जग की आस कबहुँ नहिं राखे। सतगुरु बानी को नित भाखे॥[6]

सच्चा साधु मन-इंद्रियों के वश में नहीं होता, बल्कि मन और इंद्रियाँ उसके वश में होती हैं। उसके हृदय में प्रभु का प्रेम समाया होता है। साधु अन्य किसी से कोई भी आशा नहीं रखता। एक ही जगह खड़ा पानी गंदा हो जाता है, जबकि लगातार बहता पानी साफ़ रहता है। उसी प्रकार साधु किसी विशेष स्थान से बँधा नहीं रहता, सदैव अलग-अलग स्थानों पर जाकर लोगों को अपना संदेश देता है। उसके अंदर कोई भी सांसारिक इच्छा नहीं होती और वह अपने सतगुरु के उपदेश को ही जीवन का आधार बनाता है।

हिरदे गरीबी दीनता, दृढ़ साध को निस्चै चही।
खोटी खरी कोइ कहन कहे, जिनकी नहीं मन में लही॥
अपनी रहनि रस रीति को, आठो पहर जाँचे रही॥
सतगुरु बचन मुख बाक बानी, जानि सोइ समझे सही॥
सबही सनातन संत ने, गुरु बैन की आँखी कही।
हिये में समझ धरि कर करे, सोइ साध गुरु सूरत लही॥
निसदिन चरन में लौ लगे, पल एक नहिं बाहर गई॥
हिरदे गुरू के ध्यान बिनु, छिन एक नहिं न्यारी रही॥[7]

साधु नम्रता का साकार रूप होता है। उसके मन पर लोगों की खरी-खोटी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह अपनी रहनी और करनी को हमेशा निर्मल रखता है। सतगुरु के हुक्म में रहते हुए उसका ध्यान सदैव सतगुरु के शब्द स्वरूप से जुड़ा रहता है और पल भर के लिये भी वह अपना ध्यान सतगुरु के चरणकमलों से हटने नहीं देता।

जिन जिन सैल सुरति से कीन्हा। सोला गगन भाखि तेहि दीन्हा॥
जो सोला का भेद बतावै। सोइ सज्जन सत साध कहावै॥[8]

सुन्न बाइस कौ भाखौं लेखा। सो कोइ साधू करै बिबेका॥[9]

तुलसी साहिब कहते हैं कि सच्चा साधु आंतरिक सोलह आकाशों और बाईस सुन्नों का भेद बताता है। आपके कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसा संत आंतरिक मार्ग के सभी मंडलों को पार करके सबसे ऊँचे स्थान सतलोक तक पहुँच चुका होता है।

सतगुरु का वास्तविक स्वरूप

तुलसी साहिब कहते हैं जिस प्रकार अथाह सागर की थाह पाना असंभव है, उसी प्रकार संतों की गति को समझ पाना असंभव है क्योंकि संतों की गति अगम-अथाह है—जो कोइ कहे संत को चीन्हा। तुलसी हाथ कान पर दीन्हा॥[10]

वेदों, उपनिषदों में संतों को परमात्मा की तरह सत्, चित और आनंद कहकर उनकी सराहना की गई है। शंकराचार्य ने विष्णुसहस्रनाम की टीका (12) में लिखा है: ज्ञान और नम्रता का पाठ पढ़ाने के लिये परमात्मा स्वयं ही संत के रूप में विराजमान होता है।* तुलसी साहिब फ़रमाते हैं:

* आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ. 5-6

॥ चौपाई ॥

वे हैं सत्त पुरुष अबिनासी। हैं सतगुरु पूरन पद बासी॥
दृष्टि देह देखन में नाहीं। हैं अदृष्ट गति अगम अथाही॥
उनकी गति सूक्ष्म समझाऊँ। हैं अरूप रूप नहिं नाऊँ॥
सूरज तेज बड़ा जग माहीं। उनसे अधिक तेज कोइ नाहीं॥
कोटि सूर इक रोम लजावे। संतन की महिमा अस गावे॥
और कहाँ लगि बरनि बताऊँ। थोड़ी कहन माहिं समझाऊँ॥
कोटि सूर इक रोम कहाई। ऐसे रोम करोड़न भाई॥[11]

संत-सतगुरु अमर-अविनाशी सतपुरुष का ही रूप होते हैं। वे परमधाम के निवासी होते हैं। देखने में तो वे मनुष्य प्रतीत होते हैं परंतु वास्तव में अगम-अथाह गति के मालिक होते हैं। रंग-रूप, नाम-स्थान आदि भौतिक सीमाओं से परे होते हैं। संसार में सूर्य को प्रकाश का सबसे बड़ा स्रोत माना जाता है, जबकि पूर्ण संत-सतगुरु के नूरी स्वरूप के रोम-रोम में करोड़ों सूर्यों का प्रकाश समाया होता है। नीचे तुलसी साहिब की वाणी में से कुछ उद्धरण दिये गये हैं जिनमें उन्होंने संत सतगुरु के वास्तविक स्वरूप के संबंध में अपने विचार प्रकट किये हैं:

जहाँ संत तहँ निरगुन नाईं। निरंकार जहँ जोति न भाई॥
दस औतार जान नहिं पावै। ब्रह्मा बिष्नु महेस न जावै॥
जहँ नहिं बेद जहाँ नहिं बानी। इन से पारै पुरुष अनामी॥
जहँ संतन की सुरति समानी। वो घर अगम संत से जानी॥[12]

जहँ नहिं पृथ्वी पवन अकासा। पाँच तत्त मारग नहिं स्वासा॥
चाँद सुरज तारागन नाहीं। जोगी ब्रह्म बिस्नु न जाई॥
दस अवतार राह नहिं जानी। निरंकार नाहिं निर्बानी॥
जोति सरूप न पहुँचे भाई। नहिं ओंकार अकार न जाई॥

पारब्रह्म जो कहिये ऐसा। जाके आगे सतगुरु देसा॥
जाके परे संत अस्थाना। उनका देस उनहिं पहिचाना॥[13]

पदम कँवल पर आसन लावे। जहँ कोइ साध सूरमा जावे॥
सुन्न और महा सुन्न के पारी। जहँ वह जाय लगावे तारी॥
सत्तपुरुष के दरसन पावे। तीन लोक के पार कहावे॥[14]

वह कहते हैं कि संत-सतगुरु का असली स्वरूप सगुण और निर्गुण ब्रह्म, तीनों देवताओं, दस अवतारों, सरस्वती और वेदों की पहुँच से परे है। संतों का निज धाम पाँच तत्त्वों की रचना, धरती, आकाश, तारा मंडल आदि से परे है। वह मंडल जोत निरंजन यानी ब्रह्म की पहुँच से परे है। त्रिकुटी के ऊपर पारब्रह्म है और उससे आगे परमपुरुष प्रभु का धाम है, वही संतों का देश है। उस देश का रहस्य केवल संत ही जानते हैं। संतों की सुरत उस अगम-अगोचर घर की निवासी है। संत-सतगुरु का स्थान इतना ऊँचा और पवित्र है कि कोई बिरला सूरमा साधु ही उसकी थाह पा सकता है। संत-सतगुरु सुन्न और महासुन्न में बेधड़क आ-जा सकते हैं। वे तीनों लोकों से परे चौथे लोक के स्वामी सतपुरुष के जब चाहें दर्शन कर सकते हैं। ऐसे संत-सतगुरु परमप्रभु परमात्मा का ही रूप होते हैं, उनकी गति का भेद कोई संत ही दे सकता है। तुलसी साहिब उन्हें 'अविनाशी सतपुरुष' कहते हैं जो परमधाम के निवासी हैं। ऐसे संत-सतगुरु की शरण में आये बिना जीव का किसी भी समय, स्थान या स्थिति में परमपिता परमात्मा से मिलाप करना नामुमकिन है।

सतगुरु की महिमा

सतगुरु की महिमा बयान करते हुए तुलसी साहिब कहते हैं कि कोई पूर्ण संत-सतगुरु ही जीव को इस रचना से मुक्त करके रचयिता से मिला सकता है। आप हिरदे को समझाते हुए कहते हैं:

कहे तुलसी हिरदे सुन लीजे। यह संदेह कभी नहिं कीजे॥
संतन की गति अगम अतोला। उनके बानी बचन अमोला॥ ...
संतन की महिमा सभी, कहते माहिं लजाय।
चरन आस सब कोइ करे, भागन से मिलि जाय॥ ...
संत चरन परताप से, खानि राह रुकि जाय।
नर तन में सतगुरु मिलें, मेटें सकल सुभाय॥[15]

संतों की महिमा अकथनीय है और उनके वचन परमार्थ के अनमोल ज्ञान से भरपूर होते हैं। उनकी अगम गति के बारे में मन में लेशमात्र भी संशय नहीं होना चाहिये। सब लोग उनके चरणों की शरण प्राप्त करना चाहते हैं, परंतु यह शरण प्रभु की दया द्वारा सौभाग्य से प्राप्त होती है। मनुष्य-शरीर में रहते यदि जीव को सौभाग्य से पूर्ण संतों की शरण मिल जाये, तो उसका आवागमन के चक्र से छुटकारा हो जाता है। वास्तव में उनकी महिमा का गुणगान शब्दों द्वारा नहीं हो सकता।

नर तन में सतगुरु पद सेवे। संत चरन चित से लौ लेवे॥
चरन छुवे छिन छिन में भाई। आठ पहर रहे लगन लगाई॥
मन में बास बसे नहिं औरी। संत दया से बंधन छोरी॥
जड़ चेतन बंधन की गाँठी। अन्दर खुले भरम की टाटी॥
मैला मन साबुन से धोवे। गहि गुरु ज्ञान हिये में जोवे॥
परम प्रकास भास दिन राती। दीपक ज्ञान ध्यान बहु भाँती॥
अगम अनैन नैन से न्यारा। सो जाने संतन का प्यारा॥[16]

आप कहते हैं: जो भाग्यशाली जीव मनुष्य-देह में सतगुरु के नूरी चरणों के दर्शन कर लेता है, अपना चित सदैव उनके चरणों से जोड़कर रखता है और जिसके हृदय में प्रभु मिलाप के सिवाय और कोई भी सांसारिक इच्छा उत्पन्न नहीं होती, उस पर संतों की ऐसी दया होती है

कि उसके मन-माया, कर्म और फल तथा आवागमन के सारे बंधन टूट जाते हैं। उसकी जड़-चेतन की गाँठ खुल जाती है, अज्ञानता का नाश हो जाता है और उसके अंदर सच्चे ज्ञान का प्रकाश भर जाता है। सतगुरु द्वारा बख़्शे इस ज्ञानरूपी साबुन से मन का सारा मैल धुल जाता है। वह माया के भ्रम में से निकलकर परम ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कर लेता है और उसे अपने अंतर में उस अलख-अगम प्रभु के दर्शन हो जाते हैं जो इन बाहरी आँखों की सीमा से परे हैं।

तुलसी साहिब ने अपनी व्याख्या को और स्पष्ट करने के लिये रत्न सागर में एक वृत्तांत दिया है: एक बार सुबह सवेरे भगवान शिव और पार्वती कहीं जा रहे थे। भगवान शिव ने अचानक धरती पर लेटकर दंडवत प्रणाम किया। पार्वती ने उनसे पूछा कि मुझे तो यहाँ कोई नज़र नहीं आ रहा, आपने प्रणाम किसको किया है? भगवान ने उत्तर दिया:

पारबती या भूमि का, क्या कहूँ बरनन भाग।
दस हजार के बाद यहँ, संत रहे यहि जाग॥
सुनु हिरदे कहुँ संत की, महिमा अगम अपार।
कर प्रनाम वहि भूमि को, संकर बारम्बार॥[17]

हे पार्वती! यह धरती भाग्यशाली है। दस हज़ार वर्ष पहले यहाँ संत प्रकट हुए थे। जिस धरती पर संत शरीररूपी चोला धारण करते हैं, उसकी महिमा अगम, अपार है। मैं उसे बार-बार नमस्कार करता हूँ।

सतगुरु की आवश्यकता

परमात्मा से मिलाप ही जीव का परम उद्देश्य है और संतों की शरण लेकर ही इस उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है। यह विधान परमात्मा का ही बनाया हुआ है। तुलसी साहिब ने प्रभुप्राप्ति के लिये सतगुरु की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है:

बिन मुरसिद सब पचि पचि हारे। मुरसिद ने सब काज सुधारे॥
सिध सिद्धी बहु किये अनेका। पुनि पाया मुरसिद से ठेका॥
मुरसिद मुकर जाल से फेरा। मेहर नजर करि मुझ पर हेरा॥
जब देखा यह खेल बिलासा। छूटी यहि जहान की आसा॥
अब दिल रहा मझब के माहीं। झूठ जहान खिलकत की राही॥
सब सरियत ने राह बिगारा। मियाँ मारफत किये दिदारा॥
जो सरियत को सच करि जाने। बिना मूल सब भूलि हिराने॥
यह जहान की उलटी बातें। मारें मुकर फिरिसते लातें॥[18]

वह स्पष्ट कह रहे हैं कि जब तक कामिल मुर्शिद (पूरा गुरु) नहीं मिलता, तब तक जीव इस मायारूपी संसार के साथ ही बँधा रहता है और जब मुर्शिद मिल जाता है तो सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। तुलसी साहिब कहते हैं कि मैंने परमार्थ में सफल होने के लिये अनेक यत्न किये, परंतु सफलता नहीं मिली। जब मुर्शिद की शरण मिल गई तो उसने अपनी दयादृष्टि से मोह-माया के बंधनों और आवागमन के जाल से मुक्त कर लिया। मुर्शिद की शरण द्वारा जगत की आशा-तृष्णा दूर हो गई। मन को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हो गई और मोह-माया से भरा यह संसार झूठा प्रतीत होने लगा। तब मुझे इस बात का ज्ञान हुआ कि शरीअत यानी कर्मकांड मुक्ति का साधन नहीं, बल्कि संसार के साथ बँधे रहने का कारण है। जो लोग शरीअत या कर्मकांड को ही प्रभुप्राप्ति का सच्चा साधन मान लेते हैं, वे सार वस्तु को छोड़कर छिलके से बँधे रहते हैं। ऐसे लोगों को मृत्यु के बाद यमदूतों की मार खानी पड़ती है।

जीव को प्रभु से मिलाने का माध्यम केवल सतगुरु ही है। सभी संत-महात्माओं, वेद-शास्त्रों और धर्मग्रंथों का यही उपदेश है। तुलसी साहिब अपनी वाणी में इसी तथ्य का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करते हुए कहते हैं:

हे हिरदे सतगुरु केहि काजें। जीव उबारन जक्त बिराजें॥
हंस होय जो करे पिछाना। उन सतगुरु की महिमा जाना॥
आदि अनादि संत गुहरावें। सतगुरु बिना पार नहिं पावे॥
सास्त्र कहे और बेद पुराना। महिमा सतगुरु बरनि बखाना॥
और महातम सब गुहरावें। सतगुरु साखि समझि सब गावें॥
कोटिन जिव यह करे उपाई। सतगुरु बिना राह नहिं पाई॥
जुग जुग भरमत भये अनेका। जिन भाखा जिन सतगुरु ठेका॥

॥ दोहा ॥

सतसंग अरु संतन कही, स्रुति पुरान गुहराय।
सास्तर सब महातम कहे, सतगुरु का रे उपाय॥[19]

अंदर गुप्त रूप से विराजमान परमात्मा से मिलाप, संत-सतगुरु की सहायता द्वारा ही संभव है। आप हिरदे को समझाते हैं: सतगुरु वास्तव में सतलोक के निवासी होते हैं। वे जीवों के उद्धार के लिये संसार में शरीररूपी चोला धारण करते हैं। जो जीव हंसों जैसी निर्मल वृत्ति प्राप्त कर लेता है, उसे सतगुरु के वास्तविक स्वरूप और सामर्थ्य का बोध होने लगता है। अमर-अनादि प्रभु का रहस्य केवल संत प्रकट करते हैं। वेदों, पुराणों और अन्य ग्रंथ-शास्त्रों में भी सतगुरु की महिमा की गई है। जीव मन-बुद्धि द्वारा युगों तक करोड़ों प्रयत्न करता रहे, परंतु सतगुरु की दया के बिना उसे प्रभु के परमधाम को जानेवाले मार्ग का कभी ज्ञान नहीं हो सकता। यही कारण है कि सभी धर्मग्रंथों में अन्य सभी साधनों को त्यागकर सतगुरु की शरण प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है।

छल बल दाँव लगे नहिं हाथा। फौड़ें सिर कितने केइ भाँता॥
जब सतगुरु की मेहर मँझावे। उनकी दया रमज कछु पावे॥
और भाँति कोइ करे उपाऊ। सुपने उनका मिलै न थाऊ॥

ज्ञान जोग बैराग बिधी से। और तने नहिं मारग दीसे॥
वे अंदर घट लेइँ पिछानी। बोली में परखें सब बानी॥[20]

बिन सतगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा बिस्नु महेस, और सभन की को गिने॥[21]

बिन सतगुरु नहिं कर्म नसाई। जो कदाचि करे कोटि उपाई॥
वे सूरज यह किरनि कहावे। भूमि भास तजि रबि में जावे॥[22]

तुलसी साहिब सावधान करते हैं कि मनमरज़ी से कोई चाहे अनेक साधन अपना ले, अन्य कई प्रकार के प्रयास कर ले, योगमार्ग, ज्ञानमार्ग और त्यागमार्ग आदि अपनाकर देख ले, परंतु सतगुरु की दया के बिना आंतरिक रहस्य प्रकट नहीं हो सकता। जब तक पूरे गुरु से निजघर वापस जाने के साधन और मार्ग का ज्ञान प्राप्त नहीं होता, साधारण नर-नारी तो एक तरफ़, ऋषि-मुनि और देवता भी सतलोक वापस नहीं पहुँच सकते। जीव चाहे अन्य करोड़ों प्रकार के उपाय कर ले, सतगुरु की शरण और दया-मेहर के बिना कर्मों का नाश नहीं हो सकता। परमात्मा सूर्य है और जीवात्मा उसकी एक छोटी-सी किरण है। यह किरण सतगुरु की दया से ही वापस सूर्य में समा सकती है।

सतगुरु से दीक्षा यानी गुरुमंत्र प्राप्त करके जब जीव अभ्यास करता है तो उसे अंतर में शब्द धुन का आनंद प्राप्त होने लगता है। इसी आनंद के बारे में तुलसी साहिब अपनी वाणी में कहते हैं:

अब तो सुधि समझाई, पिउ वा घर की गुरन।
भेद दियो री वाही देस॥ टेक॥
गगन गिरा केरी बिरह जनाई, सबद सोर घनघोर लखाई॥
पल पर पल लौ लाई॥
सुरत खड़ी दृग दीप नवल पर, कँवल कली अली याद कराई॥

ता बिच गति मति पाई॥
समुँद सोत पर पोत परखिया, हरक मरक हिये मारग आई॥
दल में नल दिखलाई॥
तुलसी तरँग रँग संत सुनाई, बिरले गुरमुख सुरत लगाई।
जिन जिन यह गति गाई॥[23]

सतगुरु ने प्रियतम के देश का भेद समझा दिया और उसके घर जाने की युक्ति सिखा दी। उसने हृदय में आंतरिक आकाश में हो रही शब्द यानी नामरूपी वाणी के लिये तड़प उत्पन्न कर दी और अंतर में गूँज रही शब्द की ध्वनि के साथ सुरत को जोड़ दिया। शब्द की ध्वनि में लीन हुई सुरत आँखों के पीछे एक नये द्वीप पर पहुँच गई। सहस्रदल कमल पहुँचने पर ही उसे शब्द की पहचान हुई। इसके पश्चात सुरत सहस्रदल कमल को पार करके बंकनाल में पहुँच गई। सतगुरु की अपार कृपा से सुरत ने वहाँ शब्द की सुरीली, प्रकाशमयी तथा प्रेमरस से भरपूर दिव्य ध्वनियों का आनंद लिया। तुलसी साहिब कहते हैं कि जिन विरले गुरुभक्तों ने सतगुरु के उपदेश पर अमल किया, उन्हें आंतरिक चढ़ाई की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त हो गई।

सखि चरन सरन निवास निसदिन। दुख दवा मोहिं अब मिलै॥
गुरु सरन मन्त्र मिलाप तुलसी। जबर सँग जुलमी टलै॥[24]

परमेश्वर से मिलाप कर चुकी आत्मा कह उठती है: प्यारी सखी! जब मैंने सतगुरु की शरण में जाकर, उनके द्वारा बख़्शे गये गुरुमंत्र के अनुसार अभ्यास किया तो इस शक्तिशाली और ज़ालिम मन से मेरा छुटकारा हो गया, वियोग का दु:ख दूर हो गया और मुझे प्रभुरूपी प्रियतम के मिलाप का सुख प्राप्त हो गया।

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में जिज्ञासुओं को स्पष्ट संदेश दिया है कि अगर जीव परमात्मा से मिलाप करना चाहता है तो पहले उसका गुरु के साथ मिलाप होना परम आवश्यक है।

तथाकथित साधु

तुलसी साहिब कहते हैं कि अज्ञानी जीव की यह हालत है कि वह मन और बुद्धि द्वारा संतों की गति को समझने का प्रयत्न करता है, इसी लिये वह तथाकथित साधु और पूर्ण संत में स्पष्ट अंतर को समझ नहीं पाता। कहा जाता है कि एक कुएँ पर एक हंस आकर बैठ गया। कुएँ के मेंढक ने उससे पूछा: तुम कहाँ से आये हो? हंस ने कहा: मानसरोवर से। मेंढक पूछने लगा: मानसरोवर कितना लंबा-चौड़ा है? हंस ने कहा: उसकी लंबाई-चौड़ाई का हिसाब लगा पाना संभव नहीं है। मेंढक ने पूछा कि क्या वह इस कुएँ जितना लंबा-चौड़ा है? हंस ने कहा: नहीं, वह बहुत अधिक लंबा और चौड़ा है। मेंढक सोचने लगा यह झूठ बोल रहा है।

धार्मिक परंपराओं के दायरे में सिमटे हुए जीव तथाकथित साधुओं के प्रभाव में आकर हमेशा भ्रमों में ही उलझे रहते हैं। इस बारे में तुलसी साहिब लिखते हैं:

जग ब्योहार कर्म की बाजी। भूले मुल्ला पंडित काजी॥
पढ़ि पढ़ि के सब खोज लगावें। पढ़ने पार भेद नहिं पावें॥[25]

तथाकथित साधुओं के प्रभाव में आकर सारा संसार अनेक प्रकार के कर्मों में फँसा हुआ है और अज्ञानी लोग पुण्य कर्मों और ग्रंथ-शास्त्रों के पाठ-विचार को ही मुक्ति का साधन समझने की भूल कर रहे हैं:

भेख संत दोउ एक समाना। संत चीन्ह नहिं परख पिछाना॥
दोऊ को यह इक सम जाने। धनवंत निरधन परख न आने॥
करज कंगाल से लेने चाले। लकड़ी बाँस बेचने वाले॥
वह का देवे करज बिचारा। मिहनत करि करि पेट सँवारा॥
साहूकार से लेन न आवे। नित निरधन से माँगन जावे॥
आवे न हाथ टका इक भाई। मूरख वोहि की करत बड़ाई॥[26]

बाहर से देखने पर तथाकथित साधु और पूर्ण संत एक समान दिखाई देते हैं परंतु दंभी साधु के पास आध्यात्मिक धन नहीं होता। उसकी हालत जंगल में से लकड़ियाँ लाकर बेचनेवाले एक कंगाल जैसी होती है। जो स्वयं निर्धन है, वह दूसरे को क्या दे सकता है? लेकिन बुद्धिहीन लोग परमार्थ की दौलत से ख़ाली ऐसे तथाकथित साधुओं के ही गुणगान में लगे रहते हैं।

अंधा जग यह फिरत भुलाना। माँगे भेखन का नहिं जाना॥
सतगुरु की कोइ गैल न पावे। सूरति सिख सतगुरु पै आवे॥
ऐसा उनको कहा बिबेका। देखा सुना गुना न परेखा॥[27]

ऐसे लोग जिन्होंने पूर्ण संतों के दर्शन नहीं किये, न ही उनके बारे में कभी सुना और न ही वे संतों को परखने की क़ाबिलीयत रखते हैं, उनमें विवेक कैसे जाग्रत हो सकता है? ऐसे अज्ञानी लोग तथाकथित साधुओं के पीछे भटकते रहते हैं और वे कुछ भी हासिल नहीं कर पाते।

तुलसी साहिब ने जहाँ एक ओर इन तथाकथित साधुओं से सावधान रहने की हिदायत दी है, वहीं दूसरी ओर पूर्ण संत की शरण में जाने का संदेश भी दिया है:

ज्ञानी गुनी कबेसुर होई। पंडित और भेख सब कोई॥
माया ने चेरा करि राखा। समझे कहा संत की भाखा॥
ज्यों रबि अस्त होय अँधियारा। ज्यों जग हृदय तिमिर भया सारा॥
बिन अंजन नहि नैनन सूझे। सतगुरु बचन कौन बिधि बूझे॥
गुरू दयाल से अंजन पावे। जब कहुँ तिमिर आँखि से जावे॥
दीन होय बिन पावे नाहीं। संत बिना नहिं तिमिर नसाई॥
और दवा कोई काम न आवे। सतगुरु चरन सदा लौ लावे॥[28]

आप बड़े स्पष्ट शब्दों में उन पाखंडी साधुओं की असलियत सामने रखते हुए कहते हैं कि तथाकथित साधु बाहरी तौर पर बड़े गुणी-ज्ञानी, कवि, विद्वान प्रतीत होते हैं, परंतु अंदर से माया के पुजारी होते हैं। उनके लिये संतों की अंतर्मुखी साधना का महत्त्व समझ पाना बहुत मुश्किल है। जिस प्रकार सूर्यास्त होने पर हर तरफ़ अंधकार फैल जाता है, उसी प्रकार पूर्ण संतों के ज्ञान के बिना बाहरी संसार में अज्ञानता का अंधकार फैला हुआ है। सतगुरु से ज्ञानरूपी सुरमा प्राप्त किये बिना, जीव की अज्ञानता का अंधकार मिट नहीं सकता। वह चाहे कितने भी प्रयत्न क्यों न कर ले, विनम्र होकर सतगुरु की शरण में आये बिना सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्संग

सत्संग शब्द सत्+संग के मेल से बना है। सत् का अर्थ है अमर-अविनाशी और संग का अर्थ है संगति या मिलाप। जो अमर-अविनाशी है, उसी की संगति को सत्संग कहा जाता है। इस मायारूपी संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान तथा मिथ्या है। केवल प्रभु ही अमर-अविनाशी है। संत-सतगुरु निराकार तथा अविनाशी प्रभु का साकार रूप होते हैं, इसलिये उनकी संगति को बाहरी सत्संग कहते हैं। प्रभु का शब्द यानी नाम प्रभु का रूप है। इसलिये सुरत के शब्द के साथ मिलाप को आंतरिक सत्संग कहा गया है। सुरत को शब्द के साथ जोड़ने की युक्ति सतगुरु समझाते हैं, इसलिये आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार के सत्संगों का आधार सतगुरु है। सत्संग परमार्थ का ज्ञान प्राप्त करने की पाठशाला है। सत्संग में जाकर ही जीव को अपने जीवन के उद्देश्य का पता चलता है और उद्देश्य प्राप्त करने के सही मार्ग का भी ज्ञान हो जाता है।

सत्संग की महिमा

तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में सत्संग की अपार महिमा की है :

तुलसी सतसंगति बलिहारी। बरनौं सत सत बारम्बारी॥
सत्सँग सरन चरन गति पावै। अगम निगम गम निरखि लखावै॥
बिन सतसँग चीन्हि नहिं पावै। सतसँग सत्त सूरति दरसावै॥
सतसँग सतसँग अंतर भाई। कही सतसँग अनेकन राही॥
सतसँग सतसँग सब गोहराया। सतसँग का कोइ अंत न पाया॥
सतसँग कहि कहि सभी बताया। सतसँग आदि खोज नहिं पाया॥

सतसँग महिमा अस अस गावा। करै घड़ी इक मुक्ति को पावा॥
घड़ि इक में मुक्ती होइ जावै। सतसँग महिमा अस अस गावै॥[1]

तुलसी साहिब कहते हैं कि मैं संतों के सत्संग पर बलिहारी जाता हूँ, जिसमें परमसत्य का बार-बार वर्णन किया जाता है। सत्संग में ही संतों की शरण में जाने की प्रेरणा मिलती है। सत्संग के बिना परमसत्य की पहचान नहीं हो पाती, भले ही आप ग्रंथ-शास्त्रों का कितना ही पाठ-विचार क्यों न कर लें। सत्संग में ही अंतर में सत्य का संग करने की राह बताई जाती है। लोग सत्संग की महिमा तो करते हैं, परंतु उनको सच्चे अनादि सत्संग के रहस्य का ज्ञान नहीं है। सच्चे सत्संग की महिमा अपरंपार है। सच्चा सत्संग एक घड़ी या पल के लिये भी मिल जाये तो उससे जीव का उद्धार हो जाता है और उसे प्रभु के परमधाम का बोध हो जाता है।

सुनौ सतसंग का रंग कहौं, सो उतंग अमोल जो मोल न आवै।
कहैं सबही सब संत पुकारि, बिना सतसंग नहीं कछु पावै।
संत मिलैं सतपंथ चलै, सो कुपंथ कलह सब दूरि बहावै।
ज्ञान बिबेक बैराग लखै, मन मान मनी बिधि सारी नसावै।
संत मता कछु और लखै, सो पकै गुरु मारग में स्रुति लावै।
तुलसी तत तोल बिचार कहै, सो अमोल पिया घर सहज समावै।[2]

तुलसी साहिब बड़े प्रेम से सत्संग की महिमा का गुणगान करते हुए कह रहे हैं: मेरे प्यारे! ध्यान से सुन, मैं सत्संग की महिमा का वर्णन करता हूँ। सत्संग अनुपम तथा अनमोल है। सब संत दृढ़तापूर्वक समझाते हैं कि सत्संग के बिना परमार्थ में कोई भी उपलब्धि नहीं हो सकती। जो व्यक्ति संतों की संगति द्वारा सही मार्ग पर चलना शुरू कर देता है, वह ग़लत रास्ते पर चलने के फलस्वरूप मिलनेवाले सारे दुखों से बच जाता है। सत्संग में मनमत का नाश हो जाता है और जीव के अंदर सच्चा वैराग्य, विवेक और सच्चा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। उसकी बुद्धि निर्मल

हो जाती है। वह संतमत का रहस्य जान लेता है और अपनी सुरत को सतगुरु द्वारा बताये मार्ग से जोड़ देता है। ऐसा भाग्यशाली जीव सहज रूप से ही प्रभु-प्रियतम के परमधाम का निवासी बन जाता है।

तुलसी साहिब एक पौराणिक उदाहरण द्वारा सत्संग की महिमा को स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयत्न करते हैं:

सतसँग सतसँग सब गुहरावे। सतसँग का कोई अंत न पावे॥
बिस्वामित्र बसिस्ठ प्रसंगा। तप सतसँग कहे दोउ अंगा॥
साठ हजार बरस तप कीन्हा। उभै घड़ी सतसँग तिन दीन्हा॥
दोइ घड़ी सतसँगति आगे। तुली तपस्या तुले न लागे॥[3]

शास्त्रों में एक कथा है कि एक बार महर्षि विश्वामित्र और महर्षि वसिष्ठ में विवाद हो गया। ऋषि विश्वामित्र महान तपस्वी थे, इसलिये उन्होंने तप को ही महान और श्रेष्ठ कहा। दूसरी ओर ऋषि वसिष्ठ ने पूर्ण पुरुष के सत्संग को हर प्रकार की करनी से श्रेष्ठ कहा। अपनी समस्या के समाधान के लिये दोनों शेषनाग के पास गये। शेषनाग ने कहा कि मेरे सिर पर संपूर्ण पृथ्वी का भार है, पहले आप पल भर के लिये यह भार उठा लो, तभी मैं आपकी समस्या की ओर ध्यान दे पाऊँगा। महर्षि विश्वामित्र ने अपने साठ हज़ार वर्ष के तप की पूरी शक्ति लगा दी, परंतु फिर भी उस तप के बल पर धरती को सहारा न दे सके। जब महर्षि वसिष्ठ ने दो पल के सत्संग की शक्ति लगाई तो धरती टिक गई। शेषनाग ने कहा, 'आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया है।'

तुलसी साहिब ने सत्संग की महिमा करते हुए अपने अनुभव का भी वर्णन किया है:

मैं किंकर संतन कर दासा। घट घट देखा तत्त निवासा॥
ता की गति ग्रन्थन में गाई। बूझै जिन सत संगति पाई॥[4]

आप नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मैं तो तुच्छ, निकृष्ट और निर्बल जीव था। संतों ने अपनी कृपा से मुझे अपना दास बना लिया। उनकी संगति

और दया द्वारा मुझे सब के हृदय में प्रभु का प्रकाश दिखाई देने लगा। मैंने संतों की शरण द्वारा जो भी आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त किये हैं, उनका वर्णन अपने ग्रंथों में कर दिया है। इस रहस्य को केवल संतों की संगति करनेवाले भाग्यशाली जीव ही समझ पायेंगे।

आप कहते हैं कि अनेक लोग वेदों, पुराणों और भागवत की कथा-वार्ता को ही सत्संग समझते हैं।

करते करते जनम सिराना। सतसँग सुपने मुक्ती न जाना॥[5]

बीत जनम सतसँग करत, और सरौ न एकौ काज।
पलक माहिं सतसँग मिलै, सरै जीव कौ काज॥[6]

और सतसंगति झूठ सब, पचि पचि मरे लबार।
संत मुकर स्रुति राह बिन, भरमत फिरै गँवार॥[7]

लोग सारा जीवन मनमरज़ी का सत्संग करते रहते हैं, परंतु उस सत्संग की खोज नहीं करते, जिसमें पहुँचकर जीव पल भर में मुक्ति का अधिकारी बन जाता है। वे सारा जीवन इसी प्रकार व्यर्थ गँवा देते हैं। पूर्ण संतों की संगति के अलावा अन्य सब प्रयत्न झूठे हैं। संतों के सत्संग में सच्चा आंतरिक मार्ग न मिलने के कारण जीव सदा अज्ञानता के अँधेरे में ठोकरें खाता रहता है।

हिरदे उन सतसंग न कीना। अंदर चुभक नाहिं रस पीना॥
ज्यों पानी पाहन पर डारा। ऊपर गील सूख वोहि बारा॥
अंदर हुआ गील नहिं भाई। कहो सूखे नहिं कहा कराई॥
ज्यों मिसरी पानी में डाली। मिसरी घुल पानी रस चाली॥
पानी मिसरी इक रँग राता। जल मीठा मिसरी के साथा॥
घुली मिठाई जल के माहीं। सो सरबत मीठा भया भाई॥

॥ दोहा ॥

जल मिसरी कोइ ना काहे, सर्बत नाम कहाय।
यों घुल के सतसँग करे, काहे भरम समाय॥[8]

इस अज्ञानता का खुलासा करते हुए तुलसी साहिब कहते हैं: जो व्यक्ति सत्संग में आने के बावजूद अपने मान, अहंकार, हौंमैं का त्याग नहीं करता; रूहानी अभ्यास द्वारा अपने अंतर में शब्द का रसपान नहीं करता, उसकी हालत पानी में पड़े पत्थर के समान होती है जो बाहर से तो गीला हो जाता है, परंतु अंदर से सूखा ही रहता है। होना तो यह चाहिये कि जिस प्रकार मिश्री या चीनी पानी में घुलकर शर्बत बन जाती है, जीव भी उसी प्रकार सत्संग में आकर अहं भाव को छोड़कर शब्द के साथ एकरूप होकर मन के सारे भ्रम मिटा दे।

संतों की संगति का प्रभाव

चाहे कोई विद्वान हो या अनपढ़, चाहे किसी ने अनेक धर्मग्रंथों का पाठ-विचार किया या सुना हो या फिर किसी धर्मग्रंथ का नाम भी न सुना हो; जो कोई मन के सारे संशय छोड़कर प्रेम और विश्वास के साथ संतों की संगति में जाता है, उसे अपार लाभ प्राप्त होता है। अन्य संतों की तरह तुलसी साहिब ने भी परमात्मा के मिलाप का प्रमुख आधार संतों की संगति को ही माना है:

सात स्वर्ग अपबर्ग की, महिमा तुलै न ताहि।
अस सतसँग बखानिया, पल में मुक्ति सहाइ॥
करत करत जनमै गयौ, नित नित सतसँग साथ।
वो सतसंगति कौन है, मुक्ति जो आवै हाथ॥
वो सतसंगति और है, तुलसी अगम निहार।
संत सुरति सतलोक में, मुक्ति तहाँ पनिहार॥
वो सतसंगति संत पै, जगत भेष नहिं भेद।
ये अभेद सतसँग को, मुक्ति चरन पद लेत॥[9]

आप कहते हैं कि संतों की सुरत हमेशा सतलोक में रहती है, उनकी संगति ही वह सच्चा सत्संग है (यहाँ उनका अभिप्राय आंतरिक संगति और आंतरिक सत्संग से है), जिसके द्वारा भवसागर को पार करके प्रभु के

साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त होता है। उस सच्चे सत्संग से ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती है, जहाँ मुक्ति दासी की तरह जीव के चरणों में रहती है।

तुलसी साहिब ने सत्संग को ही विवेक जाग्रत होने का एकमात्र साधन बताया है:

सतसंग में भेद अभेद मिलै, स्रुति सैल दुर्बीन को माँजा करै।
मन की मत झार निहार लखै, सो पकै स्रुति घाट पै आनि धरै।
पच्छिम बास की आस तकैं, नित नेम स्रुति सत चाह करैं।
येही बिधि डोर लगी निस बास, पिया पद खेल कौ माल भरै।
तुलसी निज सूझ कै बूझ परी, जिन को पति प्यार से कार सरै।[10]

सत्संग में पहुँचकर सही और ग़लत, सार और असार, करने योग्य और न करने योग्य का अंतर समझ में आ जाता है। सत्संग द्वारा आंतरिक यात्रा में साथ देनेवाली सुरतरूपी दूरबीन पर जमी धूल हटने लगती है, मन और आत्मा निर्मल होने लगते हैं और जीव की अंतर्मुखी अभ्यास में रुचि जाग्रत हो जाती है। जो साधक सत्संग से लाभ उठाकर मनमत को समाप्त कर देता है, उसकी सुरत अंदर अपना ठिकाना बना लेती है। उसके मन में आंतरिक मंडलों में निवास करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है और उसकी सुरत प्रतिदिन अंदर उड़ान भरने के लिये उत्सुक रहती है। ऐसे साधक की सुरत की डोर दिन-रात अंदर शब्द के साथ जुड़ी रहती है और उसके हृदय में यह प्रबल इच्छा पैदा हो जाती है कि वह ऐसा माल-असबाब भाव प्रभु की भक्ति, शब्द का सार-पदार्थ इकट्ठा कर ले, जो उसे प्रभु-प्रियतम के देश जाने में सहायता करे और जिसकी उस प्रियतम के देश में क़द्र है। तुलसी साहिब फ़रमाते हैं कि मुझे निजी अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि जिस जीवात्मारूपी स्त्री के हृदय में प्रभु-प्रियतम का प्यार है, वही प्रियतम के देश जाने की हक़दार है।

संतों की संगति से ही प्रभु-प्रेम जाग्रत होता है। संतों की शरण में आकर ही मन और आत्मा में निर्मलता आती है, वरना हौंमैं का नाश करना संभव नहीं:

जब सत संगत को मन चावै। तब कहूँ पकरि हाथ में आवै॥
संत समीप चरन चित वारो। तब कछु सूझै पद के पारो॥
सूरति निरति निकर कर बूझै। लख सत नाद सुरति जब जूझै॥[11]

मन भँवरा सतसँग जब पावे। हिरदै बिषय बास जब जावे॥
ज्यों हलवाई करे जलेबी। अंदर खैंच पीये रस गैबी॥
अस संगति रस पिये अघाई। जब यह मन की दुरमति जाई॥
संगति में सुनि देइ न काना। जासे नर तन में भरमाना॥
संगति करे रीति नहिं जाना। कस कस छूटे मन अभिमाना॥[12]

सौभाग्य से अगर मन में पूर्ण संतों के सत्संग की आकांक्षा उत्पन्न हो जाये तो ज़िद्दी मन की हालत में सुधार होना शुरू हो जाता है। प्रेम और विश्वास से संतों के सत्संग में जाने से विषय-विकारों और इंद्रियों के भोगों का मोह कम होना शुरू हो जाता है। तुलसी साहिब दृष्टांत दे रहे हैं कि जिस प्रकार हलवाई जलेबी बनाकर मीठी चाशनी में डुबो देता है तो उसमें मिठास भर जाती है, उसी प्रकार सत्संग के फलस्वरूप जीव का अंतर शब्द के दिव्य रस से भर जाता है। जैसे-जैसे जीव प्रेमपूर्वक सत्संगति का अमृत पीता है, इसकी दुर्मति दूर होनी शुरू हो जाती है।

सतगुरु की संगति द्वारा शब्द की ध्वनि को सुननेवाली शक्ति सुरत और शब्द के प्रकाश को देखनेवाली शक्ति निरत, दोनों जाग्रत हो जाती हैं और जीव को धुरधाम पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत जो जीव सत्संग में दिये जानेवाले उपदेशानुसार अपना जीवन नहीं ढालता, वह पहले की तरह विषय-विकारों में लिप्त रहता है और आवागमन के चक्कर में फँसा रहता है।

दरअसल परमार्थ की पहली और अंतिम पाठशाला पूर्ण संतों का सत्संग ही है। परमार्थ के ज्ञान का आरंभ भी सत्संग से होता है और उस ज्ञान की पूर्ण रूप से प्राप्ति भी सत्संग द्वारा ही होती है।

सुरत-शब्द योग

तुलसी साहिब कहते हैं: सूरति मिलै सब्द में जाई। ये सब संतन पंथ बताई॥[1]—प्रभु के परमधाम तक पहुँचे हुए पूर्ण संत सुरत-शब्द मार्ग को ही प्रभुप्राप्ति का साधन बताते हैं। आपने वाणी में दादू साहिब, मीराबाई, गुरु नानक साहिब, दरिया साहिब, सूरदास जी, कबीर साहिब आदि अनेक संतों का उल्लेख किया है जिन्होंने सुरत को शब्द के साथ जोड़ने के साधन और मार्ग का प्रचार किया है।

सतगुरु की सहायता से सुरत को अंदर शब्द के साथ जोड़ने पर प्रभुप्राप्ति होती है। इसलिये संतों द्वारा बताई गई युक्ति को शब्दमार्ग, नाममार्ग या सुरत-शब्द योग कहा जाता है।

शब्द का स्वरूप

तुलसी साहिब ने दो तरह के शब्द पर प्रकाश डाला है। एक वे शब्द या नाम हैं जो लिखने, पढ़ने और बोलने में आते हैं; इन्हें वर्णात्मक शब्द या नाम कहते हैं। प्रभु के भक्तों ने अनेक भाषाओं में परमात्मा के अनेक नाम रखे हैं, वे सब वर्णात्मक शब्द हैं। लेकिन जिस शब्द या नाम की महिमा संत-सतगुरु करते हैं, वह प्रभु के साथ मिलानेवाली शक्ति है। वही शक्ति सृष्टि के कण-कण में समाई हुई है और हर जीव के अंदर निवास करती है। इसे लफ़्ज़ों में बयान नहीं किया जा सकता। इसे धुनात्मक शब्द कहते हैं। तुलसी साहिब ने अंतर के जिस अनुपम सार शब्द का गुणगान किया है, वह बाहरी तौर पर सुनाई देनेवाले शब्द से अलग है।

निरसब्दी बिन सब्द लिखन पढ़न में नाहीं।
लिखन पढ़न में भया सब्द में आया भाई॥
अछर जहाँ लगि सब्द बोल में सभी कहाया।
अरे हाँ रे तुलसी नि:अच्छर है न्यार संत ने सैन बुझाया॥[2]

जो कुछ लिखने, पढ़ने और बोलने में आता है, वह वर्णात्मक भाषा का शब्द है, परंतु मुक्ति दिलाने वाला शब्द तो लिखने, पढ़ने और बोलने वाले शब्द से न्यारा है। उस शब्द की पहचान संत-सतगुरु ही करवाते हैं।

नि:अच्छर अच्छर बिस्तारा। नाम भेद वोहू से न्यारा॥
नाम डोरि है सब के माहीं। नाम भेद कोउ चीन्है नाहीं॥
निरगुन सरगुन नाम बतावै। सत्त नाम के मरम न पावै॥
बिन सतसंग समझ नहिं आवै। सतगुरु बिना राह नहिं पावै॥[3]

तुलसी साहिब शब्द के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए समझा रहे हैं कि समस्त त्रिलोकी का वर्णन इन लिखे और पढ़े जानेवाले नामों द्वारा किया जा सकता है। परंतु जिस नाम ने सृष्टि की रचना की है, वह इस नीचे की सारी रचना से न्यारा है और हर घट में समाया हुआ है। उस नाम का रहस्य कोई बिरला भाग्यशाली ही जानता है। धर्मग्रंथ सगुण और निर्गुण तक का हाल बयान करते हैं, परंतु सतनाम का रहस्य कोई नहीं जानता। संतों के सत्संग और सतगुरु की शरण के बिना घट-घट में व्याप्त मुक्ति दिलाने वाले शब्द या नाम की पहचान नहीं हो सकती।

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि नाम से तुलसी साहिब का अभिप्राय अवतार धारण करनेवाले राम या किसी अन्य भाषा के किसी विशेष नाम से न होकर प्रभु की शक्ति से है जिसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। तुलसी साहिब कहते हैं:

नाम वोही नाम वोही, कोइ बूझे भेद भेदी जिन जाना री॥ टेक॥
राम न सके नाम गुन गाई, संतन को दरसाना री॥
ब्रह्म राम से नाम निनारा, रामायन बाखाना री॥
चौदह भवन काल केरी बन्धन, पद चौथे परमाना री॥
कोइ सज्जन सतगुर से पावे, हिये दृग दृष्टी दिखाना री॥
सूरत सिखर चढ़ी दस द्वारे, पारे पद पहिचाना री॥
तुलसी गगन गुरू धुर धामी, सूरज किरन समाना री॥[4]

वह कहते हैं कि मैं उस नाम का रहस्य प्रकट कर रहा हूँ, जिस नाम के विषय में गोस्वामी तुलसीदास जी ने *रामचरितमानस* में फ़रमाया है कि उस नाम की तो ब्रह्म और राम भी महिमा नहीं कर सकते। आप कहते हैं कि त्रिलोकी तक की रचना काल के अधीन है, परंतु जिस नाम की मैं महिमा कर रहा हूँ, उसके उदय का स्थान चौथा लोक सचखंड है। सुरत यानी आत्मा त्रिलोकी को पार करके दसवें द्वार यानी सुन्न मंडल में पहुँचकर ही उस नाम को पहचान सकती है। जिस प्रकार सूर्य की किरण सूर्य में समाकर उसका रूप हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा सतलोक में पहुँचकर नाम में समाकर नामरूप हो जाती है।

तीन लोक से नाम निनारा। सो जाने सतगुर का प्यारा॥
जपने में कोई भेद न पावे। सतगुर सूरत संध लखावे॥[5]

सब्द सब्द सब कहैं सबद का सुनौ ठिकाना।
सार सब्द है न्यार पार निरसब्द कहाना॥
सुन्न सहर से सब्द आदि नित उठै अवाजा।
अरे हाँ रे तुलसी निरसब्दी धुन सुन्नि सुन्नि से न्यारा गाजा॥[6]

तुलसी साहिब आगे फ़रमाते हैं कि कोई सतगुरु का प्यारा ही यह भेद जान सकता है कि नाम तीनों लोकों से न्यारा है। यह लिखने, पढ़ने या

बोलने में नहीं आता और केवल जपने वाले नामों से उस सच्चे नाम का भेद नहीं जाना जा सकता। वास्तव में सार शब्द सबसे अलग है, उसे निःशब्द भाव निःअक्षर (तीसरे और चौथे आंतरिक मंडल) से भी परे कहा गया है। सुन्न मंडल में आदि शब्द की निःशब्द धुन निरंतर गूँजती रहती है, सार शब्द की गूँज सुन्न मंडल के शब्द से अलग है। तुलसी साहिब ने सतलोक को सच्चे शब्द या सार शब्द का स्रोत माना है। आप सार शब्द की पहचान बताते हुए कहते हैं कि *गरजत गगन गिरा धुन बानी, सुन सखि सबद निसानी॥*[7]—सार शब्द की निशानी यह है कि उसकी ध्वनि यानी वाणी आंतरिक आकाश में गर्जना करती हुई सुनाई देती है।

सब्द सब्द सब कहत हैं सब्द सुन्न के पार॥
सब्द सुन्न के पार सार सोई सब्द कहावै।
पच्छिम द्वार के पार पार के पार समावै॥
दो दल कँवल मँझार मद्ध के मधि में आवै।
संतन दिया लखाय सार सोइ सब्द कहावै॥
तुलसी सत सतलोक से कहूँ कुछ भेद निनार।
सब्द सब्द सब कहत हैं सब्द सुन्न के पार॥[8]

शब्द के स्वरूप की चर्चा करते हुए तुलसी साहिब यहाँ आंतरिक मंडलों की ओर भी संकेत कर रहे हैं। 'पच्छिम द्वार' का अर्थ सुन्न है। 'पच्छिम द्वार के पार' से अभिप्राय सुन्न से परे अर्थात् महासुन्न है। 'पच्छिम द्वार के पार पार' का अर्थ महासुन्न से परे अर्थात् भँवरगुफा है। 'पच्छिम द्वार के पार पार के पार' का अर्थ भँवरगुफा से आगे यानी सतलोक है। तुलसी साहिब समझाते हैं कि शब्द की ध्वनि सतलोक से उठकर नीचे की संपूर्ण रचना में पहुँच रही है। सतलोक से नीचे शब्द में माया की मिलावट होती है। इसलिये इसे असार-शब्द कहा जाता है। सतलोक में शब्द अपने निर्मल स्वरूप में है। इसमें माया की कोई मिलावट नहीं है। इसलिये इसे सार शब्द कहा गया है।

सो कहें संत सब्द सुखदाई। सो महिमा बेदन नहिं पाई॥
ओंकार को नेत पुकारा। यह सुन सब्द बेद से न्यारा॥
अंडा सुन्न में सैल कराई। सो वो सब्द परखिया भाई॥
ओअं सोहं जाप सुनावा। सो सब ये माया परभावा॥
वह तो सब्द सुन्न के माहीं। उलटे चढ़े अधर घर माहीं॥
सो बूझे यह बाक बयाना। सतसँग से कोइ सज्जन जाना॥
सब्द सब्द में भेद निनारा। यह परखे संतन का प्यारा॥[9]

आप समझाते हैं कि सार शब्द का भेद निराला है। वेदों में केवल दूसरे मंडल त्रिकुटी से आ रहे उस शब्द का ही रहस्य प्रकट किया गया है जिसे ओंकार कहते हैं। वह शब्द तीन गुणों की त्रिलोकी यानी माया की सीमा में है। उससे ऊपर सुन्न मंडल यानी दसवें द्वार से सार शब्द शुरू होता है जिसका स्रोत सतलोक है। उस शब्द का भेद केवल संतों की शरण लेकर ही पाया जा सकता है।

तुलसी साहिब समझा रहे हैं कि अंदर अनेक रूहानी देश या मंडल हैं। प्रत्येक मंडल में उसकी बनावट के अनुसार शब्द यानी नाम की एक ही शक्ति अलग-अलग प्रकार की ध्वनि और अलग-अलग रंग के प्रकाश के रूप में दिखाई देती है। तुलसी साहिब नीचे पाँच प्रमुख आंतरिक मंडलों में सुनाई देनेवाली दिव्य ध्वनियों का उल्लेख करते हैं:

घट में बैठे पाँचौ नादा। घट में लागी सहज समाधा॥[10]

पाँच सब्द का कहौं बिधाना। न्यारा न्यारा ठाम ठिकाना॥ ...
सत्त सब्द सतलोक निवासा। जहँवाँ सत्तपुरुष कर बासा॥
दूजा सब्द सुन्न के माई। तीजा अच्छर सब्द कहाई॥
चौथा ओंकार बिधि गाई। पंचम सब्द निरंजन राई॥[11]

आप कहते हैं कि इस शरीर में पाँचों शब्द विद्यमान हैं और शरीर में ही सहज समाधि लगाई जा सकती है। तुलसी साहिब इन पाँच शब्दों के

विधान के बारे में बता रहे हैं, जिनका अलग-अलग ठिकाना है। ऊपर से नीचे के क्रम में पहला शब्द 'सत्त' शब्द सतलोक में निवास करता है, जहाँ पर सतपुरुष का वास है। दूसरा शब्द सुन्न में है। तीसरा शब्द अक्षर है जो दसवें द्वार का है। चौथे शब्द ओंकार को ब्रह्म कहा जाता है। पाँचवाँ शब्द त्रिलोकी के शासक निरंजन का है।

इसे यदि मृत्युलोक से शुरू करते हुए नीचे से ऊपर की ओर के क्रम में देखें तो पहले मंडल में सुरत को जो शब्द सुनाई देता है, उसमें माया की मिलावट होती है। यह मिलावट दूसरे मंडल त्रिकुटी तक है। तीसरे मंडल सुन्न में माया की मिलावट नाममात्र है। चौथे मंडल, महासुन्न को पार करने के बाद सतलोक में पहुँचकर सतशब्द की प्राप्ति होती है, जो सतपुरुष का ही रूप है।

तुलसी साहिब ने आंतरिक मंडलों में गूँज रहे शब्द धुन के दिव्य संगीत को बाहरी संगीतवाद्यों से उठनेवाली ध्वनियों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है:

सुरत सिरोमनि घाट, गुमठ मठ मृदँग बजे रे॥ टेक॥
किंगरी बीन संख सहनाई, बंकनाल की बाट।
चित बिच चाट खाट पर जागी, सोवन कपट कपाट॥
मुरली मधुर झाँझ झनकारी, रम्भा नचत बैराट।
उड़त गुलाल ज्ञान गुन गाँठी, भरि भरि रँग रस माट॥
गइया गैल सैल अनहद की, उठे तान सुर ठाठ।
लगन लगाय जाय सोइ समझी, सुरति सैल नभ फाट॥
तुलसी निरखि नैन दिन रात, पल पल पहरो आठ।
यहि बिधि सैल करे निस बासर, रोज तीनसै साठ॥[12]

उनका कहना है कि आंतरिक आकाश में पहुँचने पर सुरत को शब्द की अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। इनमें मृदंग, शंख, शहनाई, किंगरी, मुरली, मजीरा, बीन आदि की ध्वनियाँ प्रमुख हैं। जो सुरत सचेत

होकर पूरी लगन से शब्द को सुनती है, केवल उसी को इन अनुपम ध्वनियों के अनुभव का सौभाग्य प्राप्त होता है। फिर उस सौभाग्यशाली सुरत को निरंतर, दिन-रात अंतर में शब्द की ध्वनि सुनाई देती रहती है। ये धुनें इतनी मनमोहक हैं कि एक पल के लिये भी इस दिव्य संगीत से सुरत का ध्यान नहीं हटता।

शब्द की प्राप्ति

तुलसी साहिब कहते हैं कि जीव चाहे कितने भी प्रयत्न क्यों न कर ले, सुरत-शब्द के अभ्यास के बिना प्रभुप्राप्ति का कार्य कभी भी पूरा नहीं हो सकता। बाहरी आँखों से आंतरिक सार तत्त्व का ज्ञान नहीं हो सकता।

सुरति सब्द के भेद बिन, होय न पूरन काम।
चमर चाम की दृष्टि में, तन तत तिमिर समान॥[13]

नूर नबी सब माहिं बिराजा। जाकी हर दम उठै अवाजा॥[14]

आप कहते हैं कि नबी का नूर, मुर्शिद का प्रकाश किसी एक देश, धर्म या जाति के लोगों तक सीमित नहीं है। वह प्रकाश संसार के हर प्राणी के अंदर समान रूप से मौजूद है। उस प्रकाश में से एक ध्वनि उठ रही है।

आप कहते हैं कि सब में ब्यापक ब्रह्म समाना। दरसै गगन फोड़ि असमाना॥[15]—ब्रह्म तो सब में समान रूप से व्याप्त है, परंतु किसी पूर्ण संत से प्राप्त युक्ति द्वारा मन और सुरत को गगन यानी त्रिकुटी पर ले जाकर ही उसे देखा जा सकता है।

घेरि घुमर घट लाव रे, सूरत समझाई॥ टेक॥
दृष्टि द्वार पर गाड़ि के, गुर इष्ट लगाई।
तिल भर भीतर फेर के, निरखो मठ माहीं॥[16]

आप समझाते हैं कि सबसे पहले शरीर और संसार में फैले हुए ध्यान को एकाग्र करके अंदर आँखों से ऊपर स्थिर करने का यत्न करो। जिस नुक़ते

पर ध्यान यानी सुरत को अंदर टिकाना है, आपने उसे 'दृष्टि द्वार' या 'तिल' कहा है। 'गुर इष्ट' से यह अभिप्राय है कि ध्यान को अंदर उस नुक़ते पर, गुरु के स्वरूप पर स्थिर करके शरीररूपी मंदिर में देखने का प्रयत्न करो।

मन को थिर कर बूझौ बाता। मन थिर बिना न आवै हाथा॥
इन्द्री मन थिर सूरति हेरो। तब भौजल से होइ निबेरो॥[17]

सबसे पहले चंचल मन को इंद्रियों की तरफ़ से मोड़कर अंदर आँखों के ऊपर भवों के मध्य में स्थिर करने का प्रयत्न करो। सूरति हेरो – आप समझाते हैं कि जब मन अंदर आँखों से ऊपर एकाग्र और स्थिर हो जायेगा तो सुरत इंद्रियों से अलग हो जायेगी।

तुलसी साहिब फ़रमा रहे हैं कि आत्मा की दो शक्तियाँ हैं – सुरत और निरत। सुरत अंदर शब्द की ध्वनि को सुनती है और निरत शब्द के प्रकाश को देखती है; शब्द की ध्वनि को सुनकर सुरत को ऊँचे मंडलों की दिशा का ज्ञान हो जाता है और निरत शब्द के प्रकाश को देखती हुई, ऊपर की ओर सफ़र तय करना शुरू कर देती है।

संतन सुरति निरति ठहराई। मन थिर करि करि गगन चढ़ाई॥[18]

आपने मनुष्य-शरीर को क़ुदरती काबा और आँखों के ऊपरी भाग को उसकी मेहराब कहा है। आप कहते हैं कि साधक को चाहिये कि सतगुरु के उपदेशानुसार सुरत को अंदर आँखों से ऊपर एकाग्र और स्थिर करे। वहाँ पहुँचकर इसे सतलोक से आ रही शब्द की ध्वनि सुनाई देगी। यह वह ध्वनि है जो सृष्टि के आरंभ से मृत्युलोक में भटकती हुई सुरत को वापस सतलोक बुला रही है:

कुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥[19]

आगे तुलसी साहिब धुर दरगाह से आ रही इस धुन से जुड़ने के लिये उपाय भी बताते हैं:

मुरशिदे कामिल से मिल सिदक और सबूरी से तक़ी।
जो तुझे देगा फ़हम शाह रग के पाने के लिये॥
गोशे बातिन हों कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।
ला इलाह अल्लाहू अकबर पै जाने के लिये॥[20]

तुलसी साहिब बड़े प्रेम से समझाते हुए कहते हैं: मेरे प्यारे! पूरे गुरु से सुरत को अंदर आँखों से ऊपर स्थिर करने की युक्ति सीखकर प्रेम और विश्वास के साथ अभ्यास कर। इससे तेरी सुरत शाहरग यानी सुषुम्ना में स्थिर हो जायेगी। तेरी आत्मा की सुनने की शक्ति जाग्रत हो जायेगी, जिसकी सहायता से तुझे अपने अंदर शब्द की आवाज़ सुनाई देने लगेगी और सुरत उस ध्वनि को पकड़कर अंदर अल्लाह या परमात्मा की दरगाह में पहुँच जायेगी।

तुलसी साहिब एक जिज्ञासु शेख़ तक़ी को समझाते हुए फ़रमा रहे हैं:

सुन ऐ तक़ी न जाइयो ज़िनहार देखना।
अपने में आप जलवाए दिलदार देखना॥
पुतली में तिल है तिल में भरा राज़ कुल का कुल।
इस परदाए सियाह के ज़रा पार देखना॥
चौदह तबक़ का हाल अयां हो तुझे ज़रूर।
ग़ाफ़िल न हो ख़याल से हुशियार देखना॥[21]

ऐ तक़ी! तुम प्रभु की तलाश में किसी भी हालत में बाहर न भटकते रहना, बल्कि अपने अंदर उस प्रियतम का जलवा देखने का प्रयत्न करना। दो आँखों की पुतलियों से ऊपर तिल के समान एक बारीक़ नुक़ता है। समस्त रूहानी रहस्य उस नुक़ते या काले परदे के पीछे छिपा हुआ है। यदि तुम पूरी तरह सचेत होकर उस परदे के पार देखने का प्रयत्न करोगे तो तुम्हें सभी चौदह मंडल प्रत्यक्ष दिखाई देने लगेंगे।

सूफ़ी दरवेशों ने इस तिल या काले परदे को 'नुक़्तए-सुवैदा' कहा है। तुलसी साहिब ने एक अन्य प्रसंग में इसे खसखस का दाना भी कहा है:

खसखस के दाने के अंदर सहर खुदा का बसता है।
कस्द करे ऐनों के तिल में वही तो उसका रसता है॥
रूह रकाने में ठहरावे सोई मुकर में धसता है।
सैल करे दाने के भीतर सो मुरसिद अलमसता है॥[22]

आप कहते हैं कि परमात्मा के घर का रास्ता खसखस के दाने की तरह बारीक़ नुक़ते में से गुज़रता है। उस नुक़ते के पीछे प्रभु की नगरी आबाद है। जो साधक अपनी आत्मा को उस नुक़ते पर स्थिर कर लेता है, वह प्रकाश से भरे आंतरिक जगत में दाख़िल हो जाता है। उस दाने के अंदर धँसकर आंतरिक रूहानी जगत की सैर करने का सौभाग्य जिस संत-महात्मा को प्राप्त होता है, वह अपने में ही मस्त रहते हैं।

आप कहते हैं कि सुरत के अंदर शब्दरूपी गुरु से मिलाप की तड़प वैसी ही होनी चाहिये जैसी पानी से अलग हुई मछली की होती है। ऐसी अवस्था में सुरत शब्द के अजपा-जाप में लीन रहती है और हृदय आनंदमय प्रकाश से भर जाता है।

लागी रहै बिरह संतन की, ज्यों जल मीन तलफना।
सुंदर सुख सन्मुख सूरज के, सूरति अजपा जपना॥[23]

तुलसी साहिब ने घट रामायण में सुरत-शब्द के अभ्यास के विषय में वर्णन करते हुए जीव को इस प्रकार प्रेरणा दी है:

सत सुरति समझि सिहार साधौ। निरखि नित नैनन रहौ।
धुनि धधक धीर गँभीर मुरली। मरम मन मारग गहौ॥
सम सील लील अपील पेलै। खेल खुलि खुलि लखि परै॥
नित नेम प्रेम पियार पिउ कर। सुरति सजि पल पल भरै॥

धरि गगन डोरि अपोर परखै। पकरि पट पिउ पिउ करै॥
सर साधि सुन्न सुधारि जानौ। ध्यान धरि जब थिर थुवा॥
जहँ रूप रेख न भेष काया। मन न माया तन जुवा॥
अलि अंत मूल अतूल कँवला। फूल फिरि फिरि धरि धसै॥
तुलसि तार निहार सुरति। सैल सत मत मन बसै॥[24]

आप कहते हैं: सुरत सत्य स्वरूप है, परंतु पिंड और ब्रह्मांड के निचले मंडलों में फैली होने के कारण यह प्रभु के सहज स्वरूप की पहचान भूल गई है। यही कारण है कि इसकी दुर्दशा हो रही है और यह दु:ख भोग रही है। इसे इन दुखों से मुक्त कराने के लिये इस नाशवान संसार की ओर से समेटकर प्रभु के सच्चे धाम में ले जाओ ताकि इसे प्रभु के सहज स्वरूप की पहचान हो जाये। तुलसी साहिब सिमटाव की विधि का वर्णन करते हुए कहते हैं: *पकरि पट पिऊ पिऊ करै॥*—सबसे पहले सतगुरु द्वारा बख़्शे नाम का सुमिरन करो। *धुनि धधक धीर गँभीर मुरली। मरम मन मारग गहौ॥*—ध्यान आँखों से ऊपर स्थिर करके, सुरत को शब्द की ध्वनि में लीन करो। क्योंकि शब्द ही सुरत को इस मन-माया के मंडल से पार ले जा सकता है। *सर साधि सुन्न सुधारि जानौ।*—सुरत को एकाग्रता से शब्द के साथ जोड़कर रखोगे तो यह मन के मंडल – त्रिकुटी – को पार करके सुन्न मंडल यानी दसवें द्वार में पहुँच जायेगी। *अलि अंत मूल अतूल कँवला। फूल फिरि फिरि धरि धसै॥*—अंत में सुरत उस अनंत, अथाह परमपद में पहुँच जायेगी जो सबका मूल है। उस अमर-अविनाशी धाम में पहुँचकर सुरत मन-माया के प्रभाव से सदा के लिये मुक्त हो जायेगी और सहज आनंद में समा जायेगी।

आंतरिक अनुभव

तुलसी साहिब ने वाणी के अनेक प्रसंगों में सुरत-शब्द के अभ्यास द्वारा प्राप्त होनेवाले आंतरिक रूहानी अनुभवों का उल्लेख किया है। सब्द सुरत जिन की मिली कर ब्रह्मंड नित सैल॥ कर ब्रह्मंड नित सैल केल सत

साहब चीन्हा।[25] अर्थात् जिनकी सुरत शब्द के साथ जुड़ जाती है, वे प्रतिदिन ऊँचे रूहानी मंडलों में भ्रमण करते हैं और प्रभु की लीला देखते हैं। उनका कुलमालिक के साथ मिलाप हो जाता है।

आप अंतर में होनेवाले अनुभवों के बारे में प्रचलित धारणा को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं:

जिन चीन्हि तन मन सुरति साधी। भवन भीतर लखि लई॥
जिन गाइ सब्द सुनाइ साखी। भेद भाषा भिनि भई॥[26]

जिसने भी तन, मन को वश में करके सुरत-शब्द का अभ्यास किया, उसकी भाषा और वर्णन की विधि अलग हो सकती है, परंतु अनुभव सदैव एक समान होता है।

एरी आली आज तो मँदर इक देखा लेखा निरताइ के॥ टेक॥
दीपक बिन महल उजारा दसो दिसि दीखत संसारा।
देखा दृग हिये से न्यारा धारा सुरति धाइ के॥
बिन जिभ्या बेद सुनावे अच्छर बिन बानी गावे।
सरवन बिन तान सुहाई भाई भुई भाइ के॥
करता बिन करहि कहावे पँगुला चढ़ि परबत धावे।
रसना बिन स्वाद बखानी जानी षट रस पाइ के॥
नैना बिन निरखि निहारे जहँ लगि सूरति सुधि धारे।
चौदह भव भवन बखाना जाना तन बन पाइ के॥
तुलसी सब सुगँध बखाने बिन नासा बिधि बिधि जाने।
कहों कहा अगम अलेखा लेखा लख लाइ के॥[27]

यहाँ तुलसी साहिब आंतरिक जगत में होनेवाले अनुभवों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं: हे मेरी सखी! मैंने शरीररूपी मंदिर के अंदर हृदय की आँख द्वारा अद्भुत नज़ारा देखा है। आंतरिक महल में दीपक के बिना ही भव्य प्रकाश है, जिसमें समस्त सृष्टि दिखाई देती है। उस प्रकाश

में सुरत तेज़ी से अंदर चढ़ाई करती है। आंतरिक आध्यात्मिक जगत में बिना बोले ही वेदों का पाठ हो रहा है; बिना अक्षरों के वाणी का उच्चारण किया जा रहा है; बिना कानों के शब्द की तान सुनाई देती है। वहाँ कुछ किये बिना ही सब कुछ हो रहा है, लँगड़ा पर्वत पर चढ़ जाता है अर्थात् इस संसार में निर्बल दिखाई देनेवाला जीव आंतरिक ऊँचे आध्यात्मिक मंडलों में पहुँच जाता है। जिह्वा के बिना हर प्रकार के रस प्राप्त हो जाते हैं, बिना आँखों के सब नज़ारे दिखाई देते हैं। वहाँ पहुँचकर सुरत निर्मल और चेतन हो जाती है और अंदर चौदह मंडल प्रत्यक्ष दिखाई देने लगते हैं। वहाँ बिना नासिका के अनेक प्रकार की सुगंध का अनुभव होता है। उस अलख, अगम, अनंत धाम का हाल कहने-सुनने की सीमा से परे है।

अंतर में प्रभुरूपी प्रियतम के महल में आत्मा को नित नवीन सुखों की अनुभूति होती है। वाणी का यह अंश इसी विचार को प्रस्तुत करता है:

पंछी पौन चुगै अलख घर॥ टेक॥
सहर सेत अस देख अचंभा, साँझै सूर उगै॥
नित परकास पद अगर उजाली, जगमग जुगन जुगै॥
सुखमनि सुन्न सुरति महलों पर, चढ़त न पैर डगै॥
करुना कँवल सोई दल द्वारा, लै लै मन उमडै॥
तुलसी तिल दिल देखि दृगन में, साचे सूर थुवै॥[28]

आत्मारूपी पक्षी प्रभु के अलख धाम पहुँचकर शब्द के मोती चुगता है। आंतरिक रूहानी देश में विस्मित कर देनेवाला भव्य प्रकाश हर ओर फैला हुआ है। वहाँ हर समय सूर्य का प्रकाश दिखाई देता है। वह अविनाशी प्रकाश युगों-युगों से ज्यों का त्यों क़ायम है। पूरी तरह निश्चल और आनंदमग्न हुई सुरत सुषुम्ना के रास्ते परमात्मा के महल में पहुँच जाती है और दिव्य दृष्टि द्वारा प्रभुरूपी सच्चे सूर्य का दीदार करती है। उस समय सुरत को परम आनंद की अनुभूति होती है जो वर्णन से परे है।

जो आत्मा मन-इंद्रियों के अधीन होकर सांसारिक विषय-विकारों का विष पीती थी, वही अंतर में हंस गति पाकर मानसरोवर से मोती चुगने लगती है। इस बदली हुई अवस्था का अनुभव तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में इस प्रकार किया है:

समुँद सिखर पर कंज बिराजत, अंज अबर धुन धधकत काने॥
अनहद नाद गगनगढ़ गरजत, उठत अधर में अपूरब ताने॥
सुंदर सुन्न सुमन बन पावन, मन मराल मंजे असनाने॥
मुकता चोंच चुगे गत सूरत, सो तुलसी सरवर तट जाने॥[29]

एक सुंदर आंतरिक दृश्य का चित्र खींचते हुए आप यहाँ फ़रमाते हैं कि इस शरीर यानी पिंडरूपी समुद्र के शिखर पर एक कमल खिला हुआ है, उस कमल से एक अद्‌भुत ध्वनि गूँज रही है। आंतरिक आकाश में अनहद शब्द की अनुपम रागिनियाँ हो रही हैं। सुन्न मंडल के पावन वन में सुंदर फूल खिले हुए हैं। सुरतरूपी हंस आकाश में स्थित अमृत के सरोवर में स्नान करता है और मानसरोवर में शब्द के मोती चुगता है।

आगे तुलसी साहिब की वाणी में से वह अंश उद्‌धृत किया गया है जिसमें उन्होंने सुरत-शब्द के अभ्यास की विधि को विस्तार से खोलकर समझाया है और साथ ही साथ उस अभ्यास से प्राप्त होनेवाले परम आनंद तथा अनुपम आंतरिक अनुभवों की भी चर्चा की है।

तुलसी निरखि देखि निज नैना। कोइ कोइ संत परखिहै बैना॥
जो कोइ संत अगम गति गाई। चरन टेकि पुनि महूँ सुनाई॥
अब जीवन का कहौं निबेरा। जा से मिटै भरम बस बेरा॥
जब या मुक्ति जीव की होई। मुक्त जानि सतगुरु पद सेई॥
सतगुरु संत कंज में बासा। सुरति लाइ जो चढ़ै अकासा॥
स्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परिमान जानि जन कोई॥

छिन छिन मन को तहाँ लगावै। एक पलक छूटन नहिं पावै॥
स्रुति ठहरानी रहे अकासा। तिल खिरकी में निस दिन वासा॥
गगन द्वार दीसै इक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा॥
अनहद सुनै गुनै नहिं भाई। सूरति ठीक ठहर जब जाई॥
चूवै अमृत पिवै अघाई। पीवत पीवत मन छकि जाई॥
सूरति साध संध ठहराई। तब मन थिरता सूरति पाई॥
सूरति ठहरि द्वार जिन पकरा। मन अपंग होइ मानो जकरा॥
चमकै बीज गगन के माईं जबहि उजास पास रहै छाई॥
जस जस सुरति सरकि सत द्वारा। तस तस बढ़त जात उँजियारा॥
सेत स्याम स्रुति सैल समानी। झरि झरि चुवै कूप से पानी॥
मन इस्थिर अस अमी अघाना। तत्त पाँच रँग बिधी बखाना॥
स्याही सुरत सपेदी होई। जरद जाति जंगाली सोई॥
तिल्ली ताल तरंग बखानी। मोहन मुरली बजै सुहानी॥
मुरली नाद साध मन सोवा। विष रस बादि बिधी सब खोवा॥
खिरकी तिल भरि सुरति समाई। मन तत देखि रहै टक लाई॥
जब उजास घट भीतर आवा। तत्त तेज और जोति दिखावा॥
जैसे मंदिर दीपक बारा। ऐसे जोति होत उँजियारा॥
जोति उजास फाटि पुनि गयऊ। अंदर चंद तेज अस भयऊ॥
देखै तत सोइ मनहि रहाई। पुनि चंदा देखै घट माईं॥
चंद्र उजास तेज भया भाई। फूला चंद्र चाँदनी छाई॥
सूरति देखि रहै ठहराई। ज्यों उजियास बढ़त जिमि जाई॥
ज्यों ज्यों सुरति चढ़ि चलि गयऊ। सेता ठौर ठाम लखि लयऊ॥
देख सैल ब्रह्मंड समाई। तारा अनेक अकास दिखाई॥
महि अरु गगन देखि उर माईं। और अनेकन बात दिखाई॥
कछु कछु दिवस सैल अस कीन्हा। ऊगा भान तेज को चीन्हा॥
तारा चंद्र तेज मिटि गयऊ। जिमि मध्यान भान घट भयऊ॥
ज्यों दोपहर गगन रबि छाई। ता से उजास भया घट माईं॥

ता के मधि में निरखि निहारा। घट में देखा अगम पसारा॥
सात दीप पिरथी नौ खंडा। गगन अकास सकल ब्रह्मंडा॥
समुँदर सात प्रयाग पद बेनी। गंगा जमुना सरसुती बहिनी॥
औरे नदी अठारा गंडा। ये सब निरखि परा ब्रह्मंडा॥
चारो खानि जीव निज होई। अंडज पिंडज उष्मज सोई॥
अस्थावर चर अचर दिखाई। यह सब देखा घट के माई॥
भिनि भिनि जीवन कर बिस्तारा। चारि लाख चौरासी धारा॥
और पहार नार बहुतेरा। जो ब्रह्मंड में जीव बसेरा॥
कछु कछु दिवस सैल अस कीन्हा। तीनि लोक भीतर में चीन्हा॥
जो जग घट घट माहिं समाना। घट घट जग जिव माहिं जहाना॥
ऐसे कई दिन बीति सिराने। एक दिवस गये अधर ठिकाने॥
परदा दूसर फोड़ि उड़ानी। सुरत सुहागिन भई अगमानी॥
सब्द सिंध में जाइ सिरानी। अगम द्वार खिरकी नियरानी॥
चढ़ि गइ सूरति अगम ठिकाना। हिये लखि नैना पुरुष पुराना॥
ता में पैठि अधर में देखा। रोम रोम ब्रह्मंड का लेखा॥
अंड अनेक अंत कछु नाहीं। पिंड ब्रह्मंड देखि हिये माहीं॥
जहँ सतगुरू पूरन पद वासी। पदम माहिं सतलोक निवासी॥
सेत बरन वह सेतई साँई। वहँ संतन ने सुरति समाई॥
सत्तहि लोक अलोक सुहेला। जँहवाँ सुरति करै निज केला॥
सूरति संत करै कोइ सैला। चौथा पद सत नाम दुहेला॥
परदा तीसर फोड़ि समानी। पिंड ब्रह्मंड नहीं अस्थानी॥
जहाँ वो अगम अगाधि अघाई। जहाँ की सत गति संतन पाई॥
महुँ उन लार लार लरकाई। उन सँग टहल करन नित जाई॥
महुँ पुनि चीन्ह लीन्ह वह धामा। बरनि न जाइ अगमपुर ठामा॥
नि:नामी वह स्वामी अनामी। तुलसी सुरति सैल तहँ थामी॥
जो कोइ पूछै तेहि कर लेखा। कस कस भाखौं रूप न रेखा॥
तुलसी नैन सैन हिय हेरा। संत बिना नहिं होइ निबेरा॥
निज नैना देखा हिये आँखी। जस जस तुलसी कह कह भाखी॥[30]

तुलसी साहिब निजी अनुभव के आधार पर कहते हैं: मैं पूर्ण संतों द्वारा सिखाई गई माया के भ्रम जाल से मुक्त होने की विधि बयान करता हूँ। सबसे पहले जीव को सतगुरु की शरण में जाकर उनकी सेवा करनी चाहिये। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी फ़रमाया है अग्या सम न सुसाहिब सेवा।[31] – सतगुरु की सबसे बड़ी और सर्वोत्तम सेवा सतगुरु के हुक्म का पालन करना है और सतगुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करना है। सतगुरु द्वारा बताई युक्ति के अनुसार जब साधक अपना ध्यान अंदर आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर कर लेता है, तो उसे आंतरिक कमल पर सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन हो जाते हैं। आंतरिक रूहानी मार्ग पर आगे बढ़ती हुई सुरत पहले रूहानी मंडल सहस्रदल कमल को भी स्पष्ट देख पाती है।

वहाँ पहुँचकर शिष्य का ध्यान उस नुक़ते पर स्थिर हो जाता है। आंतरिक अनुभवों का आनंद लेनेवाली सुरत तिलरूपी खिड़की में से बार-बार अंदर जाना चाहती है। तीसरे तिल में दाख़िल होने पर अंदर प्रकाश दिखाई देता है और अनहद नाद सुनाई देने लगता है। साधक के मन में कोई संकल्प-विकल्प नहीं रहते। पूरी तरह शांत और स्थिर हुआ मन आंतरिक आकाश में से आ रहे शब्द के अमृत को पीना शुरू कर देता है। इस अमृत को पीकर मन तृप्त हो जाता है। इसकी इच्छाएँ-तृष्णाएँ शांत हो जाती हैं।

ज्यों-ज्यों सुरत अंदर ऊपर सतलोक की तरफ़ आगे बढ़ती है, प्रकाश बढ़ता जाता है। सुरत अंदर सेत पद और श्याम पद को पार करती हुई त्रिकुटी में पहुँच जाती है। वहाँ ब्रह्मांड अर्थात् त्रिकुटी के उलटे कुएँ में से अमृत बरस रहा है, जिसे पीकर मन पूरी तरह तृप्त और शांत हो जाता है। इसे पाँच तत्त्वों के काले, लाल, सफ़ेद, पीले और भूरे पाँच रंगों के उदय स्थान और उनकी कार्यविधि का बोध हो जाता है। वहाँ इसे शब्द की मनमोहक मुरली की तान सुनाई देती है। मुरली के नाद यानी मधुर शब्द को सुनकर मन विषय-विकारों और इंद्रियों के भोगों के व्यर्थ के रसों से सदा के लिये उपराम हो जाता है।

आप आंतरिक अनुभवों के विषय में विस्तारपूर्वक समझाते हुए आगे कहते हैं कि जब सुरत तिल की खिड़की को पार करके अंदर पहुँचती है तो इसे शब्द की ज्योति भी दिखाई देती है। जिस प्रकार दीये के जलने पर घर में प्रकाश हो जाता है, उसी प्रकार जीव के अंदर प्रकाश भर जाता है। जब सुरत उस ज्योति को चीर देती है तो अंदर तेज और प्रकाश से परिपूर्ण चंद्रमा दिखाई देता है। जैसे-जैसे सुरत ऊपर जाती है, प्रकाश बढ़ता जाता है। यह संपूर्ण ब्रह्मांड का भ्रमण करती हुई, ऊपर की ओर बढ़ती जाती है। इसे अंतर में तारा मंडल दिखाई देता है, धरती और आकाश दिखाई देते हैं। इससे आगे सुरत सूर्य मंडल में पहुँच जाती है। जिस प्रकार दोपहर के समय सूर्य के प्रकाश के कारण चाँद-तारे दिखाई नहीं देते, उसी प्रकार सूर्य के प्रकाश के समक्ष चंद्र-मंडल और तारा-मंडल का प्रकाश धुँधला हो जाता है। सूर्य के प्रकाश से अंतर में सातों द्वीप, नौ खंड दिखाई देने लगते हैं। वहाँ सातों समुद्र दिखाई देते हैं। गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम यानी त्रिवेणी के दर्शन होते हैं; वहाँ अन्य बहुत-सी नदियाँ परस्पर जुड़ी हुई नज़र आती हैं और संपूर्ण ब्रह्मांड दिखाई देता है। वहाँ पहुँचकर चारों खानियों का रहस्य खुल जाता है; चल और अचल चौरासी लाख जीवों की अनंत श्रेणियों का ज्ञान हो जाता है। अभिप्राय यह है कि जीव को संपूर्ण त्रिलोकी का पूर्ण दृश्य स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

इसके पश्चात दूसरा परदा चीरकर यानी अंतर की बड़ी बाधा को दूर करके शब्द के समुद्र में समाकर सुरत दुहागिन से सुहागिन बन जाती है। इसे अगम-धाम की खिड़की दिखाई देती है। यह अगम-धाम में पहुँचकर अमर, अनादि परमपुरुष के दर्शन करती है। इसे सतपुरुष के रोम-रोम में अनंत ब्रह्मांड समाये हुए दिखाई देते हैं। सतलोक के कमल में सतगुरु के दर्शन होते हैं। वहाँ पहुँचकर सुरत को सतगुरु और सतपुरुष के एक होने का साक्षात अनुभव होता है। सतपुरुष और सतगुरु दोनों प्रकाश के पुंज हैं। वह निर्मल प्रकाश का देश, वह मंडल ही सुरत का निज धाम है। वहाँ पहुँचकर सुरत आनंदरूप हो जाती है। उस मंडल को सतलोक या चौथा

लोक कहा जाता है। किसी पूर्ण संत की सुरत को ही उस दुर्गम देश में पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

इसके पश्चात सुरत तीसरा परदा चीरकर अर्थात् एक अन्य आंतरिक बाधा को दूर करके अगम, अगाध, अकह, अनामी देश में पहुँच जाती है, जिसका भेद केवल पूर्ण संतों ने ही खोला है। वहाँ पहुँचकर सुरत को पूर्ण स्थिरता या विश्राम मिल जाता है और वह निश्चल पद की निवासी बन जाती है। उस मंडल का केवल अनुभव ही किया जा सकता है, परंतु रंग-रूप, आकार से न्यारे उस अकथ, अकह धाम का शब्दों में वर्णन कर पाना असंभव है। तुलसी साहिब कहते हैं कि मैंने निजी अनुभव के आधार पर उस अनंत, अनादि धाम के बारे में कुछ संकेत दिये हैं।

आली री आज अनंद बधाई। पिय पद परसि पठाई॥ टेक॥
ये सुख चैन सैन कहा गाऊँ। कहि कहि संत सुनाई॥
आदि अनादि अमर पद पावा। दुख सुख बिपति नसाई॥
अब सब मरन जिवन भ्रम भागा। पिय प्यारी पद पाई॥
तुलसीदास बास घर अपने। अली सुख कहत न जाई॥[32]

तुलसी साहिब यहाँ स्पष्ट करते हैं कि आंतरिक अभ्यास द्वारा प्राप्त होनेवाले आंतरिक जगत के अनुभवों का पूरी तरह खोलकर वर्णन करना संभव नहीं है, न ही इन अनुभवों से प्राप्त होनेवाले परम आनंद को शब्दों द्वारा बताया जा सकता है। वे कहते हैं: प्यारी सखी! मैं अपने प्रियतम के धाम पहुँच गई हूँ और मुझे हर तरफ़ से आनंद से भरपूर बधाई मिल रही हैं। संतों ने इस अनुपम आनंद का हाल अपनी वाणी में प्रकट किया है, परंतु इस आनंद के बारे में केवल संकेत ही किये जा सकते हैं, इसे पूरी तरह बयान नहीं किया जा सकता। उस अमर, अविनाशी परमपद की प्राप्ति से हर प्रकार के दु:ख-संताप दूर हो गये हैं। प्यारे प्रियतम के निज धाम पहुँचकर आवागमन का दु:ख और भ्रम सदा के लिये समाप्त हो गया है। उस प्यारे प्रियतम के घर के आनंद का वर्णन कर पाना असंभव है।

प्रेम, भक्ति और विरह

सभी संतों की तरह तुलसी साहिब के उपदेश में भी प्रभुप्रेम को ही परमार्थ का मुख्य आधार माना गया है। संतों के मार्ग को प्रेममार्ग, भक्तिमार्ग या प्रेमा-भक्ति का मार्ग भी कहा जाता है। परमार्थ से संबंधित साहित्य में कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, हठमार्ग, त्यागमार्ग, योग साधना आदि की तुलना में प्रेममार्ग या भक्तिमार्ग को ही सर्वोत्तम माना गया है। संत-महात्मा समझाते हैं कि भक्ति ऐसा साधन है, जिसको भगवान ने अपने साथ मिलाप के लिये स्वयं बनाया है। अन्य सभी साधन मनुष्य के बनाये हुए हैं। प्रभु प्रेमरूप है और उसका प्रेम, जीव को उसकी ओर खींचने का सबसे आसान, स्वाभाविक और शक्तिशाली साधन है। कहावत है: 'बस में होते आए हैं भगवान भक्त के।' भक्त को भगवान और भगवान को भक्त प्यारा होता है।

प्रेम से अभिप्राय वह प्रबल आकर्षण है, जो प्रेम करनेवाले को अपने प्रियतम की ओर आकर्षित करता है। प्रेमी का अपने ऊपर कोई नियंत्रण नहीं रहता, वह विवश होकर प्रियतम की ओर खिंचा चला जाता है। प्रेमी ख़ुदी को मिटा देता है, ख़ुद को मिटा देता है, लेकिन किसी भी हालत में प्रेम को छोड़ने के लिये तैयार नहीं होता।

जिस प्रकार प्रेम परमात्मा का प्रसाद है उसी प्रकार विरह भी उसी की देन है। दरअसल विरह में ही प्रेम परिपक्व होता है। यह विरह की तड़प संसार की इच्छाओं को भस्म कर देती है। विरह में प्रेमी का रोम-रोम प्रियतम को याद करता है। विरह वह सीढ़ी है जो प्रेमी भक्त को प्रियतम के चरणों तक पहुँचा देती है।

तुलसी साहिब की वाणी में भक्ति, प्रेम और विरह, ये तीनों शब्द आपस में इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि इन्हें एक दूसरे से अलग कर पाना आसान नहीं है।

प्रेम

सभी पूर्ण संतों ने यह उपदेश दिया है कि प्रभु प्रेमरूप है। प्रेम उसके अस्तित्व का आधार है और प्रेम ही उसके साथ मिलाप का सच्चा साधन है। प्रेम कहीं बाहर से नहीं मिलता। प्रभु का अंश होने के कारण आत्मा के अंदर स्वाभाविक रूप से प्रभु का प्रेम समाया हुआ है। वर्तमान अवस्था में वह प्रेम संसार के मोह, इंद्रियों के भोगों, विषय-विकारों के आकर्षण और कर्म-संस्कारों के मोटे परदों के नीचे दबा हुआ है। संतों की संगति, प्रभु की भक्ति या नाम के अभ्यास का वास्तविक उद्देश्य अपने भीतर प्रभुप्रेम को जाग्रत करना है। जैसे ही जीवात्मा को संतों की संगति द्वारा प्रभु के साथ अपने सच्चे संबंध का अहसास होता है और इस बात का ज्ञान हो जाता है कि मेरा निजघर परमात्मा का परमधाम है और मेरा वास्तविक स्वरूप मन-इंद्रियाँ नहीं, बल्कि विशुद्ध आत्मा है; इसके अंदर प्रभु का प्रेम अंकुरित हो जाता है।

जैसे-जैसे यह प्रेम फलीभूत होता है, वैसे-वैसे प्रेमी समर्पण की उस अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ वह अपने प्रियतम के लिये हर क़ुर्बानी देने को तैयार हो जाता है। तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में प्रेम के इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा है:

आसिक इसक इसक आसिक से, करना मौत निसानी॥
मुरदा ह्वै करि खाक मिली अब, जब पट अमर लिखानी॥[1]

तुलसी साहिब ने सच्चा आशिक़ उसे माना है, जो अपना सिर माशूक़ पर क़ुर्बान कर दे। वह जीते-जी मर जाये और मिट्टी में मिलकर मिट्टी हो जाये। इन सबका वास्तविक अभिप्राय ख़ुदी या हौंमैं को ख़त्म करना है। सच्चा आशिक़ वह है, जो अपने अस्तित्व को अपने प्रियतम में समाहित कर देता है। जब तक ख़ुदी का परदा है, इश्क़ के शिख़र तक

नहीं पहुँचा जा सकता। जो आशिक़ सच्चे दिल से माशूक़ से इश्क़ करता है, वह अपनी हस्ती मिटा देता है और उसी में समा जाता है।

प्रेम ही प्रियतम के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करता है। प्रेमी भक्त यह हिसाब नहीं रखता कि इतनी भक्ति का इतना फल मिलना चाहिये। जिस प्रेम में हिसाब रखा जाता है, वह प्रेम नहीं व्यापार है। प्रेमी केवल देना जानता है। वह प्रियतम से केवल प्रियतम को ही माँगता है। तुलसी साहिब अपने शिष्य हिरदे को प्रेमी भक्त का यही लक्षण बताते हुए कहते हैं:

जब हिरदे यह भक्त कहावे। दास भाव स्वामी को चावे॥[2]

तुलसी साहिब ने प्रेम से संबंधित अपनी संपूर्ण विचारधारा का विवरण इस प्रकार दिया है। आप समझाते हैं कि परमात्मा से मिलाप का साधन उसका प्रेम है। प्रेम की कशिश ही आत्मा को निज धाम तक का लंबा सफ़र तय करने की शक्ति प्रदान करती है। उसके अंदर यह प्रेम परमेश्वर स्वयं उत्पन्न करता है। *मैं पिया की बलिहार प्यार मोहि से कियौ।*[3]—आत्मा को निज धाम पहुँचकर इस बात की समझ आ जाती है कि वह अपने आप उससे प्रेम नहीं कर सकती थी, बल्कि उस दयालु प्रियतम ने स्वयं उसके अंदर अपना प्रेम उत्पन्न किया है और उसकी कृपा से ही वह उसकी प्रेम भरी सुखदायक सेज तक पहुँच सकी है।

परमात्मा सतगुरु के रूप में जीव को अपनी पहचान कराता है और अंत में उसे अपने साथ मिला लेता है। इस प्रकार अपना प्रेम पैदा करनेवाला भी वही है, अपने साथ मिलाप की तड़प देनेवाला भी वही है और अपने साथ मिलाप करानेवाला भी वही है। इस प्रेम कहानी का आदि, मध्य और अंत स्वयं परमात्मा ही है।

भक्ति की महिमा

भक्ति का अर्थ पूजा या आराधना है। जिसके प्रति प्रेम हो, उसे प्रसन्न करने का यत्न ही भक्ति है। प्रियतम को याद करना, बार-बार उसका ध्यान आना, उसकी महिमा करना, उसके समक्ष विनती करना आदि सभी

भक्ति के अंग हैं। भक्ति भाव प्रेम से ही उत्पन्न होता है और प्रियतम के प्रति प्रेम को परिपक्व करके, उसके साथ मिलाप का साधन बन जाता है।

घट रामायण में से उद्धृत निम्नलिखित वाणी में तुलसी साहिब ने परमार्थ में भक्ति की महिमा और इसके महत्त्व का स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है:

बिना भक्ति उबरै नहिं भाई। तासे संतन भक्ति दृढ़ाई॥
भक्ति बिना जिव जम करै हाना। बिना भक्ति चौरासी खाना॥
बिना भक्ति कोइ पार न जाई। ता से भक्ति संत ठहराई॥[4]

तन मन धन संतन पर वारै। नित नित सतसंगति की लारै॥
दास भाव सतसंगति लीना। दीन हीन मन होइ अधीना॥
चित्तभाव दिल मारग चावै। सब साधन की टहल सुहावै॥[5]

भक्ति बड़ी खाँड़े की धारा। जो यह करे आप जिन मारा॥
आपा को समझे नहिं भाई। जिन यह भक्ति गरीबी पाई॥[6]

भक्ति के बिना जीव का उद्धार नहीं हो सकता और न ही उसका चौरासी से छुटकारा हो सकता है। उसे यमों द्वारा दी जानेवाली यातनाओं का भी शिकार होना पड़ता है। इसी लिये संतों ने भक्ति को दृढ़ कराया है। भक्ति भाव में जीव का अहं भाव दूर हो जाता है। वह दीन होकर निरंतर संतों की संगति और उनकी सेवा में लीन रहता है। सच्चा भक्त दु:खों से घबराकर संतों की सेवा और भक्ति का मार्ग नहीं छोड़ता। इसी लिये तुलसी साहिब ने भक्ति को तलवार की धार पर चलना कहा है।

तुलसी साहिब ने घट रामायण में चार प्रकार के वैराग्य, तीन प्रकार के योग, तीन प्रकार के ज्ञान और तेरह प्रकार की भक्ति का उल्लेख करते हुए शब्द के अभ्यास को सबसे श्रेष्ठ भक्ति स्वीकार किया है:

चारौ बैरागा जोग समाधा। तीनि ज्ञान गति गाइ दई॥
नौ चारौ भक्ती जो निज उक्ती। भाषि भेद सब गाइ कही॥[7]

भक्ति पदारथ सार, यह नर जग जाने नहीं॥
जग के बिषम बिकार, सो सब समझे साँच करि॥[8]

भक्ति का महत्त्व समझाते हुए तुलसी साहिब कहते हैं कि प्रभुप्राप्ति के लिये जीव को सबसे पहले यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि इंद्रियों के भोग और विषय-विकार ही उसे संसार के साथ बाँधकर रखने का मूल कारण हैं। साथ ही साथ उसे इस बात की भी समझ होनी चाहिये कि जप-तप, पूजा-पाठ, पुण्य-दान, तीर्थ-व्रत, हठमार्ग, ज्ञानमार्ग, त्यागमार्ग आदि प्रभुप्राप्ति के सच्चे साधन नहीं हैं। प्रभुप्राप्ति का सच्चा साधन उसका प्रेम, अंतर्मुख होकर की जानेवाली भक्ति, पूजा या आराधना है। अन्य कोई भी साधन इस प्रेमपूर्ण भाव का स्थान नहीं ले सकता।

विरह

तुलसी साहिब कहते हैं कि सतगुरु की शरण में जाकर ही जीवात्मा को एहसास होता है कि वह तो अपने प्रभुरूपी प्रियतम से युगों-युगों से बिछुड़ी हुई है और उसके वियोग में भटकती हुई अनेक प्रकार के दु:ख भोग रही है। उसे परमसुख प्रभु के मिलाप से ही मिल सकता है। ऐसे में जीवात्मा में विरह जाग्रत हो जाता है और वह विरह में व्याकुल होने लगती है। इस विरह का वर्णन तुलसी साहिब की वाणी में इस प्रकार है:

मैं सतगुर की दासी, अमरपुर के री निवासी॥ टेक॥
मोरे पिया ने मोहिं पीहर पठाई, बहुत दिवस रही पासी॥
अब मोहिं नैहर नीक न लागे, निस दिन रहूँ री उदासी॥
मात पिता भैया भौजाई, परी री प्रेम की फाँसी॥
माया मोह जाल बिध बाँधी, बसी पास बुध नासी॥
अब चित चैन मोर नहिं पावे, बसूँ जाय पिया पासी॥
कहार भेज करि डोलिया पठावो, आऊँ दीपक चढ़ि चासी॥
तुलसीदास पिया बिन प्यारी, ब्याकुल बिरह अबिनासी॥[9]

इस प्रसंग में तुलसी साहिब ने कुछ महत्त्वपूर्ण रहस्य उजागर किये हैं:

- मेरे प्रियतम परमेश्वर ने मुझे इस मृत्युलोक में भेजा था। मैं बहुत समय से इस देश में रह रही हूँ।
- जब से मुझे प्रभुरूपी प्रियतम के साथ अपने रिश्ते के बारे में पता चला है और अपने निज धाम की जानकारी मिली है, मुझे यह देश अच्छा नहीं लगता और मैं प्रियतम के साथ मिलाप के लिये बहुत व्याकुल हूँ।
- जब से मेरे अंदर प्रियतम की याद समा गई है, मुझे मायारूपी संसार, सगे-संबंधियों तथा शक्लों और पदार्थों का मोह बंधन के समान प्रतीत होने लगे हैं।
- प्रियतम के साथ मिलाप के लिये मैंने सतगुरु की शरण ली है। वह अमरपुर अर्थात् मेरे प्रियतम के अविनाशी धाम से आये हैं और वही मुझे वहाँ वापस लेकर जा सकते हैं।
- अपने प्रियतम के बिना मेरे लिये इस देश में रह पाना असंभव हो गया है। मेरे प्रियतम ने मेरी व्यथा को देखकर स्वयं ही मेरा सतगुरु के साथ मिलाप करवा दिया है और उसने मेरे मार्ग को शब्द की ज्योति से रोशन कर दिया है, ताकि मैं उसकी सहायता से प्रेमपूर्वक प्रियतम के घर अर्थात् निज धाम वापस पहुँच जाऊँ।

तुलसी साहिब ने जीवात्मा की विरहावस्था का जो चित्र दर्शाया है उसमें प्रभु-प्रियतम के साथ मिलाप के लिये तड़प स्पष्ट दिखाई देती है:

सखी मोहिं नींद न आवै री। एरी बैरन बिरह जगावै॥ टेक॥
सूनी सेज पिया बिन ब्याकुल। पीर सतावै री॥
रैन न चैन दिवस दुख ब्यापै। जग नहिं भावै री॥
तड़फत बदन बिना सुख साइयाँ। सब जरि जावै री॥
बिषधर लहर डसै नागिन सी। ज्यौं जस खावै री॥

देवै मौत दई बिरहन को। होते मरि जावै री॥
कैफ बिना तुलसी तन सूखै। जिय तरसावै री॥[10]

वह कहते हैं: हे सखी! प्रियतम से जुदाई का दर्द मुझे पल भर के लिये भी सोने नहीं देता। प्रियतम के बिना यह सेज, मेरी व्याकुलता को, मेरे दर्द को और अधिक बढ़ा देती है। मुझे यह संसार अच्छा नहीं लगता। मुझे न दिन में चैन है, न रात में। प्रियतम के मिलाप के बिना मैं ऐसे तड़प रही हूँ, जैसे मुझे अग्नि जला रही हो। मुझे ऐसे लगता है जैसे विषैले साँप ने मुझे डस लिया हो और हृदय को तीर ने बेध दिया हो। ऐसे जीवन से तो मृत्यु भली है; इससे तो आग में जलकर राख हो जाना ही बेहतर है। जिस प्रकार नशा करनेवाला नशे के बिना बेचैन होकर तड़प उठता है, उसी प्रकार मैं प्रियतम के वियोग में तड़प रही हूँ और मेरा हृदय प्रियतम के दीदार के लिये व्याकुल है।

सखि समझि सूर सहूर सुनि कै। बदन बिच सुधि बुधि गई॥
करुँ कवन भवन उपाव बिन बस। नेक मधुकर बस नहीं॥
मिलि पाँच तीनि पचीस निसदिन। गाँठि गुन बन्धन भई॥
भइ बिबस बस नहिं दाँव लागै। दृढ़ निमख नहिं आवही॥
धरि हाथ पटकि पुकारि पिव सँग। हारि जिव सँग हटि रही॥
कहुँ ठौर मोर न जोर चालै। आली बिपति कछु का कही॥[11]

वाणी के इस अंश में भी तुलसी साहिब ने जीव की विरह-व्यथा का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। विरह से व्याकुल आत्मा पुकार उठती है: हे सखी! जब से मुझे प्रियतम से विरह का एहसास हुआ है, मुझे अपनी सुधबुध नहीं रही। मुझे कोई उपाय नहीं सूझता और कुछ भी मेरे बस में नहीं है। मनरूपी भँवरा पल भर के लिये भी वश में नहीं आता। यह मन दिन-रात पाँच विकारों, तीन गुणों और पच्चीस प्रकृतियों के वश में रहता है। जड़ (मन) और चेतन (आत्मा) की गाँठ बँधी हुई है। मैं विवश हूँ, मेरा कोई ज़ोर नहीं चलता और मेरा मन पल भर के लिये भी स्थिर नहीं रहता। मैं विलाप करती हुई दुहाई दे रही हूँ, परंतु प्रियतम का साथ नसीब नहीं होता। मुझे कोई ठिकाना नज़र नहीं आता। मैं पूरी तरह से बेबस हूँ और कुछ समझ नहीं पा रही हूँ कि अपनी पीड़ा किसे और कैसे बताऊँ।

तुलसी साहिब कहते हैं कि अपने प्रियतम की विरह सहन न कर पाने की दशा में जीवात्मा की व्याकुलता बढ़ती ही जाती है:

ब्याकुल बिरह दिवानी, झड़े नित नैनन पानी॥ टेक॥
हरदम पीर पिया की खटके, सुधि बुधि बदन हिरानी॥
होस हवास नहीं कुछ तन में, बेदम जीव भुलानी॥
बहु तरंग चित चेतन नाहीं, मन मुरदे की बानी॥
नाड़ी बैद बिथा नहिं जाने, क्यों औषद दे आनी॥
हिये में दाग जिगर के अन्दर, क्या कहि दरद बखानी॥
सतगुर बैद बिथा पहचानें, बूटी है उनकी जानी॥
तुलसी यह रोग रोगिया बूझे, जिनको पीर पिरानी॥[12]

प्रियतम के वियोग में व्याकुल विरहिणी आत्मा पगली, दीवानी हो जाती है। विरह की वेदना से प्रेम के वश में होकर आँसू बहाती रहती है। उसे अपनी सुधबुध नहीं रहती। वह मुर्दे की तरह बेजान हो जाती है। उसके मुँह से बात तक नहीं निकलती। सांसारिक रोगों का इलाज करनेवाले वैद्य के पास हृदय की पीड़ा का इलाज नहीं होता। इस पीड़ा को केवल सतगुरुरूपी राजवैद्य ही जानता है और वही इस रोग के इलाज की संजीवनी बूटी देता है। प्रेम के रोगी की पीड़ा केवल इस रोग से पीड़ित प्रेमी ही जान सकते हैं।

जल बिन मीन स्वाँत बिन पपिहा।
प्यास रटत जस पिया बिन जिया भटके॥
थिर केहि भाँति करूँ पिया के बिना आली॥

नहिं आड़ पकड़ि कहूँ अटके॥
तड़फत प्रान बिकल तन तुलसी॥
भँवर चक्र बिच चित धरि धरि पटके॥[13]

यहाँ कुछ दृष्टांत देकर तुलसी साहिब आत्मा की विरह वेदना का वर्णन कर रहे हैं। वह कहते हैं कि जो हालत पानी से अलग हुई मछली की होती है, जो हालत पपीहे की स्वाति बूँद के बिना होती है, वही दशा प्रभुरूपी प्रियतम से बिछुड़ी प्रेमी जीवात्मा की होती है। वह हमेशा बेचैन रहती है। उसे कहीं कोई सहारा दिखाई नहीं देता। वह तड़पती है, बेचैन रहती है। जिस प्रकार भँवर में फँसा व्यक्ति लहरों के थपेड़ों से इधर-उधर पटका जाता है, उसी प्रकार प्रभुप्रेम के भँवर में फँसी आत्मा विरह की पीड़ा से तड़पती है।

सुनि ज्ञान ध्यान न कान मानै। बिकल तन मन बिचलई॥
तुलसी बिरह बेहाल हिये में। मौत दिन देवै दई॥[14]

कौन बिधि कहा करों री दइया, हियरे उठत हिलोर॥ टेक॥
पिय की पीर नीर मछरी ज्यों, मैं तड़फों बिन तोर॥
तुलसी मौत देवे बिरहन को, जियरा सहे दुख मोर॥[15]

पिया पीर दुख दर्द की, का से करूँ गोहार।
मारि कटारी मरि रहूँ, गहूँ बिपत सिर भार॥[16]

तुलसी साहिब कहते हैं कि वियोग के असहनीय दु:ख से व्याकुल विरहिणी ऐसे दु:खदायक जीवन से मर जाना बेहतर समझती है। विरह से व्याकुल आत्मा प्रभु-प्रियतम से मिलाप न होने के कारण हताश होकर विलाप करती हुई कहती है; ज्ञान-ध्यान की बातों का अब मुझ पर कोई प्रभाव नहीं होता। मेरा तन-मन व्याकुल हो रहा है। विरह ने मेरे हृदय को बेहाल कर दिया है। ऐसे जीवन से तो मौत अच्छी है क्योंकि तुम्हारे बिना मैं मछली की तरह तड़प रही हूँ। विरह के दु:ख को सहन करते-करते मैं

बेहाल हो गई हूँ, अब तो मौत की ही पुकार करने लगी हूँ। मुझे समझ नहीं आ रहा कि मैं अपने प्रियतम के विरह के दु:ख दर्द की गुहार किससे करूँ। अब तो बस एक ही रास्ता नज़र आ रहा है कि मैं कटारी मारकर मौत को गले लगा लूँ।

विरह दु:खदायक प्रतीत होता है, परंतु वास्तव में यह प्रेमी की सबसे बड़ी संपत्ति है। विरह की पीड़ा ही जीवात्मा को जगत और इंद्रियों के भोगों की ओर से उपराम करती है। विरह की यह असहनीय तड़प ही जीवात्मा के अंदर भक्ति भाव उत्पन्न करती है, यही उसे प्रियतम की याद में लीन करती है, यही इसे प्रियतम के नाम के सुमिरन और ध्यान में मग्न होने की प्रेरणा देती है और यही अंत में प्रियतम के साथ जीवात्मा के मिलाप का साधन बन जाती है।

जिन पिय की बिरहा बसै, छिन छिन छीन सरीर।
नैन नीर ढुरि ढुरि बहै, कसकै तन मन पीर॥
प्रेम प्रीति नदिया बहै, सावन भादो मास।
राति दिवस लागी रहूँ, बरसै झड़ि निस बास॥
पिय की पीर पल पल बसै, सूरति अंत न जाइ।
जैसे चंद्र चकोर को, निरखत नाहिं अघाइ॥
गरज घुमर बदरी बहै, चमकै चमचम बीज।
मोर सोर पिउ पिउ करै, तड़फ तड़फ तन छीज॥
धुन सुनि धीर न आवही, पाति लिखूँ पिय पास।
मन सूरत कासिद करूँ, पहुँचै अगम निवास॥
खबर खुसी पिय की सुनूँ, हरखत हिया हित मोर।
तुलसी तलब पिय की लगी, जग तिनका अस तोर॥[17]

जिस आत्मारूपी प्रेमिका के हृदय में प्रभुरूपी प्रियतम का प्रेम बस जाता है, उसे उसकी जुदाई की पीड़ा हर पल व्याकुल करती रहती है। उसकी आँखों से सावन-भादों की वर्षा की तरह लगातार आँसुओं की

झड़ी लगी रहती है। जिस प्रकार चकोर अपना ध्यान पल भर के लिये भी चाँद से नहीं हटाना चाहता, उसी तरह विरहिणी पल भर के लिये भी प्रियतम के ध्यान के बिना नहीं रहना चाहती। बादल गर्जते हैं, बिजली चमकती है और मोर ख़ुशी से नाचता हुआ गाता है, यह सब देखकर प्रेमिका का मन प्रियतम की ओर खिंचा चला जाता है और वह प्रियतम के वियोग में तड़पने लगती है। उसे अंदर शब्द की ध्वनि सुनाई देती है, जिससे प्रियतम के साथ मिलाप की चाहत और अधिक प्रबल हो जाती है और वह मन और ध्यान को क़ासिद यानी संदेशवाहक बनाती है और प्रियतम को संदेश भेजती है कि मैं तुम्हारे अगम-धाम पहुँचने के लिये तरस रही हूँ। यदि उसे प्रियतम के आगमन का प्रसन्नता भरा संदेश मिल जाये तो उसका हृदय खुशी से भर जाता है। उसने सांसारिक संबंधों का मोह त्याग दिया है। अब उसके अंदर केवल प्रभुरूपी प्रियतम के मिलाप की चाहत रह गई है।

प्रभु मिलाप का सुख

विरह से व्याकुल आत्मा अपने प्रभुरूपी प्रियतम से मिलाप करके अनंत आनंद में लीन हो जाती है। इसी आनंदमय दृश्य का तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में इस प्रकार चित्रण किया है:

अली अलबेली नार पार पिया पै चली।
सुन्दर कींन्ह सिंगार सार स्रुति से मिली॥
चढ़ी महल पर धाय राह रबि कोट है।
जैसे प्रीत चकोर चंद चित चोट है॥
अधर अटारी माहिं लगन पिया से लगी।
जैसे डोर पतंग संग रँग में पगी॥
देखि पिया को रूप भूप कोइ ना लपै।
ज्यौं भुवंग मणि भाव भूमि भूमी दिपै॥
तेज पुंज पिया देस भेष कहो को लखै।

ऐसा अगम अनूप जाय कहो को सकै॥
मैं पिया की बलिहार प्यार मोहि से कियौ।
दीन्ह पलँग सुख साज काज रहषौ हियौ॥
जाऊँ नित नित सैल केल पति से करौं।
जिन की तिन को लाज काज पति से सरौ॥
तुलसी कहै बिचार सार सब से कही।
बिन सतगुर नहिं पार भिन्न कैसे भई॥[18]

इस प्रसंग में तुलसी साहिब ने प्रेम के रंग में रँगी आत्मा का मृत्युलोक से परमेश्वर के निज धाम वापस जाने का वर्णन किया है। पति की प्रिय अलबेली नारी प्रेम और भक्ति का शृंगार करके प्रियतम के महल की ओर ऊपर की तरफ़ बढ़ रही है। उसके मार्ग में शब्द के सूर्य का अनंत प्रकाश है। जिस प्रकार चकोर पल भर के लिये भी चाँद से ध्यान हटाना नहीं चाहता और पतंग डोर के सहारे आकाश में ऊपर की ओर उड़ती जाती है, आत्मा भी निरंतर प्रियतम का ध्यान करती हुई प्रेम और लगन से अंतर के आकाश में रहनेवाले प्रियतम के महल की तरफ़ तेज़ी से बढ़ती चली जाती है। आकाश में रहनेवाले प्रियतम के सामने राजा-महाराजाओं का तेज भी फीका पड़ जाता है। जिस प्रकार साँप के सिर पर मणि चमकती है, इसी प्रकार आंतरिक मंडल अनंत प्रकाश से जगमगा रहे हैं। वह प्रियतम प्रकाशरूप है और उसके निज धाम का अनुपम प्रकाश अवर्णनीय है। वह प्यारा प्रियतम और उसका अगम-अथाह धाम इंद्रियों की पहुँच से परे है।

अपने प्रियतम से मिल चुकी सुहागिन को उसकी संगति में अनंत आनंद की प्राप्ति होती है। जिन की तिन को लाज काज पति से सरौ॥—जिस प्रेमरूप और आनंदरूप पति की वह नारी है, उसके हुक्म से ही उससे बिछुड़ी हुई है और केवल उसकी दया से ही पुन: उससे मिलाप कर सकती है। बिन सतगुर नहिं पार भिन्न कैसे भई॥ पूरे गुरु के मिलाप के बिना जीवात्मा न तो परमात्मा से वियोग का कारण समझ सकती है और न ही उससे मिलाप का परम आनंद प्राप्त कर सकती है।

गुरु-शिष्य का संबंध

गुरु अपनी शरण में आये जीव को शब्द के साथ जुड़ने की युक्ति सिखाता है और दीक्षा, यानी नामदान के समय उसकी सुरत को अंदर शब्द के साथ जोड़ भी देता है। शिष्य उस शब्द से कभी अलग नहीं होता। यदि कोई पूरा गुरु आज एक शिष्य को उपदेश देकर कल शरीर त्याग भी देता है तो भी शब्द कभी शिष्य की सुरत का साथ नहीं छोड़ता। वह धीरे-धीरे उसके कर्मों की मलिनता साफ़ करके, उसे प्रभु के साथ अभेद कर देता है।

तुलसी साहिब ने शिष्य और सतगुरु के संबंध को कीट और भृंगी के संबंध द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है:

भृङ्ग दी गति गहो रे बंदे॥ टेक॥
कीन्ही कीट कर्म से कीड़ा, भृङ्गी नाम सुनाया वे।
सरवन सब्द नाद जब निरखा, अपना रूप बनाया वे॥
यहि बिधि संत अंत मत मारग, अन्दर अधर मिलाया।
सादर सुर्त मरत को तजि के, भज भव भर्म छुड़ाया॥[1]

तुलसी साहिब भृंगी के उदाहरण द्वारा समझाते हैं: मेरे प्यारे! तू भृंगी की अवस्था को समझने का प्रयत्न कर। वह अपनी सामर्थ्य द्वारा साधारण कीट को अपने शब्द की तान सुनाकर अपना ही रूप बना लेता है। उसी प्रकार संत-सतगुरु साधारण जीव की सुरत को शब्द के साथ जोड़कर अपना ही रूप बना लेते हैं। वह शिष्य की सुरत को शब्द के साथ जोड़कर आंतरिक मंडलों में ले जाते हैं, जिससे शिष्य माया के भ्रमजाल और भवसागर से मुक्त हो जाता है।

गुरु की शरण

गुरु की शरण में जाकर शिष्य की अवस्था में परिवर्तन हो जाता है, तुलसी साहिब उदाहरण द्वारा इस अवस्था का वर्णन इस प्रकार करते हैं:

तजो अरंड बास बसो चंदन, बंधन करम कराल॥
जैसे कुधात साथ पारसै, कंचन होत निहाल॥
यहि बिधि दारू लार सँग लोहा, बूड़े न सतसँग चाल॥
अस गुरु सबद सुरत सिष मारग, लखि भये अगम अकाल॥[2]

वह प्यार से समझाते हुए कहते हैं: मेरे प्यारे! एरंड के बजाय सुगंध से भरे चंदन से जुड़ो। जिस प्रकार लोहा पारस के स्पर्श से सोना बन जाता है, उसी प्रकार शब्द के स्पर्श से तुम्हारी सुरत की अवस्था पूरी तरह बदल जायेगी। जैसे लकड़ी की संगति पाकर लोहा तर जाता है, उसी प्रकार शब्द से जुड़कर जीव भवसागर पार कर जाता है।

संतों के मार्ग में गुरु और शिष्य का संबंध सांसारिक संबंधों से पूरी तरह अलग है। गुरु और शिष्य का वास्तविक संबंध भी उस समय बनता है, जब शिष्य आंतरिक अभ्यास करके सुरत को शब्द के साथ जोड़ देता है, शिष्य को सतगुरु की सच्ची शरण भी उसी समय प्राप्त होती है। इस बात को आप इस प्रकार समझाते हैं:

गुरु चेला का बूझौ लेखा। सो गुरु का मैं कहौं बिबेका॥
जगत गुरू नहिं संत पुकारा। सतगुरु भेद जगत से न्यारा॥
जो कोइ चढ़ै गगन को धावै। सो सतगुरु के सरनै आवै॥[3]

तुलसी साहिब ने इस तथ्य पर बार-बार बल दिया है कि शिष्य का गुरु के साथ वास्तविक संबंध सुरत को शब्द के साथ जोड़ने पर ही शुरू होता है। इसके साथ ही आप यह भी समझाते हैं कि देह न तो शिष्य है और न ही गुरु है। शिष्य का वास्तविक स्वरूप सुरत है और गुरु का वास्तविक स्वरूप शब्द है। देहधारी शब्द का उद्देश्य शिष्य की सुरत को

अंदर 'शब्द गुरु' को सौंपना है। सुरत संपूर्ण आंतरिक यात्रा शब्दरूपी गुरु की सहायता और मार्गदर्शन में पूरी करती है। तुलसी साहिब की वाणी है:

गुरु है सब्द सुरति है चेला। चीन्है गुरु चेला सोइ मेला॥
वे गुरु स्वामी अगम अपारा। पिंड ब्रह्मंड दोऊ से न्यारा॥
ता के रूप रेख नहिं काया। वे गुरु मिलैं तो मुक्ति लखाया॥[4]

न शिष्य की देह शिष्य है और न ही गुरु की देह गुरु है। असली शिष्य सुरत है और उसके अंदर कार्यशील शब्द गुरु है। शब्दरूपी गुरु रंग-रूप, आकार तथा पिंड और ब्रह्मांड दोनों से परे है। सुरत के शब्द से मिलाप के पश्चात ही शिष्य और गुरु का वास्तविक संबंध शुरू होता है और इस मिलाप द्वारा ही शिष्य का परमात्मा से मिलाप होता है।

तुलसी संत सुरत सब गावें, सबद गुरू सिष सुरत पुकारे।[5]

आप कहते हैं कि केवल मैंने ही नहीं, सभी पूर्ण संतों ने सुरत को शिष्य और शब्द को गुरु कहा है।

तुलसी साहिब शिष्य द्वारा सतगुरु की शरण ग्रहण करने का रहस्य बताते हुए कहते हैं: वर्तमान अवस्था में आत्मा, शरीर के स्तर पर कार्यशील है, इसलिये इसे देहधारी गुरु की आवश्यकता है। देहधारी गुरु का वास्तविक उद्देश्य देहधारी आत्मा को अंदर शब्दरूपी गुरु के साथ जोड़ना होता है और आत्मा को सतलोक पहुँचाने का कार्य शिष्य के अंदर कार्यशील शब्द करता है:

सूरति सब्द समझ घट माहीं। पूछौ सोइ सतगुरु से राही॥
सब्द गुरू सूरति जब पावै। चढ़ि चढ़ि गगन गुमठ पर आवै॥
गगना गुमठ फोड़ि असमाना। सूरति चढ़ि सब्दा गुरु जाना॥
सार सब्द गुरु सुरति समानी। अस कबीर गुरु सिष्य पिछानी॥
गुरु सिष भया अगम गम चेला। सो साधू सतगुरु का चेला॥[6]

तुलसी साहिब फ़रमाते हैं: सुरत भी अंदर है और शब्द भी अंदर है लेकिन सुरत और शब्द के मिलाप की युक्ति सतगुरु से प्राप्त होती है। जब सुरत आंतरिक आकाश को चीरकर त्रिकुटी को पार कर जाती है तो इसका सार शब्द के साथ मिलाप हो जाता है। सुरत का सार शब्द में लीन हो जाना ही, शिष्य और गुरु का वास्तविक मिलाप है। यही शिष्य और गुरु के संबंध की परम अवस्था है। त्रिकुटी को पार करके सार शब्द के साथ लिव जोड़नेवाले साधक को ही सच्चे अर्थों में सतगुरु का शिष्य कहा जा सकता है।

नीचे उद्धृत किये गये वाणी के अंश में तुलसी साहिब विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि कैसे सतगुरु आंतरिक मंडलों में शिष्य की सहायता करता है:

सखि संत सतगुरु बरनि बरनौ। भाखि समझि सुनावही॥
गुरु चारि तन अस्थान अलि सुनि। समझि भेद लखावही॥
सखि प्रथम गुरु सुनि कँवल कंजा। सहस दल पल पावही॥
सखि दूसर गुरु गढ़ गगन ऊपर। कँवल दुइदल गावही॥
अलि तीनि गुरु तन माहिं पेखौ। चौकँवल सुति लावही॥
सतलोक चौथे चार सतगुरु। अगम सिंध कहावही॥
जहँ सुरति सब्द मिलाप सजनी। संत वोहि घर जावही॥[7]

वह कहते हैं: हे सखी! शब्दरूपी गुरु चार रूपों में सुरतरूपी शिष्य की सहायता और अगुआई करता है। सबसे पहले शब्दरूपी गुरु रूहानी मंडल सहस्रदल कमल में सुरतरूपी शिष्य को अपने में समाकर उसे ऊपर की ओर ले जाता है। दूसरे रूप में गुरु त्रिकुटी में सुरतरूपी शिष्य की सहायता करता है। तीसरे रूप में गुरु पारब्रह्म यानी सुन्न मंडल में सुरत को अपने में लीन करके उसे ऊपर की ओर ले जाता है। सतगुरु का चौथा रूप चौथे लोक सतलोक में हिलोरें ले रहा शब्द का अगम-अथाह सागर है। वहाँ पहुँचकर सुरत शब्द के समुद्र में समाकर उसका रूप हो जाती है।

करनी का महत्त्व

परमार्थ में सफलता के लिये शिष्य को दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ती है। सबसे पहले उसे ऐसी आदतों, वृत्तियों और कर्मों का त्याग करना पड़ता है, जो रूहानी तरक़्क़ी के मार्ग में बाधा डालते हैं। दूसरी ओर उत्साह, प्रेम और विश्वास के साथ प्रतिदिन नियमपूर्वक सतगुरु द्वारा बताये गये रूहानी अभ्यास को अधिक से अधिक समय देना पड़ता है।

तुलसी साहिब ने परमार्थ के साधक को एक योद्धा कहा है। योद्धा युद्ध में विजय प्राप्त करना चाहता है। उसके सामने दुश्मनों की पूरी सेना मुक़ाबले के लिये तैयार खड़ी होती है। उसे दुश्मनों के सभी अस्त्र-शस्त्रों से बचाव की युक्ति का पता होना चाहिये। इस युक्ति को सीखने के लिये सतगुरु की शरण में जाना ज़रूरी है। सतगुरु शिष्य को यह युक्ति बता देते हैं और कालरूपी शत्रु का क़िला जीतने की प्रेरणा भी देते हैं:

कायागढ़ काल किलो री, माया डर डारि मिलो री॥ टेक॥
पाँच पचीस मुकद्दम या में, लै समसेर चढ़ो री।
करि नर खेत दया सतगुर की, धुर की कुमक पिलो री।
फतेह रन हट न हिलो री॥[8]

आप साधक का उत्साह बढ़ाते हुए कहते हैं: मेरे प्यारे! यह शरीर कालरूपी दुश्मन द्वारा बनाया गया क़िला है। इसमें माया का पहरा है। पाँच तत्त्व और पच्चीस प्रकृतियाँ रास्ता रोककर खड़ी हैं। तू सतगुरु की दया का आसरा लेकर शब्द की तलवार हाथ में पकड़ और इन सबका नाश करता हुआ क़िले के शिखर पर पहुँच जा। जब तक क़िले पर विजय प्राप्त करके तू धुरधाम नहीं पहुँच जाता, युद्ध में डटा रह और पीछे नहीं मुड़ना। तुलसी साहिब अपनी बात को दूसरे ढंग से समझाते हुए कहते हैं:

मन को पकड़ि जकड़ि सब संङ्गी, राज बिबेक कराई।
सील को सहर दया की दुनियाँ, सत संतोष दुहाई॥

पाँच प्रधान पचीस प्रपंची, तीन को मारि भगाई।
लै की लगन लगी मन राजा, सूरति सरन समाई॥
सूरति साज सजी सत द्वारे, गगन में तार तनाई।
लागी लहर सैर तुलसी को, सब्द में सुरति समाई॥[9]

साधक अपने उद्देश्य की प्राप्ति कैसे कर सकता है? तुलसी साहिब ने उसकी युक्ति बताई है: तू मन और उसके सभी साथियों को पकड़कर क़ैद कर ले यानी इंद्रियों को वश में कर ले। इस प्रकार तुझे निर्मल विवेक की प्राप्ति हो जायेगी। फिर तेरे अंदर विषय-विकारों के स्थान पर संयम, सत्य, संतोष आदि सदगुण उत्पन्न हो जायेंगे। फिर तू पाँच तत्त्वों, पच्चीस प्रकृतियों और तीन गुणों को मार भगाने में सफल हो जायेगा। तेरा ध्यान अंदर स्थिर हो जायेगा और मनरूपी राजा तेरा हुक्म मानने लगेगा। फिर तेरी सुरत की डोरी अंदर गगन में जुड़ जायेगी और तुझे शब्द की तान सुनाई देने लगेगी। इस प्रकार सुरतरूपी बूँद शब्द की लहर में समाकर शब्द के स्रोत सतलोक में वापस पहुँच जायेगी।

जो अपना मन मूल न माने। तो सतगुरु के चरन पिछाने॥
मन बस नाहिं चरन नहिं जाने। यों सब जग यह भाड़ भुँजाने॥
सतगुरु साखि सबै मिलि गावे। अपने हिरदे साँचि जो आवे॥[10]

वह आगे फ़रमाते हैं: शिष्य को चाहिये कि मनमत का त्याग करके दृढ़तापूर्वक सतगुरु की शरण में रहे। जिसका मन वश में नहीं है तथा हृदय में सतगुरु के चरणों का प्रेम और विश्वास नहीं है, उसका जीवन संसाररूपी भट्ठी में झुलस रहा है। जिनके हृदय में सत्य समा जाता है, वे मिलकर सतगुरु के उपदेश की महिमा करते हैं। आप सावधान करते हुए कहते हैं: *आज काज करि होय अकाजा। फिर नहिं यहि नर तन को साजा॥*[11]—सतगुरु में प्रेम और विश्वास रखते हुए जल्दी से जल्दी प्रभुभक्ति का कार्य पूरा कर लेना चाहिये, क्योंकि मनुष्य-जन्म का सुनहरी अवसर बार-बार नहीं मिलता। सतगुरु का अपने शिष्य के लिये एकमात्र यही संदेश है।

भक्ति के अन्य साधन

तुलसी साहिब समझाते हैं कि काल और माया ने जीवों को रचना के साथ बाँधकर रखने के लिये पूजा-भक्ति के अनेक बाहरमुखी साधन जैसे जप-तप, पूजा-पाठ, पुण्य-दान, तीर्थ-व्रत, मूर्तिपूजा, हठयोग, ज्ञान, ध्यान, त्याग आदि प्रचलित किये हुए हैं। *सब तिरथ बरत अचार अलि री। कर्म बस बन्धन भई॥*[1]—जीव को इन पर भलीभाँति विचार कर लेना चाहिये कि तीर्थ-व्रत आदि बाहरमुखी साधन जीव की मुक्ति का साधन नहीं हैं बल्कि उसके बंधन का कारण हैं।

तुलसी साहिब समझाते हैं शब्द (नाम) द्वारा ही सृष्टि का सृजन हुआ है और यही शक्ति सृष्टि में आये जीव को मुक्त करके प्रभु के साथ मिलाप करवाती है। जीवात्मा को शब्द के साथ जोड़ने का साधन परमात्मा द्वारा ही बनाया गया है। यह एकमात्र साधन अनादि, सबके लिये एक समान और अपरिवर्तनशील है। अन्य सभी साधन मनुष्य द्वारा अपने मन के अधीन होकर बनाये गये हैं। इन साधनों द्वारा कभी किसी भी हालत में परमात्मा के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता:

तप जप जोग करे बहुतेरे, कोट जतन नहिं पावे सुगत है॥
नाम बिना नर पचि पचि हारे, सतसँग में मन मगन रुचत है॥[2]

यह अटल सत्य है कि सतगुरु की संगति के बिना मूल तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती और न ही आवागमन से छुटकारा मिल सकता है। लेकिन अज्ञानतावश जीव ऐसे साधनों को अपना लेते हैं, जो उन्हें सच्चे मार्ग से

भटका देते हैं। तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में जीव को इन साधनों के प्रति सावधान किया है।

तीर्थ-व्रत

तीर्थों और व्रत-उपवास के भ्रम में पड़े हुए जीव को समझाते हुए तुलसी साहिब कहते हैं:

तीरथ बरत नेम बिधि पाला, आस खानि फल डाला हो।
नर तन भटक भटक भटभेरा, बाँधा न भौजल बेड़ा हो॥
तन सराय छूटत छिन माहीं, सेमरि सुवा पछिताई हो।
तुलसीदास चेत नर अंधा, परखि लखौ दुख दंदा हो॥[3]

वह फ़रमाते हैं कि तीर्थ-व्रत आदि जो भी धर्मकर्म विधिपूर्वक किये जाते हैं, उन सबका फल भोगने के लिये जीव चार खानियों और चौरासी लाख योनियों से बँधा रहता है। जैसे तोता सेमल के फल में चोंच मारता है तो उसकी चोंच उसके रेशों में फँस जाती है और इतनी मेहनत के बावजूद उसे कुछ हासिल नहीं होता, सिर्फ़ पछतावा ही हाथ लगता है। उसी प्रकार अज्ञानी जीव अनेक योनियों में भटकने के बाद मिले इस अनमोल मनुष्य-जन्म को बाहरमुखी कर्मों में व्यर्थ गँवा लेता है।

देखो री जग हटक न माने॥ टेक॥
तीरथ तीर तरन मन मुकती, मग अँग धोवत पानी।
जाना न जनम खोय जल पाहन, पूजत भटक भुलाने॥
करि असनान मगन मन मंदर, मूरत मरम अजाने।
धरि धरि लात सिला बटि गढ़ि के, धरि मंदर झटक पुराने॥
छप्पन भोग भाव जेहि कारन, दुनियाँ देव बखाने।
पिवत न खात हाथ मुख में कोइ, खात न निकट दिखाने॥

घंट बजाय अँगूठा बतायो, खायो प्रसाद पुजारी।
सेव करी पर भेव न कोई, झूठे लखि हटक न आने॥
चेतन चीन्ह यकीन अनाड़ी, आतम अंग समाने।
बोलत बदन चीन्ह कर तन में, तुलसी लखि लटक पिछाने॥[4]

अज्ञानतावश बाहरमुखी साधनों में फँसे हुए जीवों को चेताने का प्रयास करते हुए तुलसी साहिब कहते हैं कि कई लोग तीर्थों पर स्नान और मूर्तियों की पूजा को मुक्ति और प्रभु के साथ मिलाप का साधन समझते हैं। पूर्ण संतों ने तीर्थों के स्नान को शरीर की सफ़ाई का साधन तो माना है, परंतु मुक्ति यानी प्रभुप्राप्ति का नहीं। तुलसी साहिब दु:ख प्रकट करते हुए कहते हैं कि सांसारिक लोगों को लाख समझा लो, परंतु वे एक नहीं सुनते। वे मुक्ति की प्राप्ति के लिये तीर्थों पर स्नान करके और पत्थर की बनी मूर्तियों की पूजा करके बहुत प्रसन्न होते हैं और वे प्रभु की सच्ची भक्ति का रहस्य समझने का प्रयत्न नहीं करते। तुलसी साहिब जीव को चेताते हुए कह रहे हैं: हे अज्ञानी जीव! तू ध्यान को जड़ की पूजा से हटाकर अंदर बैठे चेतन की भक्ति में लगा। तू अंदर उसके साथ ध्यान को जोड़। वह तेरे साथ बातें भी करेगा और तेरी भक्ति को स्वीकार भी करेगा।

लोग अंतर में मौजूद विष्णु अर्थात् परमात्मा की भक्ति करने के बजाय बाहरी तीर्थस्थानों पर भ्रमण आदि को ही भक्ति मान लेते हैं। ऐसे लोगों के विषय में तुलसी साहिब कहते हैं:

सतोगुन बिष्णु तिन के माईं। तेहि को छाँड़ि पाहन मन लाई॥
चार धाम तीरथ को धावै। बिष्णु पास खोज नहिं पावै॥
पूजै जग खैराती खावै। करम भोगि फिर भव में आवै॥
संत मते की राह न जानै। बिष्णु पूजि जगत सब मानै॥[5]

सतोगुण से विष्णु की उत्पति हुई है जो कि वास्तव में अंदर है। लोग बाहर पत्थरों की पूजा या चारों धामों की यात्रा और तीर्थस्नान को ही

भक्ति मान लेते हैं। इन बाहरमुखी क्रियाओं से तो विष्णु की भी प्राप्ति नहीं हो सकती। लोग चढ़ावे में मिला भोजन खाते हैं, जिस कारण वे कर्मों का फल भोगने के लिये चौरासी के चक्कर से बँधे रहते हैं। संतों के मार्ग की समझ न होने के कारण वे आवागमन के जाल में बँधे रहते हैं।

हालाँकि तीर्थ-व्रत, पूजा-पाठ का फल अवश्य मिलता है, परंतु उस फल को पाने के लिये फिर इसी जगत में लौटना पड़ता है और निजघर की प्राप्ति नहीं हो पाती।

पानी पाहन देव पुजावे। ऐसे ले जिव को भटकावे॥
तीरथ बरत बँधावे आसा। काल कला जीवन को फाँसा॥
मुए मुक्ति फलदायक भाखा। अस गावे बेदन की साखा॥
आसा बंध होय फलदाई। जहँ आसा तहँ बास कराई॥
चेतन इष्ट दृष्टि से तोड़ी। तन मन प्रीति जड़न से जोड़ी॥
यों भवसागर भरा अथाही। अपने घर की राह न पाई॥

॥ सोरठा ॥

भर्म रहा संसार, सार भेद पाये बिना।
सुभ और असुभ कराय, काल चक्र भरमत रहे॥[6]

काल और माया ने संसार को तीर्थों के स्नान, व्रत, मूर्तियों की पूजा आदि बाहरमुखी साधनों के भ्रम में डाला हुआ है। उन्होंने लोगों को ग्रंथ-शास्त्रों के पाठ-विचार में उलझाकर इस भ्रम में फँसा दिया है कि मृत्यु के बाद मुक्ति मिल जायेगी। अज्ञानी जीव यह सोचने का प्रयत्न ही नहीं करते कि परमार्थ में *'जहाँ आसा तहाँ बासा'* का नियम लागू है और जो जिस इष्ट की पूजा करता है, मृत्यु के बाद उसके पास ही पहुँच जाता है।

चेतन मूरति मन भगवाना। पूजै जड़ जड़ माहिं समाना॥[7]—तुलसी साहिब दु:ख प्रकट करते हुए कहते हैं कि काल ने चेतन जीव को जड़ पदार्थों की भक्ति में लगाकर चेतन परमात्मा की भक्ति से दूर कर दिया है। लोग चेतन प्रभु के साथ प्रेम करने के बजाय जड़ पदार्थों के मोह

में फँसे हुए हैं। यही कारण है कि उन्हें निजघर वापस जाने के मार्ग का ज्ञान नहीं होता और वे भवसागर में ही गोते खाते रहते हैं। संसार के लोग काल द्वारा चलाये गये पाप और पुण्य के चक्कर से बँधे हुए हैं। लोग यह समझने का प्रयत्न नहीं करते कि इस प्रकार के कर्म मुक्ति का साधन नहीं हो सकते, ये तो बंधन का ही कारण हैं।

तुलसी साहिब कहते हैं कि संत-महात्माओं के उपदेश के अनुसार अपनी विवेक-बुद्धि का प्रयोग करना चाहिये, तभी असली तीर्थस्थान के रहस्य की जानकारी मिल सकती है:

अलि अधर धार निहारि निज कै। निकरि सिखर चढ़ावही॥
जहँ गगन गंगा सुरति जमुना। जतन धार बहावही॥
जहँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि। धुर गुरू गति गावही॥
जहँ संत आस बिलास बेनी। बिमल अजब अन्हावही॥[8]

तुलसी साहिब जीवात्मा को आंतरिक रहस्य समझाते हुए कहते हैं: यदि तीर्थस्नान करना ही है तो आंतरिक सच्चे तीर्थ में स्नान करो। तेरे अंदर आकाश में गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है। तेरे अंदर ही वह त्रिवेणी, संगम, प्रयाग या मानसरोवर है, जहाँ स्नान करने पर मन की सभी मलिनताएँ उतर जाती हैं, उसमें स्नान करके ही तू पूरी तरह निर्मल हो जायेगी।

धर्मग्रंथों का पाठ

जो लोग ग्रंथ-शास्त्रों का लगातार पाठ करते रहे, उनमें सुधार तो नहीं हुआ बल्कि वे अभिमान का शिकार हो गये, ऐसे लोगों की अवस्था को स्पष्ट करते हुए तुलसी साहिब फ़रमाते हैं:

पोथी पढ़ने में लगे, चढ़ा ज्ञान का मान।
सभा माहिं मोटे भये, गुन के संग गुमान॥[9]

ग्रंथों के पाठ-विचार से जीव को अपनी वर्तमान अवस्था का ज्ञान होना चाहिये था और अपनी निर्बलता, अपने अवगुणों को देखकर मन में नम्रता पैदा होनी चाहिये थी। लेकिन होता इसके विपरीत है। उसे इस बात का अहंकार हो जाता है कि मैं इतने ग्रंथों का ज्ञाता हूँ। मन में अहंकार पैदा होने के कारण कोई लाभ नहीं होता बल्कि उसका नुकसान हो जाता है।

गुपल गुसाईं खोज न कीन्हा। सब्द भेद का सार न चीन्हा॥
बुधि मति हीन सूझ नहिं आई। गावत गावत जनम बिताई॥[10]

अर्थात् लोग सारा जन्म ग्रंथों के पाठ में लगा देते हैं, परंतु ध्यान को शब्द या नाम के साथ जोड़कर अंदर से परमात्मा की खोज करने का यत्न नहीं करते। केवल ग्रंथों को पढ़ने तक ही सीमित रहने के कारण वे समय को व्यर्थ गँवा देते हैं और कुछ भी हाथ नहीं आता।

काग पढ़ाया पींजरे, पढ़ गया चारो बेद।
अंदर की छूटी नहीं, रहा ढेढ़ का ढेढ़॥[11]

बेशक काग को पिंजरे में डालकर चारों वेद पढ़ा दो, उसकी आंतरिक दशा नहीं बदलती और वह काग का काग ही रहता है। उसी प्रकार केवल ग्रंथ-शास्त्रों के पठन-पाठन से ही मन और आत्मा की हालत में सुधार नहीं होता।

ब्रह्म ज्ञान ज्ञानी करि थाके। उनहूँ मन थिर करि नहिं राखे॥
बाच ज्ञान कहि ब्रह्म बतावें। पढ़ बेदांत बचन समझावें॥[12]

वाचक ज्ञानी वेदों शास्त्रों के आधार पर ब्रह्म की बातें तो ज़रूर करते हैं, परंतु उन्होंने मन को स्थिर करके अंदर जाकर ब्रह्म के दर्शन नहीं किये होते। उनका ज्ञान थोथा ज्ञान है जो ग्रंथ-शास्त्रों को पढ़कर हासिल किया गया है और जिसका आधार निजी अनुभव नहीं है।

साखी सब्दी ग्रन्थ बनाई। गुप्तै बस्तु नकल में गाई॥
नकल बस्तु ग्रंथन में जानौ। साखी सब्द नकल करि मानौ॥
या में खोजि खोज नहिं पावै। सतगुरु मिलै तो भेद बतावै॥[13]

तुलसी साहिब ग्रंथों का असली उद्देश्य समझाते हुए कहते हैं कि संत-महात्माओं ने जीव के अंतर में मौजूद अनमोल सार पदार्थ को प्राप्त करने की प्रेरणा देने के लिये ग्रंथों की रचना की है और बाहरी वस्तुओं का दृष्टांत देकर उस गुप्त रहस्य को समझाने की कोशिश की है। परंतु जीव केवल ग्रंथों में उसकी खोज करने में लगा हुआ है, जहाँ उसे वह सार पदार्थ नहीं मिल पाता। जो जीव सतगुरु की शरण में जाता है सतगुरु उस जीव को सार वस्तु प्राप्त करने का रहस्य बताते हैं।

तुलसी साहिब की वाणी के अध्ययन के बाद यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि संत-महात्मा धर्मग्रंथों का विरोध नहीं करते। वे तो इस बात पर बल देते हैं कि धर्मग्रंथों को पढ़ने का वास्तविक लाभ तभी होगा, अगर हम उस उपदेश पर अमल करेंगे।

योग साधना

तुलसी साहिब ने परमात्मा की प्राप्ति के लिये योग के साधनों को भी अधूरा बताया है:

जड़ चेतन की गाँठ न छूटी। जोगी पवन चढ़ावें झूँठी॥
दीप नगर सूरत रहि बाँधी। सो बिन सुरत पवन को साधी॥
मन थिर रहे न स्रुत बिन डोरी। यह मन थिर बिन सुरत बहोरी॥
काया करम बन्ध बस आया। यों नहिं पाये देस अकाया॥
गाँठ खुले पर ब्रह्म निहारे। मन जब थिर ह्वै सुरत सम्हारे॥
छूट सुरत जब मन थिर पावे। जब जोगी मन पवन चढ़ावे॥
सन्त दया बिन सुरत न छूटे। जोगी पकड़ पकड़ जम लूटे॥
सुरत संध संतन के पासा। संत संध से करे खुलासा॥[14]

तुलसी साहिब फ़रमा रहे हैं कि योगी प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, प्राणायाम द्वारा चिदाकाश तक तो पहुँचा जा सकता है, परंतु इससे जड़ और चेतन अर्थात् मन और आत्मा की गाँठ नहीं खुल सकती। योगियों को इस बात का पूरा ज्ञान नहीं है कि आत्मा की शक्ति के बिना यह अभ्यास संभव नहीं है। जब तक मन स्थिर नहीं होता, सुरत भी स्थिर नहीं हो सकती और जब तक जीव कर्म और फल के दायरे में है, वह निराकार मंडल में नहीं पहुँच सकता और जब मन अपने उद्गम स्थान में समा जाता है तब आत्मा उसके पंजे से आज़ाद हो जाती है यानी जड़ और चेतन की गाँठ खुलने पर ही आत्मा अंदर ब्रह्मलोक या काल के देश को पार कर सकती है। इसलिये सच्चा योग प्राणों को नहीं, बल्कि मन को क़ाबू करने में है। संतों की दया के बिना मन वश में नहीं आ सकता और न ही कभी सुरत यमों के जाल से मुक्त हो सकती है। सुरत को शब्द के साथ जोड़ने का भेद केवल संत ही दे सकते हैं।

जोगी जोग ध्यान रस भूला। स्वाँसा संघ कीन्ह अनुकूला॥
मुद्रा पाँच तुरी मत झूला। ये पुनि ज्ञान जोग मत फूला॥
इंद्री बस रस कीन्हौ धूला। वोऊ न पायौ सार रस मूला॥[15]

तुलसी साहिब स्पष्ट करते हैं कि योगी प्राणायाम और योग की मुद्राओं – भूचरी, खेचरी, चाचरी, अगोचरी और उनमनी – द्वारा ध्यान को अंदर स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं ताकि तुरीय अवस्था प्राप्त हो सके। उनका सारा प्रयास इंद्रियों को वश में करने पर होता है। वे योग की कठिन क्रियाओं में जुटे हुए उसी को उपलब्धि मान लेते हैं, परंतु सुरत-शब्द के मिलाप से मिलनेवाले अलौकिक रस के आनंद से वंचित रह जाते हैं।

स्वयं को परमहंस कहनेवाले योगी शब्द यानी नाद की महिमा करते हैं, परंतु सुन्न मंडल के पार से आनेवाले सार शब्द का ज्ञान न होने के कारण परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं।[16]

संन्यासी 'अहं ब्रह्मास्मि' – 'मैं ब्रह्म हूँ' का राग अलापते रहते हैं परंतु उन्हें जड़ और चेतन यानी मन और आत्मा की गाँठ खोलने की युक्ति का

ज्ञान नहीं होता। आत्मा परमात्मा का रूप तभी बन सकती है, जब संतों के उपदेशानुसार इसे इंद्रियों और मन से अलग करके सुन्न मंडल से पार अगम घर से आ रहे शब्द में लीन कर दिया जाता है।[17]

तुलसी साहिब बाहरमुखी साधनों में विश्वास करनेवाले लोगों की अवस्था के बारे में खोलकर वर्णन करते हैं:

जैसे चलनी चून छनावे। चून सार गिरि चूकर पावे॥
यहि बिधि ज्ञान गहे जग सारा। तत्त बस्तु कोइ नाहिं बिचारा॥
ज्ञान मान की बड़ी मोटाई। भक्ति गरीबी कोइ न पाई॥
संत चरन यासे नहिं भावे। क्योंकर हिरदे साँच समावे॥[18]

वह बताते हैं कि बाहरी साधनों को अपनानेवाले लोगों की हालत उस व्यक्ति की तरह है, जो आटे का चोकर सँभालकर रख रहा है और आटा फेंक रहा है। लोग बाहरी ज्ञान की बातों में मस्त हैं, कोई भी अंदर से सार तत्त्व को प्राप्त करने का यत्न नहीं करता। लोग बाहरमुखी ज्ञान के अहंकार में फूले नहीं समाते, इसी लिये वे भक्ति द्वारा मन में उत्पन्न होनेवाली नम्रता से विहीन रह जाते हैं। वे अपने ज्ञान के अहंकार में संतों की शरण में जाने के लिये तैयार ही नहीं होते, फिर भला उनका अपने अंदर प्रभुरूपी सत्य से मिलाप कैसे हो सकता है?

तुलसी साहिब समझाते हैं कि अलग-अलग पंथों से संबंध रखनेवाले लोग उन पंथों के वास्तविक उपदेश को भलीभाँति समझने का प्रयत्न नहीं करते हैं। आप समझाते हैं:

सूरति मिलै सब्द में जाई। ये सब संतन पंथ बताई॥
सुरति पंथ नहिं खोजा भाई। जाति पंथ का बोझ उठाई॥[19]

संत मते को रीति न जानैं। कहै जा को पुनि एक न मानैं॥
कैसे होय जीव निरवारा। या में बढ़ि गया जाल पसारा॥[20]

सतगुरु भेद अगम दरसावैं। तब चढ़ि जाइ अगमपुर पावैं॥[21]

सभी संतों ने सुरत को शब्द के साथ जोड़ने का उपदेश दिया है, परंतु लोग उनके द्वारा बताये सुरत-शब्द के मार्ग पर चलकर अंतर में परमात्मा की खोज नहीं करते, बल्कि अपने-अपने संप्रदाय में प्रचलित परंपराओं के अनुसार ही भक्ति करते हैं। लाख बार समझाने पर भी ऐसे लोगों पर कोई असर नहीं होता। फिर उनका उद्धार कैसे हो सकता है? जीव का उद्धार ग्रंथ-शास्त्रों के पाठ-विचार द्वारा नहीं, बल्कि सतगुरु की सहायता से सुरत को शब्द के साथ जोड़ने पर ही हो सकता है।

गृहस्थी का त्याग

घर-गृहस्थी का त्याग कर देने के बारे में तुलसी साहिब कहते हैं कि हिंदू धर्म में चार आश्रम माने गये हैं: ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। कुछ साधुजन उपदेश देते हैं कि ब्रह्मचर्य और गृहस्थ धर्म पूरा हो जाने पर घर-गृहस्थी का त्याग करके त्यागी, संन्यासी बनकर जंगलों-पर्वतों में रहना चाहिये। योगमत, बौद्ध धर्म और जैन धर्म में भी मुक्ति की प्राप्ति के लिये घर-गृहस्थी के त्याग पर ही बल दिया जाता है। पूर्ण संतों ने प्रभु की भक्ति और प्रभु की प्राप्ति को हमारी मनोवृत्ति पर ही आधारित माना है, गृहस्थ या त्याग पर नहीं। संतजन समझाते हैं कि जो व्यक्ति घर-गृहस्थी के सभी कर्तव्य पूरे करता हुआ संसार से उपराम या निर्लिप्त रहता है; वह विरक्त, त्यागी या योगी है। इसके विपरीत जो व्यक्ति घर-परिवार का त्याग करके जंगलों या पर्वतों में चला जाता है, परंतु उसके हृदय में इस मायारूपी संसार की इच्छाएँ और तृष्णाएँ भरी हुई हैं, वह निपट भोगी है।

तुलसी साहिब की वाणी में से नीचे कुछ अंश उद्धृत किये गये हैं जिनमें तुलसी साहिब सच्चे वैराग्य और असली त्याग के विषय को स्पष्ट करते हैं:

तप संजम उपवास बताई। जो त्यागै सो पावै भाई॥
तप कर राज मिलै पुनि जाई। राज भोग पुनि नर्क समाई॥

कष्टै फल पावै पुनि भोगा। परै चारि गति उपजै सोगा॥
इंद्री दवन उपास कराई। बार बार भौसागर आई॥[22]

वह कहते हैं कि त्यागी, त्याग पर बल देते हैं। कोई व्यक्ति इस जन्म में जिस वस्तु का त्याग करता है, वह अगले जन्म में उसे कई गुणा होकर मिलती है, क्योंकि प्रकृति सभी दबी हुई और अधूरी इच्छाओं को पूरा करती है। कहावत है: तपो राज, राजो नरक। तपी और त्यागी को अगला जन्म राजा का मिल जाता है। राजा के रूप में जीव फिर से इंद्रियों के भोगों में लिप्त हो जाता है, जिस कारण उसे नरकों में जाना पड़ता है और बार बार इस भवसागर में दु:ख उठाने के लिये आना पड़ता है।

जग पंडित और भेष भेद जोगी नहिं जानै।
जग इंद्री रस भोग जोग इंद्री नहिं मानै॥
संग्रह त्यागन झूँठ सकल यह मन को खेला।
अरे हाँ रे तुलसी संग्रह त्यागन कर्म भर्म दोउ फिर फिर पेला॥[23]

अर्थात् पंडित, योगी और अनेक प्रकार के अन्य भेषधारी यह रहस्य नहीं समझ सके हैं कि माया को इकट्ठा करने या इसे त्यागने पर बल देना, यह सब मन का खेल है। ये दोनों ही कर्म अज्ञानतापूर्ण हैं, जो जीव को आवागमन के चक्कर से बाँधकर रखते हैं।

बेरक्ती बैराग सुनाऊँ। ता कर चिन्ह भिन्न बतलाऊँ॥
माया मोह जगत नहिं भावै। काम रु क्रोध लोभ नहिं लावै॥
और जगत सँग रहै उदासी। जग संसार करत सब हाँसी॥
त्यागी अति संतोष समावा। भूख प्यास निद्रा न सतावा॥
और अनेक भाँति रस त्यागी। बन बसि रहै नाम अनुरागी॥
बिन सतगुरू धूरि सब जाना। संत सुरति बिन भरमै खाना॥[24]

वैरागी लोग भी माया का मोह, विषय-विकार आदि त्यागकर संसार से निर्लिप्त रहते हैं। वे संतोष को धारण करके, भूख, प्यास, नींद, संसार की स्तुति-निंदा आदि से ऊपर उठकर वन में रहकर प्रभु की भक्ति करते हैं। लेकिन संत-सतगुरु की शरण ग्रहण किये बिना वे प्रभुप्राप्ति के उद्देश्य में असफल हो जाते हैं। उन्हें इस संसार में भटकने के लिये बार-बार आना पड़ता है।

प्रियेलाल अस बूझ बिचारा। संग्रह त्यागन झूठ पसारा॥
सतगुरु सूरति संध लखावै। तजि सब बंध जीव घर आवै॥[25]

आप प्रियेलाल नामक एक शिष्य को समझाते हुए फ़रमाते हैं: गृहस्थ हो या त्यागी, हर कोई सतगुरु द्वारा समझाई गई युक्ति के अनुसार सुरत को अंदर अकालपुरुष के साथ जोड़कर ही इस मायारूपी संसार के सब बंधन तोड़कर परमात्मा से मिलाप कर सकता है।

त्यागन संग्रह सन्त न जाना। ये मन कर्म भर्म भरमाना॥
त्यागन करै सोई पुनि पावै। फिरि फिरि भोग भाव जग आवै॥
संग्रह बंधन जगत बँधाना। ये दोउ भर्म भेद जग माना॥
संत मता दोऊ से न्यारा। संग्रह त्यागन झूठ पसारा॥
संतन सुरति निरति ठहराई। मन थिर करि करि गगन चढ़ाई॥
सूरति सूर बीर भइ द्वारे। नभ भीतर चढ़ि गगन निहारै॥
सुरति सुहागिन सूर सिधारी। नित नित गगन गिरा से न्यारी॥[26]

पूर्ण संत न तो माया एकत्रित करने का उपदेश देते हैं, न इसका त्याग करने का। त्याग और संग्रह दोनों ही जीव को अज्ञानता के अंधकार में भटकाते रहते हैं। जो जीव जिन वस्तुओं का त्याग करता है, वह उन्हें भोगने के लिये फिर से जन्म लेता है। त्यागी और भोगी दोनों ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये संसार के साथ बँधे रहते हैं। पूर्ण संत ध्यान को अंदर स्थिर करके शब्द के साथ जोड़ने का उपदेश देते हैं। इस तरह

मन निश्चल हो जाता है और सुरत अंदर गगन मंडल अर्थात् त्रिकुटी को पार कर जाती है। शब्द के अभ्यास द्वारा सुरत शूरवीर बन जाती है, यह निरंतर ऊँचे मंडलों में चढ़ाई करती हुई अपने प्रियतम परमेश्वर से मिलाप करके सच्ची सुहागिन बन जाती है।

तुलसी साहिब कहते हैं कि परमात्मा की भक्ति और उसकी प्राप्ति का संबंध मन और सुरत के साथ है, घर-गृहस्थी के त्याग से नहीं, उन्होंने संतमत की इस मान्यता को स्थापित किया है कि आशा-तृष्णा से छुटकारा पाने और प्रभुप्राप्ति के लिये घर-गृहस्थी छोड़कर जंगलों या पहाड़ों में जा बसना उचित नहीं:

नहिं मन तन बिरह बैराग, तमा त्यागे बिना॥ टेक॥
जग परिवार कुटँब को तजि के, बैठे बन में भाग।
मन की कहर लहर नहिं छूटी, अंदर में रही लाग॥
रमक रीत मारग को बूझै, जब उपजै अनुराग।
सहज भाव से जो कुछ आवै, क्या रूखी क्या साग॥
भोजन भाव सहज की भिच्छा, नहिं कोइ से कुछ माँग।
भीतर तमक रमक नहिं उनके, को लख पावै थाग॥
जग से रहै उदासी बासी, मोह माया निरदाग।
मन में मगन लगन सतगुर की, आठ पहर लौ लाग॥
तुलसी तरक फरक आलम से, जग सोवत वे जाग।
सब संसार सुप्न सम बिनसहि, बुझी रे तपन की आग॥[27]

तथाकथित त्यागी कहने को तो घर-परिवार का त्याग करके जंगलों में निवास करते हैं, परंतु न तो उनके अंदर से माया का मोह दूर होता है और न ही मन के अंदर पल-पल उठ रहीं इच्छाओं और तृष्णाओं की तरंगें शांत होती हैं। प्रभुप्राप्ति के मार्ग की समझ केवल उसी को होती है, जिसके अंदर उस प्रभु के लिये सच्चा प्रेम जाग्रत हो जाता है। वह व्यक्ति

सहज अवस्था में पहुँच जाता है। उसे जैसा भी खाने को मिल जाये वह खा लेता है। वह प्रेम के भोजन और सहज भाव की भिक्षा पर ही निर्वाह करता है और अपनी ज़रूरतों के लिये कभी किसी के सामने कुछ माँगने के लिये हाथ नहीं फैलाता। उसके साथ कोई जैसा भी व्यवहार करे, न तो उसे क्रोध आता है और न ही वह दुःख या सुख महसूस करता है। वह संसार में रहता हुआ उससे निर्लिप्त रहता है और उसके मन पर मोह, माया की मैल नहीं चढ़ती। उसका मन सदैव अंतर में मग्न रहता है। उसके हृदय में सतगुरु का प्रेम समाया होता है और ध्यान हमेशा अंतर में लगा रहता है। उसकी रहनी और वृत्ति सांसारिक लोगों से निराली होती है। सारा संसार अज्ञानता की नींद में सोया होता है, परंतु वह सदैव सचेत होकर प्रभु के प्रेम और उसकी भक्ति में जाग रहा होता है। उसे संसार स्वप्न के समान झूठा और नाशवान प्रतीत होता है। उसकी आशा-तृष्णा की अग्नि शांत हो जाती है और मन पूरी तरह निश्चल होकर पूर्ण रूप से आनंदित हो जाता है।

तुलसी साहिब स्पष्ट संदेश देते हैं कि प्रभुप्राप्ति के लिये बाहरमुखी साधन कारगर सिद्ध नहीं हो सकते। सतगुरु के उपदेशानुसार भक्ति करने से ही परमात्मा से मिलाप हो सकता है:

मन थिर होय न कोट उपाई। संत कृपा थिर सुरत लखाई॥
बिना संत नहिं अंत थिरावे। कोटिन जोग समाध लगावे॥ ...
ब्रह्म गती कोइ साधन पाई। सूरत चढ़ दस द्वारे आई॥[28]

चाहे कोई कितने भी साधन क्यों न अपना ले, संतों की कृपा के बिना मन स्थिर नहीं होता और मन के स्थिर हुए बिना अंदर सुरत की आंतरिक उन्नति नहीं हो सकती। पूर्ण ब्रह्मज्ञानी की अवस्था उस विरले साधु को ही प्राप्त होती है, जो सुरत को शब्द के साथ जोड़कर ब्रह्म मंडल को पार करके दसवें द्वार यानी पारब्रह्म के देश में पहुँच जाता है।

चमत्कार

तुलसी साहिब साधक को सावधान करते हैं कि सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से जो रूहानी तरक़्क़ी और आंतरिक उपलब्धियाँ होती हैं, उसे अपने अंदर ही हज़म करना चाहिये। यही साधक का रूहानी ख़ज़ाना है। जो साधक अपनी रूहानी दौलत को करामात दिखाने में बरबाद कर देते हैं, उनकी आंतरिक उन्नति रुक जाती है।

घट रामायण का संपादक लिखता है: सुरत बिलास नामक पुस्तक में तुलसी साहिब द्वारा किये गये अनेक चमत्कारों का उल्लेख मिलता है, जिनके बारे में ऐसा माना जाता है कि ये चमत्कार उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रा के दौरान किये थे। इन चमत्कारों में रोगियों का रोग दूर कर देना, मुर्दों को ज़िंदा कर देना, अंधों को आँखें दे देना, निर्धन को धन से मालामाल कर देना और बाँझ स्त्री को संतान बख़्श देना आदि शामिल हैं। लोग संत-महात्माओं की महिमा का बखान करने के लिये अकसर ऐसी कहानियाँ बना लेते हैं। संत सर्वसमर्थ होने के बावजूद कभी सिद्धियों का प्रयोग नहीं करते। वे अपनी ऊँची अवस्था को हमेशा छिपाकर रखते हैं।* संतों की वास्तविक करामात लोगों को माया के कुष्ठ रोग से मुक्त करना है, कोई और करामात करना संत उचित नहीं समझते। दुनिया की मोह-माया में फँसे तथा परमात्मा से विमुख हुए लोगों को, दुनिया की ओर से अचेत करके परमात्मा के प्रति सचेत करना ही संतों की असली करामात है। एक श्रद्धालु ने तुलसी साहिब से किसी सांसारिक वस्तु की

* *घट रामायण*, पृ. 2

माँग की तो तुलसी साहिब ने प्रेम से कहा कि मैं तो पिता को पुत्र के मोह से और धनवान को धन के मोह से मुक्त करने में ही विश्वास रखता हूँ।

कहे तुलसी हिरदे सुनि लीजे। करामात में करनी छीजे॥
जग संसार आँखि अँधियारी। करामात लगे सबको प्यारी॥
सिध सिद्धी करिके बतलावे। करामात में जक्त रिझावे॥
सिध कछु कीन्ह चुटकला भाई। बड़े जानि सब सीस नवाई॥
सिद्धी करि करि जनम बिगारा। मुक्ति न गये चौरासी धारा॥
जग रिझाय के आप बिगाड़े। बंधन बँधे काल के गाढ़े॥

॥ दोहा ॥

सिध सवाल अपना करे, करनी केर बिगाड़।
कर्म भाड़ में भुँजि मुए, पड़े खानि की खाड़॥[1]

तुलसी साहिब चेतावनी देते हैं कि करामातें करने से घोर तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त हुई शक्ति का नाश हो जाता है और साधक की तरक़्क़ी रुक जाती है। अज्ञानता के शिकार लोगों को करामातें प्यारी लगती हैं। लोग सिद्धों की करामातें देखकर उनके आगे शीश झुकाते हैं और उनकी वाह-वाही करते हैं, परंतु करामातें करनेवाले अपना अनमोल जन्म व्यर्थ गँवा देते हैं। उन्हें मुक्ति की प्राप्ति तो क्या होगी, वे चौरासी के चक्कर में ही फँस जाते हैं और काल उन्हें अपने जाल से बाँध लेता है। इस तरह वे अपने कर्मों की आग में जलते रहते हैं और निचली योनियों की गहरी खाई में गिर जाते हैं।

तुलसी साहिब ने *रत्न सागर* में सिद्धियों और करामातों के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की है। एक साधु अपने शिष्य को समझाता है कि सिद्धियों का प्रभाव थोड़े समय के लिये रहता है, ये स्थायी और वास्तविक नहीं होतीं। ये मुक्ति का नहीं, बल्कि बंधन का कारण होती हैं।

चेला को गुरु यों समझावा। सिद्धी आहि कृतृम परभावा॥
सिद्धी से कछु मुक्ति न होई। सिद्धी संत कृतृम कहें सोई॥

ज्यों बाजीगर आम लगावे। परतछ अमिया आम देखावे॥
चमड़े का करि साँप चलावे। सो सब के देखन में आवे।
डमरू को जो जानि बजावे। सब संसार तमासे आवे॥
कौड़ी माँग उन खेल उठाया। डमरू बट्टे झोली नाया॥
सरप चाम का चालै भइया। अमिया आम कछू नहि रहिया॥
कौड़ी कौड़ी माँगि दुकाना। यों सिद्धी है कृतृम समाना॥

॥ सोरठा ॥

ज्यों बाजी का खेल, झूँठ पसारा कृतृम का।
जब वो लेत समेट, सुपने सम जिमि खेल यह॥[2]

गुरु शिष्य को समझाता है कि सिद्धियाँ बाज़ीगर के तमाशे की तरह आँखों का भ्रम होती हैं। जब बाज़ीगर अपना डमरू बजाता है तो सब लोग उसका तमाशा देखने के लिये आ जाते हैं। वह पल भर में आम उगा देता है, जो बिलकुल वास्तविक प्रतीत होते हैं। उसका चमड़े का बना साँप दौड़ता हुआ प्रतीत होता है। जब बाज़ीगर तमाशा बंद कर देता है तो न आम रहते हैं, न साँप। यदि बाज़ीगर में वास्तव में शक्ति होती तो वह लोगों के आगे एक-एक पैसे के लिये हाथ क्यों पसारता? अज्ञानी जीव को सिद्धियाँ उसी प्रकार सत्य प्रतीत होती हैं जैसे कि स्वप्न सत्य प्रतीत होता है। जब आँख खुलती है तो पता चलता है कि स्वप्न की कोई वास्तविकता नहीं थी। उसी प्रकार जब अंदर जाकर आत्मा को प्रत्यक्ष रूहानी अनुभव प्राप्त होता है तो सिद्धियाँ आँखों का भ्रम और असत्य प्रतीत होती हैं। तुलसी साहिब के वचन सुनकर जिज्ञासु हिरदे पूछता है:

सिध बिगाड़ जग का सुख पाया। पुत्र कलित्र और धन माया॥
यह माया मोह बंधन लीन्हा। अंत मुक्ति का काज न कीन्हा॥
माया मोह बहुत दुखदाई। यह सिद्धन से सिद्धी पाई॥
सिद्धी ले बहु फाँस फँसाना। जन्म मरन नहिं लगा ठिकाना॥

यह लइ आस बास तन छूटा। चौरासी जम धरि धरि लूटा॥
यह भी भये नर्क गति गामी। जग सुख में क्या लीन्हा स्वामी॥[3]

हिरदे तुलसी साहिब के सामने आश्चर्य प्रकट करता है कि सिद्धों ने जप-तप द्वारा अंदर शक्ति तो उत्पन्न कर ली, परंतु उस मायानगरी की शक्लों और पदार्थों के लिये उस शक्ति को नष्ट कर दिया। उन्होंने मुक्ति प्राप्त करने के बजाय अपने गले में आवागमन का फँदा डाल दिया। मन की अधूरी इच्छाओं की पूर्ति के लिये, उन्हें बार-बार संसार में जन्म लेकर यमों के दु:ख सहने पड़े। यही नहीं, अपने कर्मों के कारण, उन्हें नरकों में भी जाना पड़ा। फिर भला ये सिद्धियाँ, सुख और मुक्ति का साधन बनी या दु:ख और बंधन का कारण सिद्ध हुईं?

हिरदे की जिज्ञासा को शांत करते हुए तुलसी साहिब ने सिद्धों द्वारा की गई अनेक करामातों का वर्णन किया है, आख़िरकार उन सिद्धों का ऐसे पूर्ण पुरुष से मिलाप हो जाता है जो उन्हें दिव्य दृष्टि बख़्श देता है। ऐनक औ दुरबीन लगाई।[4]—सतगुरु की बख़्शी हुई यह दिव्य दृष्टि बहुत नज़दीक का देखने के लिये ऐनक और बहुत दूर का देखने के लिये दूरबीन की तरह है जिससे उन्हें इस संसार और आंतरिक आत्मिक जगत का सच्चा ज्ञान हो जाता है और सिद्धियों के व्यर्थ होने का एहसास भी हो जाता है। आप कहते हैं: सिध सिद्धी संसार भुलाना। महरम भया मझब जब जाना॥[5] जब सिद्धों को अंदर पहुँचकर सच्चाई का पता चला तो उन्हें सच्चे धर्म की समझ आ गई। वे इस मायारूपी जगत और सिद्धियों के प्रभाव से ऊपर उठकर प्रभु की सच्ची पूजा-भक्ति में लीन हो गये।

तुलसी साहिब ने सिद्धों के साथ हुए वार्तालाप के माध्यम से सभी साधकों को यह संदेश दिया है कि तप-साधना से जीव को सिद्धियाँ तो प्राप्त हो जाती हैं, परंतु जीव का लक्ष्य तो परमात्मा को हासिल करना है, न कि सिद्धियाँ को। जो जीव इन सिद्धियों के चक्कर में फँस जाता है, वह प्रभुप्राप्ति के मार्ग से भटक जाता है। जो जीव सिद्धियों को अपने अंदर ही नियंत्रण में रखता है, उसका प्रभुप्राप्ति का मार्ग ज्ञान के प्रकाश से भर जाता है।

जीव की अवस्था

समय का प्रवाह चक्र के समान है। समय के चक्र को चार युगों – सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग – में बाँटा गया है। सबसे लंबी अवधि सतयुग की मानी जाती है और सबसे छोटी अवधि कलियुग की मानी जाती है। इसी आधार पर सतयुग में जीवों की आयु अधिक लंबी होती है और कलियुग में छोटी। इसी प्रकार युगों के व्यतीत होने के साथ-साथ अन्य गुण भी क्षीण होते गये। कहा जाता है कि सतयुग में धर्म के चार पैर क़ायम थे, त्रेता में तीन और द्वापर में दो ही रह गये। कलियुग में केवल एक पैर या एक कला ही शेष रह गई है। ज्यों-ज्यों युग बदलता है, त्यों-त्यों जीव की अवस्था भी बदलती जाती है। तुलसी साहिब ने युग परिवर्तन के साथ जीव की बदलती अवस्था का अपनी वाणी में बड़ा सटीक वर्णन किया है।

युगों का प्रभाव

आप सतयुग के विषय में कहते हैं:

अब सुनु याको कान लगाई। प्रथम कहूँ सतजुग गति गाई॥
जब लछमी प्रभुता बिस्तारी। माया सुख कीन्हा अधिकारी॥
उमर बहुत कल्पन की कीन्हा। जोधा जोर अधिक लखि लीन्हा॥
कंचन भूमि पिरथिवी कीन्ही। मट्टी मीठ लगे जस चीनी॥
एक कमावे घर दस खावे। खेती में सौगुन उपजावे॥
द्रब्य अपार अपूरब भारी। जग माया कीन्हा बिस्तारी॥
हीरा रतन जवाहिर सोई। कलसे रतन महल के जोई॥

इन बातन सतजुग है भारी। माया छलन किया बिस्तारी॥
इन आसा में जीव जुड़ावे। बंधन ले आसा फिरि आवे॥
ऐसे जक्त बाँधि बिस्तारा। जीव सुखी माया अधिकारा॥[1]

सतयुग में लक्ष्मी यानी धन-दौलत का प्रबल प्रसार था। लोगों की आयु बहुत लंबी थी और वे बहुत शूरवीर थे। धरती सोने के समान थी, मिट्टी चीनी की तरह मीठी थी। खेती में बीज सौ गुणा फलता था। एक कमाई करता था और दस लोग बैठकर खाते थे। रुपये-पैसे, धन-दौलत का कोई अंत नहीं था। महल-बँगले, हीरे-जवाहरात और मोतियों से जड़े हुए थे अर्थात् माया का प्रसार प्रबल था और उसने सब लोगों को अपने भ्रमजाल में फँसाया हुआ था। उस युग में लोग अपने को सुखी समझते थे।

इन बातन सतजुग बढ़ गाया। पिया मिलन नहिं जीव बताया॥
यासे सतजुग छोट बतावे। पिया मिलन की राह न पावे॥[2]

इन बातों के आधार पर सतयुग का समय उत्तम था, परंतु जीव को परमात्मा के साथ मिलाप के मार्ग का ज्ञान सुलभ नहीं था, इसलिये इस दृष्टि से इसे श्रेष्ठ नहीं कहा गया है।

तुलसी साहिब ने द्वापर और त्रेता में जीव की बदली हुई दशा का अपनी वाणी में वर्णन किया है:

त्रेता द्वापर कृतृम देखा। मार कूट रस रीति बिसेखा॥
यामें नाहिं जीव को काजा। ये जुग में भूमी भये राजा॥[3]

द्वापर त्रेता का यह लेखा। ये जुग में औतार बिसेखा॥
मारि निसाचर जग के माहीं। यह लीला उन ने दरसाई॥
जीव जेहि घर से चलि आया। वहि घर राह नाहिं दरसाया॥
मार कूट संग्राम सुनाया। आतम हत जिव मारन गाया॥
संत दयाल दया अर्थावें। जीव हतन की राह छुड़ावें॥
अज्ञानी को ज्ञान बतावें। दे उपदेस दया उपजावें॥[4]

त्रेता और द्वापर में इंद्रियों के भोगों का ज़ोर था और लड़ाई-झगड़े, आपसी वैर-विरोध और युद्ध आदि का बोलबाला था। लोगों का ध्यान राजपाट या यश प्राप्त करने की ओर था, आत्मा के उद्धार की ओर नहीं था। इन युगों में अवतारों ने जन्म लिया। उन्होंने राक्षसों और बुरे कर्म करनेवाले जीवों का नाश किया और युद्धों में दुष्टों को मार गिराया। इस प्रकार उन्होंने मनुष्य को जीवहत्या के पाप में बुरी तरह उलझा दिया, परंतु उसे प्रभु के परमधाम वापस जाने का मार्ग नहीं दिखाया। पूर्ण संतों का मार्ग इसके उलट है। वे पापियों के नाश के लिये नहीं, उद्धार के लिये आते हैं। वे मनुष्य को जीवहत्या छोड़ने का उपदेश देते हैं। वे जीवों को कर्मों के जाल में फँसाने के लिये नहीं, इससे मुक्त करने के लिये आते हैं।

हालाँकि कई संत-महात्माओं ने कलियुग का बड़ा भयानक रूप प्रस्तुत किया है जहाँ जीव को अपने उद्धार के लिये कोई राह नज़र नहीं आती, लेकिन तुलसी साहिब की दृष्टि में कलियुग की महिमा अधिक है, क्योंकि इसी युग में जीव का परमात्मा से मिलाप कराने के लिये परमधाम से परमात्मा ख़ुद सतगुरु का रूप धारण करके आते हैं। तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में कलियुग की महिमा इस प्रकार की है:

कलजुग सम नहिं आन जुग, जो नर करे बिस्वास।
नाम डोरि गहि भव तरै, जा मन तुलसीदास॥
कलजुग सम नहिं आन जुग, संत धरें अवतार।
जीव सरन होइ संत के, भवजल उतरै पार॥[5]

आप कहते हैं: तुम मेरी गवाही पर विश्वास करके यह बात समझ लो कि कलियुग सबसे उत्तम युग है, क्योंकि इसमें परमात्मा संत के रूप में देह धारण करके आता है और उसकी दया-मेहर से जीव नाम की डोरी को पकड़कर भवसागर से पार हो जाता है।

हिरदे कलूजुग जोग है, सब सन्त ने ऐसी कही।
लेवें सन्त औतार जेहि जुग, जीव को सुधि बुधि दई॥[6]

कलजुग संत बड़ा ठहरावें। संत उतरि पिय घर से आवें॥
नाम डोरि दे सुरति लखावें। सुरति डोरि जिव पिय घर जावे॥
सब संतन कलु बड़ा बतावा। यामें जीव अपनपौ पावा॥

॥ दोहा ॥

बड़ा कलूजुग सब कहें, संत बचन के माहिं।
रामायन के बाक में, तुलसी कही बनाय॥[7]

संतों ने सारे युगों में से कलियुग को उत्तम माना है, क्योंकि इस युग में ही पूर्ण संत जीवों के उद्धार के लिये धुरधाम से मृत्युलोक में आते हैं। जब जीव संतों की शरण में जाता है, तो संत जीव को दूसरे सभी साधनों से मुक्त करके ध्यान को अंदर नाम के साथ जोड़ने की विधि सिखा देते हैं, जिससे जीव सहज रूप से ही निजघर वापस पहुँच जाता है। आप कहते हैं कि कलियुग में जीव संतों की दया से नाम के अभ्यास द्वारा अपने आत्मस्वरूप की पहचान करके परमात्मा की पहचान करने में सफल हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी *रामचरितमानस* में कलियुग की बहुत महिमा की है।*

दरअसल प्रभु द्वारा बनाये गये प्रत्येक विधान में कोई न कोई रहस्य छिपा है। बाहर से देखने पर काल का प्रवाह विनाशकारी प्रतीत होता है, परंतु वास्तव में यह कल्याणकारी और लाभदायक सिद्ध होता है। इसलिये प्रभु द्वारा रची गई प्रत्येक शक्ति – माया, काल आदि को ठीक प्रकार से समझने की आवश्यकता है।

कलियुग में जीव की दुर्दशा

वर्तमान समय में जैसे-जैसे कलियुग का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे जीव की हालत दयनीय होती जा रही है। जीव के अंदर सांसारिक शक्लों

---

* कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥
श्री रामचरितमानस 7:103 (क)

और पदार्थों का मोह इतना बढ़ता जा रहा है कि उसे परमार्थ की सुधबुध ही नहीं रही है, ऐसे मनमुख जीव की अवस्था का वर्णन तुलसी साहिब अपनी वाणी में करते हुए कहते हैं:

भरे पेट जो खाय अघाई। सोवे सईसाँझ से जाई॥
बैठे गाल फटाका मारे। मनमौजी को नाहिं सम्हारे॥
जन्म जन्म का उरझा सूता। को सुरझाय सके मजबूता॥
करनी करे आप की सोई। की सतगुरु के सरनै होई॥

॥ दोहा ॥

की अपनी करनी करे, की गुरु सरन उबार।
दोनों में कोइ एक नहिं, नाहक फिरत लबार।[8]

जीव की दशा दयनीय है। वह पेट भरकर खाता है और संध्या के समय ही टाँगें पसारकर सो जाता है। वह महफ़िलों में बैठकर ऊँचे-ऊँचे ठहाके लगाकर डींगें हाँकता है, परंतु चंचल मन को वश में करने का प्रयत्न नहीं करता। जीव की हालत दयनीय होती जा रही है। उसके मनरूपी धागे में जन्मों-जन्मों से जो जटिल गाँठें पड़ी हैं, उन्हें खोल पाना बहुत मुश्किल है। जीव के लिये उचित यही था कि या तो मन मारकर करनी पर ज़ोर देता या अपने आप को बिना शर्त सतगुरु को समर्पित कर देता और पूरी तरह सतगुरु के हुक्म का पालन करता। परंतु डींगें हाँकनेवाला यह जीव न तो करनी करने के लिये तैयार है और न ही मनमत त्यागकर सतगुरु की रज़ा में आने के लिये तैयार है, उसका उद्धार कैसे हो सकता है?

हिरस हरकत कीन्हा वासिल। मन बिष सँग जिव किया बेहासिल॥
ऐसे जीव भया हड़काया। ज्यों कूकर हड़ हाड़ चबाया॥
सूखा हाड़ चूसि दिन राते। अपने मुख लोहू नित खाते॥
ऐसा जक्त भया हड़काना। भव रस में घर भूलि भुलाना॥

बिन सतसंग जक्त बौराना। लाभ हानि नहिं मूल पिछाना॥
मूल भूल करि सूल सिहारा। यों ऐसे जिव बाजी हारा॥[9]

तुलसी साहिब यहाँ बड़े बेबाक शब्दों में जीव की दुर्दशा का चित्र खींचते हैं: इच्छा-तृष्णा, लोभ-लालच के लिये पगलाया हुआ जीव, मन के अधीन होकर विषय-विकारों में लिप्त रहता है। कुत्ता जब हड्डी चबाता है तो उसे अपने ही ख़ून का स्वाद आता है। वह समझता है कि उसे यह स्वाद हड्डी में से मिल रहा है। उसी प्रकार अज्ञानी जीव विषय-भोगों के पीछे मारे-मारे फिरते हैं। वे माया के रसों में खोकर निजघर के परम आनंद को भूल जाते हैं। वे संतों के सत्संग में नहीं जाते, इसलिये उन्हें यह बात समझ में नहीं आती कि वास्तव में उनका भला-बुरा किस बात में है। इस प्रकार वे अपने मूल स्रोत उस परमात्मा को भूलकर जीवन की बाज़ी हार जाते हैं।

मनुष्य अपना पूरा जीवन सांसरिक पदार्थों के मोह में उलझकर बिता देता है। जीवन के किसी भी पड़ाव पर उसकी चेतना जाग्रत नहीं होती। तुलसी साहिब जीव की हालत पर अफ़सोस करते हुए कहते हैं:

जन्मत बालपना दुखदाई। सुधि बुधि धान समझ नहिं पाई॥
तरुन रहे तरुनी सँग भोगा। बृद्ध भये तब बाढ़े रोगा॥
ऐसे यह तीनों पन बीता। नेक न जानी साहब रीता॥
अब मरने का सुनो सँदेसा। प्रान गये पर किया अँदेसा॥
अब क्या होवे बात बिचारे। नर बाजी जूवा में हारे॥[10]

जीव का जन्म ही दु:खदायी है; इसका बचपन दुखों में व्यतीत होता है। उस समय इसे अपनी या संसार की कोई सुधबुध नहीं होती। यौवनावस्था में इसका ध्यान युवा स्त्री की ओर जाता है और वृद्धावस्था में अनेक प्रकार के रोग आकर घेर लेते हैं। इस प्रकार बचपन, जवानी और बुढ़ापा तीनों अवस्थाएँ व्यर्थ बीत जाती हैं, लेकिन अज्ञानी जीव कुलमालिक के साथ

मिलाप के बारे में सोचता तक नहीं। जब मृत्यु का संदेश आ जाता है तो उस समय पछताने से कुछ लाभ नहीं होता। मूर्ख प्राणी जीवन की बाज़ी जुए में हारकर संसार से ख़ाली हाथ वापस लौट जाता है।

परिवार के मोहजाल में फँसकर जीव अपना विवेक खो बैठता है और प्रभुभक्ति से ख़ाली रह जाता है। जीव की इसी अवस्था को तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में इस प्रकार दर्शाया है:

त्रियसुत मात पिता परिवारा। यह झूँठे इन बंधन डारा॥
मोह जाल जग रह्यो बँधाई। ममता माया बिपति बसाई॥
यह जम जाल घेरि घुन खाई। जैसे कीट काठ के माहीं॥
घुन घुन खाय काठ को भाई। यों संसय सब जग घुन खाई॥
रात दिवस कोइ चैन न पावे। संसय सुपने जाइ सतावे॥
यह बंधन बिपता ने मारा। कैसे होइ जीव निरबारा॥
जुगन जुगन परिपाटी आई। यों जिव पड़ा भूल के माहीं॥
ज्ञान बिबेक बचन नहिं बूझा। यों भया अंध आँख नहिं सूझा॥[11]

स्त्री, पुत्र, माता-पिता और परिवार की मोह-ममता में लिप्त जीव हमेशा दुखी रहता है। जिस प्रकार लकड़ी का कीड़ा लकड़ी को खा जाता है, उसी प्रकार माया के पदार्थों से मोह जीव के आत्मिक गुणों का नाश करके उसे यमदूतों का ग्रास बना देता है। मायारूप जगत के सत्य प्रतीत होने का भ्रम समस्त संसार को घुन की तरह खा रहा है। भ्रम के शिकार जीव को न दिन में सुख है, न रात को चैन। इस प्रकार जीव युगों-युगों तक भ्रमों में पड़ा रहता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और उसका सच्चे ज्ञान की ओर ध्यान ही नहीं जाता। इस प्रकार उसे अज्ञान के अँधेरे में भटकते हुए कई युग बीत जाते हैं।

ज्यों कूकर हड़काना होई। मारे मार करे सब कोई॥
जो घर को कोइ के पग धारे। दुरदुर करि के मारि निकारे॥

ऐसे जीव भया हड़काया। आवागवन नहिं सुख पाया॥
उपजे मरे बहुरि तन पावे। फिरि फिरि आवागवन समावे॥[12]

जीव की दुर्दशा को बड़े मार्मिक ढंग से बयान करते हुए तुलसी साहिब कह रहे हैं कि जिस प्रकार हलकाया हुआ कुत्ता जहाँ भी जाता है, लोग उसे मारने के लिये दौड़ते हैं, उसी प्रकार कर्मजाल में फँसा हुआ जीव आवागमन में भटकता हुआ दु:ख सहता रहता है। वह बार-बार जन्म लेता है, बार-बार मरता है और हमेशा काल का ग्रास बना रहता है।

ऐसे भटक भटक दुख पावे। चौरासी बंधन में आवे॥
राज रोग रोगी जिमि होई। वाको औषधि लगे न कोई॥
ऐसे रोग रहे संसारा। कोइ औषधि नहिं दर्द सिहारा॥
संत हकीम दवा को देवें। निर्मल अंग आप करि लेवें॥
बिना दाम की दवा बतावें। जीव सुखी करि रोग छुटावें॥
यह कमबखत कहन नहिं माने। भूत भवानी में मन आने॥
करे पिसाच अरु पित्तर पूजा। सतसंग की कछु बात न बूझा॥
कैसे भरम जीव को जावे। मैली बुधि नहि ज्ञान समावे॥[13]

तुलसी साहिब आगे फ़रमाते हैं कि जीव अपने कर्मों का फल भोगने के लिये सदा चौरासी के चक्कर में पड़ा रहता है। जिस प्रकार असाध्य रोग से पीड़ित रोगी पर कोई दवा असर नहीं करती, उसी प्रकार कर्मरोग से पीड़ित जीव की हालत में कोई सुधार नहीं होता और वह हमेशा दुखों की चक्की में पिसता रहता है। संतजन अपार दया करके जीव को कर्मरोग से मुक्त होने की दवाई बिना दाम लिये ही बताते हैं जिसे खाने से जीव कर्मरोग से मुक्त होकर सुखी हो सकता है। परंतु दुर्भाग्यवश जीव उनके उपदेश की तरफ़ ध्यान देने के बजाय भूतों, देवी-देवताओं और पितरों की पूजा में लगा रहता है। वह न तो संतों के सत्संग में जाता है और न ही संतों के वचनों का मर्म समझने का प्रयत्न करता है। उसकी मलिन बुद्धि

पर सच्चे ज्ञान का कोई असर नहीं होता। ऐसे में जीव का भ्रम कैसे दूर हो सकता है!

इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण और विस्मित कर देनेवाली बात और क्या हो सकती है कि *संत दयाल चेत करवावें। सो सत बाक हृदय नहिं लावे॥*[14]—दया की मूरत संत, जीव की हालत पर दया करके उसे अज्ञानता की नींद से जगाने का प्रयत्न करते हैं, परंतु जीव उनके सच्चे उपदेश की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता।

जो कोइ ज्ञान समझ बतलावे। सो हिरदै में नेक न लावे॥
जेहिं चरचा सुख की समझावे। निज देही में नींद सतावे॥
आलस कर आसा ने मारा। कैसे होय जीव निरवारा॥[15]

अज्ञानी जीव को अपने भले-बुरे की समझ ही नहीं है। यदि कोई उसे समझाकर सही मार्ग के बारे में बताने की कोशिश भी करता है तो वह उसकी बात की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देता। जहाँ सच्चे आत्मिक सुख की चर्चा होती है, जीव को नींद आ घेरती है, आलस्य सताता है, माया के प्रभाव से इच्छा-तृष्णाओं और अज्ञानता के शिकार जीव का उद्धार कैसे हो सकता है?

कह कह अंत संत सब हारे, बूझै न सब्द सुधार।
पार की खबर सुनत उठि भागे। लागे जिमि माँगत मोला॥[16]

यह संतन के बाक, आँखि हिये सूझे नहीं।
कहि कहि हारे थाक, जीव कहन माने नहीं॥[17]

तुलसी साहिब कह रहे हैं कि मनुष्य की बुद्धि पर अज्ञानता का ऐसा परदा पड़ा हुआ है कि संत चाहे कितनी भी डौंडी पीट-पीटकर क्यों न समझा लें, परंतु अज्ञानी जीव उनके द्वारा बताये शब्दमार्ग पर चलने के लिये तैयार ही नहीं होता। संत जगत की ओर से ध्यान को हटाकर

परमात्मा के परमधाम की ओर वापस जाने की बात करते हैं, परंतु जीव उनके सत्संग से ही मुँह मोड़ लेते हैं, जैसे कि संत उनसे कोई क़ीमत माँग रहे हों। संत चाहे जितना भी यत्न कर लें, परंतु जीव पर रत्ती भर भी असर नहीं होता।

तुलसी साहिब उन जीवों की अवस्था बयान करते हैं, जो हौंमैं के प्रभाव में हैं:

भूला सब जग आपा माहीं। आप अपनपौ खोजत नाहीं॥
मनमत मान बूझ नहिं आवै। अपना ज्ञान ऊँच ठहरावै॥ ...
तुलसी जग अपने मन माईं ज्ञान स्यान और मान बड़ाई॥
जा से कहूँ ज्ञान बिधि गाई। सो पुनि आन मोहिं समझाई॥
मैं कहुँ एक ज्ञान बिधि भाई। वो पुनि चार मोहिं समझाई॥[18]

सारा संसार आपाभाव या हौंमैं का शिकार है। लोग अपने आप को सबसे अधिक बुद्धिमान समझते हैं, परंतु हौंमैं का त्याग करके अपने निर्मल आत्मिक स्वरूप की पहचान करने की ओर ध्यान नहीं देते। आप दु:ख प्रकट करते हुए कहते हैं कि लोग इस हद तक मान-बड़ाई और अहंकार के वश में हैं कि यदि मैं उन्हें परमार्थ का ज्ञान देने का प्रयत्न भी करता हूँ तो वे मुझे ही समझाना शुरू कर देते हैं। यदि मैं एक बात कहता हूँ तो वे आगे से चार सुना देते हैं।

तुलसी साहिब ऐसे अज्ञानी जीवों की ज़िंदगी को धिक्कारते हुए कहते हैं: *है नेरे सूझे नहीं, लानत ऐसी जिंद। तुलसी इस संसार को, भयो मोतिया बिंद॥*[19]—जैसे मोतियाबिंद के कारण निकट की वस्तुएँ भी दिखाई नहीं देतीं उसी प्रकार अंतर में हमारे सबसे निकट होने पर भी जो उस परमात्मा को नहीं देख पाते ऐसे जीव अक़्ल से अंधे हैं। वे परमात्मा को कैसे पा सकते हैं, परमात्मा तो अंतर में हमारे बिलकुल नज़दीक है, परंतु वे अज्ञानतावश बाहर जगह-जगह उसकी खोज में भटकते रहते हैं। *आप अपनपौ ना लखा, भखा न सिरजनहार। पार बिना भटकत फिरे,*

कस पावे निरधार॥[20]—जो लोग न ख़ुद की पहचान और न ही अपने रचयिता की पहचान की ओर ध्यान देते हैं, वे सदा आवागमन के चक्कर में फँसे रहते हैं।

हालाँकि इस कलियुग में असंख्य जीव अज्ञानता के अँधेरे में भटक रहे हैं, परंतु ऐसे जीवों की भी कमी नहीं है जो परमात्मा की प्राप्ति का सही मार्ग खोजने में प्रयत्नशील हैं। ऐसी जिज्ञासा रखनेवाला जो जीव सतगुरु की शरण में जाकर उनके उपदेश पर अमल करता है, उसकी अवस्था दिन-प्रतिदिन बेहतर होती जाती है। वह परमार्थ के गुणों से भर जाता है। तुलसी साहिब ऐसे गुरुमुख जीव की अवस्था का बयान करते हुए कहते हैं:

उजलि बुद्धि मलीन नसावे। जब मन को सुधताई आवे॥
जग में रहे मरे मन भाई। जग इच्छा सब देइ उड़ाई॥
मुरदा बोल बने मति हीना। जग बिरोध खुस आप अधीना॥
मार मार सब जग गोहरावे। जब लालों की लाली पावे॥
काला मुख मन मौज उड़ावे। जब दयाल की मेहर बसावे॥
उनकी कृपा दृष्टि है न्यारी। वे चाहें जब लेइँ उबारी॥
दीन जानि कोइ सरनै आवे। चरन कँवल चित सुद्ध बसावे॥
चीन्हे बचन संत के जोई। सिर ऊपर धरि लेवे सोई॥
उनको बड़े जानि मन माने। जब उनका उपदेस पिछाने॥[21]

वह फ़रमाते हैं: संतों के मार्ग पर चलनेवाले साधक की सारी मैल उतर जाती है, उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है और मन सचेत हो जाता है। उसके हृदय से इस मायारूपी जगत की सभी इच्छाएँ दूर हो जाती हैं। जैसे मुर्दे पर फूलों की बरसात करो या गंदगी फेंको, उस पर कोई असर नहीं होता, उसी प्रकार साधक भी सब कुछ समझते हुए संसार में मूर्ख बनकर रहता है। भले ही सब लोग 'मार दो, मार दो' कहकर मारने के लिये आयें और उस पर दोष लगाकर उसे कलंकित करें, परंतु विरोध

की अति हो जाने पर और बहुत बदनामी सहने पर भी साधक पूरी तरह निश्चिंत रहता है और डाँवाँडोल नहीं होता। ऐसी अवस्था में उस पर सतगुरु की दया की बरसात होने लगती है। यही परमार्थरूपी अनमोल रत्न प्राप्त करने का वास्तविक साधन है। जो जीव इस प्रकार की नम्रता, शांति और स्थिरता धारण करके संतों की शरण में जाता है, उसके हृदय पर संतों के उपदेश का पूरा प्रभाव होता है और उसके लिये परमार्थ में सफलता का मार्ग खुल जाता है।

जीव की अंत समय की हालत

तुलसी साहिब ने *रत्न सागर* (पृ.78-87) में विस्तारपूर्वक मनमुख जीव और सतगुरु द्वारा चेताये गये जीव के अंत समय का हाल बयान किया है। आप मनमुख जीव के बारे में कहते हैं कि जब तक काल श्वासों की डोर क़ायम रखता है, जीवरूपी पतंग उड़ती रहती है। जब वह डोर को समेट लेता है तब जीवात्मा शरीर के रोम-रोम में से सिमटकर अंदर तालू तक पहुँच जाती है। अंदर बैठा काल सुरत को झपट लेता है और अपने अधिकार में ले लेता है। उस समय शरीर के पाँच तत्त्व अपने स्रोत में समा जाते हैं।

कोटि कर्म करनी करे, जम जुल्मी की दाढ़।
जो रे पड़े सो ना बचे, सब जिव डारे चाब॥[22]

मनमुख जीव मनमाने ढंग से चाहे करोड़ों धर्मकर्म या अन्य उपाय क्यों न कर ले, फिर भी यमराज उसे अपना शिकार बना लेता है। जीव बचने के लिये चाहे कितना भी ज़ोर क्यों न लगा ले, फिर भी काल उसे अपना ग्रास बना लेता है।

इसके विपरीत सतगुरु द्वारा चेताये गये गुरुमुख जीव की हालत बिलकुल भिन्न होती है:

जब वा डोरि को पकड़े जाई। संत सुरति की बैठक वाही॥
वही सतगुरु की बैठक पासा। डोरि छाँड़ि होइ काल निरासा॥

प्रानी सतगुरु की सुधि लावे। डोरी छाँड़ि काल अलगावे॥ ...
जिनके हृदय संत लौ लागी। सतगुरु साँच प्रीति अनुरागी॥
जिनके काल निकट नहिं आवे। डोरि छाँड़ि के दूर परावे॥[23]

तुलसी साहिब स्पष्ट करते हैं: जहाँ अंतर में एक ओर काल बैठा हुआ है, वहीं दूसरी ओर सतगुरु भी विराजमान हैं। सतगुरु द्वारा जाग्रत की गई आत्मा सतगुरु के पास पहुँच जाती है और काल उसकी डोर छोड़कर एक तरफ़ हो जाता है। जिनके हृदय में सतगुरु की सच्ची प्रीति होती है और जिनका ध्यान संत-सतगुरु की ओर लगा होता है, काल उनके नज़दीक नहीं आ सकता। जब सुरत सतगुरु का पल्ला मज़बूती से पकड़ लेती है तो काल ख़ाली हाथ चला जाता है। वह सुरत काल के जाल से मुक्त हो जाती है और सतगुरु में समाकर ऊपर की ओर चढ़ाई करती है।

सुरति डोरि सतगुरु गहे, रहे चरन के माहिं।
सुन्न सुरति सब्दै मिली, डोरी डोरि समाय॥
काल रहा झख मारि के, गयो जो दावा चूक।
निर्मल होइ आगे चले, कर्म काल मुख थूक॥[24]

तुलसी साहिब फ़रमा रहे हैं कि सतगुरु अपनी शरण में आये शिष्य की सुरत की डोर पकड़ते हैं और उनके शब्द स्वरूप में लीन सुरत सुन्न मंडल में पहुँचकर शब्द रूप हो जाती है। सुन्न मंडल यानी दसवें द्वार में पहुँचकर मन, माया, कर्मों और संस्कारों की मैल दूर हो जाने पर निर्मल हुई आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान हो जाती है और वह निजघर की ओर ऊपर की तरफ़ बढ़ती चली जाती है।

अब वह कथा कहूँ बिस्तारी। हिरदे सुनिये ज्ञान बिचारी॥
संत छाप जेहि जिव पै लागी। कोइ जिव भूल गया अनुरागी॥

कूसंगति से भूल समानी। जाकी कहूँ सुनो सहदानी॥
जो कदाचि नरक में जावे। संत जाय के जहाँ छुड़ावें॥[25]

तुलसी साहिब हिरदे को समझाते हुए कहते हैं कि यदि किसी कारण सतगुरु द्वारा चिताये गये जीव का ध्यान सतगुरु की ओर नहीं रहता और वह अंतिम समय काल का ग्रास बन जाता है। या फिर यदि संतों द्वारा सजग किया गया जीव कुसंगत में पड़कर किसी कारणवश संतों के प्रेम से दूर होकर काल द्वारा नरकों में डाल दिया जाता है, तो भी संत नरकों से उसे वापस ले आते हैं। इस बारे में आप दो उदाहरण देते हैं। पहला उदाहरण राजा जनक का है, जिसने परमात्मा के नाम-सुमिरन की एक घड़ी का फल देकर नरक के अनेक जीवों को वहाँ से आज़ाद करवा लिया:

धन धन राजा जनक है, जिन सुमिरन किया बिबेक।
एक घड़ी के सुमिरते, पापी तरे अनेक॥[26]

दूसरा उदाहरण देते हुए आप कहते हैं: किसी कारण गुरु नानक साहिब द्वारा चेताया हुआ जीव नरक में पहुँच गया। गुरु साहिब ने नरकों को ठंडा कर दिया और अपने जीव को वापस छुड़ा लिया:

नानक जाय अँगूठा बोरा। नरक जीव के बंधन तोड़ा॥[27]

तुलसी साहिब कहते हैं कि इस प्रकार की साखियाँ सुनाने का मेरा उद्देश्य यह है कि जीव पूर्ण सतगुरु की अपार दया का मर्म समझने का प्रयत्न करें और सतगुरु की शरण का सहारा लें:

जुग जुग भूले जीव अनेका। दया भाव सतगुरु से ठेका॥
संत दया की रीति नियारी। बार बार चरनन पर वारी॥
जो कछु करें करें सोइ संता। संत बिना नहिं पावे पंथा॥
सतगुरु जो जोइ राह बतावें। भूले को मारग दरसावें॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु संत दयाल से, करम रेख मिटि जाय।
मन तन सूरति साँच से, ज्यों का त्यों रहि जाय॥[28]

तुलसी साहिब इस बात पर बल दे रहे हैं कि जीव के उद्धार के लिये संतों की शरण में जाना अत्यंत आवश्यक है। वह कहते हैं कि युगों-युगों से निजघर की ओर जानेवाले मार्ग से भटक चुके जीव भवसागर में गोते खा रहे हैं। उनके उद्धार का एकमात्र साधन संत-सतगुरु की दया-मेहर है। संतों की दया को शब्दों में नहीं बताया जा सकता। जीव का उद्धार केवल संतों द्वारा ही संभव है। संतों की सहायता के बिना किसी को कभी भी निजघर का मार्ग नहीं मिल सकता। सतगुरु ग़लत मार्ग पर चल रहे जीव को सही मार्ग दिखा देते हैं। संतों की दया से कर्मों का हिसाब-किताब ख़त्म हो जाता है। तन, मन और सुरत तीनों निर्मल हो जाते हैं और आत्मा निजघर वापस पहुँचने में सफल हो जाती है।

जीवहत्या और मांसाहार

संतजन कहते हैं कि किसी जीव को मन, वचन या कर्म से पीड़ा पहुँचाना पाप है। जो लोग स्वाद लेने के लिये जीवों की हत्या कर देते हैं या फिर अपना शौक़ पूरा करने के लिये जीवों का शिकार करते हैं, वे नरकों के अधिकारी बन जाते हैं। जीवहत्या करना इस बात का प्रमाण है कि उस व्यक्ति के मन में दया का भाव ही नहीं है। दया धर्म का मूल के नज़रिये से जीवहत्या करनेवाले अधर्मी हैं। जिनके दिल में दया नहीं है उनके बारे में तुलसी साहिब ने अपनी वाणी में लिखा है:

दयाहीन नर दुष्ट कहावे। नर तन नाहक जनम गँवावे॥[1]

बन बन खेले जीव सिकारा। मारि जीव पुनि करत अहारा॥
दयाहीन मुख स्वाद सँवारा। जिह्वा का बंधन बिस्तारा॥

॥ सोरठा ॥

जीवत मारे जीव, कधी दर्द आवे नहीं।
तलफत जीव नसाय, बेदर्दी बूझै नहीं॥[2]

निर्दयी व्यक्ति बहुत दुष्ट है। वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। लोगों का जीवन शिकार आदि व्यर्थ के शौक़ पूरे करने में बीत जाता है। अपनी जिह्वा के स्वाद के लिये मनुष्य जानवरों का मांस खाता है। वे बेज़ुबान जीव पीड़ा से तड़पते हुए मर जाते हैं, परंतु निर्दयी के मन में रत्ती भर भी दया नहीं आती।

मांसाहार का निषेध

तुलसी साहिब उन लोगों की सोच पर हैरान हैं जो मांस खाना उचित ठहराते हैं, इसी की चर्चा करते हुए कहते हैं:

औरौ सुनौ एक अधमाई। बिन बकरा मरे मास न आई॥
बकरा मरै जीव दुख पावै। तब पुनि मास कसाई लावै॥
आतम मरै कष्ट के माहीं। कसकै साधू देंह धुजाई॥
ऐसे निष्ट साध जो खावैं। तिन को साधू कहि कहि गावैं॥
दयाहीन इंद्री सुख भावै। जिभ्या रस मट्टी बतलावै॥[3]

कुछ लोगों की यह ग़लत धारणा है कि भले ही वे मांस खाते हैं, परंतु अगर वे स्वयं जीवहत्या नहीं करते तो वे पाप के भागी नहीं बनते। इसी ग़लत धारणा पर अपने विचार प्रकट करते हुए तुलसी साहिब कह रहे हैं कि मांसाहार करनेवाले कुछ लोग सोचते हैं कि बकरे को मारे बिना मांस हासिल नहीं हो सकता और अगर हम बकरे को मारते हैं तो हमारी आत्मा को दु:ख होगा। इस दुविधा से बचने के लिये वे कसाई द्वारा लाये गये मांस का प्रयोग करते हैं। परंतु हत्या चाहे कोई भी करे, उस जीव को कष्ट तो उतना ही होगा, इस बात का उन्हें कोई एहसास नहीं है। जबकि अपने ऊपर थोड़ी-सी खरोंच लगने पर भी वे काँप उठते हैं। जो साधु दूसरों के द्वारा लाये और पकाये गये मांस को खाना नाजायज़ नहीं मानते, अज्ञानी लोग ऐसे साधुओं की महिमा गाते हैं। ऐसे साधु अंदर से तो निर्दयी होते हैं और इंद्रियों का सुख भोगने की चाह रखते हुए भी बाहरी तौर पर जीभ के स्वादों को मिट्टी बताते हैं। तुलसी साहिब दलील देते हैं: *मट्टी तौ तब जानै भाई॥ ढेला खेत उठावै खाई॥*[4]—आप कहते हैं कि मांस को मिट्टी कहनेवाले खेत में से मिट्टी का ढेला उठाकर क्यों नहीं खा लेते? *जब जिभ्या सुख चीन्ह न आवै। तब मट्टी कहि सच करि गावै॥*[5]—जिस व्यक्ति का ध्यान इंद्रियों के स्वाद से ऊपर उठ चुका हो, वही प्रत्येक वस्तु को मिट्टी के समान कह सकता है।

सभी संत-महात्मा जीवहत्या का विरोध करते हैं, क्योंकि हिंसा के फलस्वरूप जीव को अपने कर्मों का भयंकर परिणाम भोगना पड़ता है। तुलसी साहिब ने करनी-भरनी के अटल नियम के बारे में बात करते हुए अन्य संतजनों के दृष्टांत भी दिये हैं:

नानक और कबीर सुनाई। दादू दरिया सब ने गाई॥
सब्द साखि बिच लेउ बिचारी। हत्या पाप नरक होइ भारी॥
अस अस साधू सबहि पुकारै। ये मत नीच कीच की लारै॥
ये पुरान में देखौ जाई॥ सास्तर सबै अनीति बताई॥
जग में रीति अनीती जानै। सो साधन बिच साखि बखानै॥
यहि बिधि संत मुक्ति गोहराई॥ मास खाइ भौ पार न जाई॥[6]

आप फ़रमाते हैं कि गुरु नानक साहिब, कबीर साहिब, दादू साहिब, दरिया साहिब आदि सब संतों ने और सभी धर्मग्रंथों ने जीवहत्या को घोर पाप माना है। जीवहत्या करनेवाला भी और मांस खानेवाला भी, दोनों नरकों के अधिकारी बनते हैं, उनका कभी भी भवसागर से उद्धार नहीं हो सकता।

कुछ लोग यह दलील देते हैं कि गुरु नानक साहिब की वाणी में मांस खाने पर कोई पाबंदी नहीं लगाई गई है, परंतु तुलसी साहिब गुरु नानक साहिब का हवाला देते हुए स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने साफ़ तौर पर मांस खाने की मनाही की है:

नानक साहिब बड़े दयाला। जीव हतन ग्रन्थन नहिं डाला॥
ये सब रीत स्वाद की लारी। स्वारथ जिभ्या पेट सँवारी॥
कहिये दया संत की रीती। यह कस करी मुक्ती परतीती॥
नित प्रति जीव कसाई मारै। हत्या कहि कहि संत पुकारै॥
संत कसाई एकहि लेखा। या में ठहरा कौन बिबेका॥
यह अन्धे अन्धे कर लेखा। आतम मारि न करै बिबेका॥

अंध धुन्ध सब भेष भुलावा। सब्दन बिच नानक नहिं गावा॥
कोइ बावें मुख साखि सुनावै। तौ तुलसी के मन में आवै॥
हत्या भई मुक्ति की दाता। नानक पंथ भेष सब खाता॥
सबही भेष भेड़ की रीती। अंधे अंध कर्म मन चीती॥[7]

तुलसी साहिब स्पष्ट करते हैं कि गुरु नानक साहिब ने आदि ग्रन्थ में जीवहत्या की आज्ञा नहीं दी है। लोग निजी स्वार्थ और जिह्वा के स्वाद के लिये ग़लत क़िस्म की दलीलें देकर यह बात सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि गुरु साहिब मांस खाने के विरुद्ध नहीं थे। आप कहते हैं कि यदि कोई गुरु नानक साहिब की वाणी में से जीवहत्या या मांस खाने की इजाज़त का एक भी प्रसंग सुना दे तो मैं उस पर विश्वास करने के लिये तैयार हूँ। तुलसी साहिब कहते हैं कि यदि संत ही जीवहत्या और मांस खाने के विरुद्ध नहीं हैं, तो संत और कसाई में क्या अंतर रह जाता है? अज्ञानी लोग कर्मों के हिसाब-किताब के प्रति अंधे बने हुए हैं, जीवों की हत्या करते समय उनका विवेक मर जाता है। तथाकथित भेषधारी साधुओं के भुलावे में आकर लोग अंधाधुंध जीवहत्या जैसा घिनौना कर्म किये जा रहे हैं। यह तो भेड़चाल है। इसी भेड़चाल में लोग अज्ञानतावश अंधाधुंध ऐसे दुष्कर्म कर रहे हैं।

इस संदर्भ में विचार करने के लिये गुरु नानक साहिब की वाणी में से दो प्रसंगों को लिया गया है:

रस सुइना रस रुपा कामण रस परमल की वास॥
रस घोड़े रस सेजा मंदर रस मीठा रस मास॥
एते रस सरीर के कै घट नाम निवास॥[8]

आप कहते हैं: जिस हृदय में सोने-चाँदी, इत्र-फुलेल, सुंदर स्त्री का मोह समाया हुआ है; जिसके हृदय में घुड़सवारी, सुंदर महल में सुंदर बिस्तर पर आराम करने का, मीठे पदार्थ और मांस का भरपूर स्वाद लेने

का लोभ भरा हुआ है, उस हृदय में परमात्मा और उसका नाम कैसे वास कर सकता है?

आदि ग्रन्थ में कबीर साहिब की जो वाणी संकलित है, उसमें भी यही कहा गया:

जीअ बधहो सो धरम कर थापहो अधरम कहहो कत भाई॥
आपस कउ मुनिवर कर थापहो का कउ कहहो कसाई॥[9]

कबीर साहिब ने प्रश्न किया है: पंडित जी! तुम जीवहत्या को धर्म मानते हो तो फिर अधर्म क्या होता है? यदि जीवहत्या करनेवाला व्यक्ति ऋषि-मुनि होता है तो फिर कसाई कौन है?

दरदमंद दरवेस है, बेदरद कसाई।
गल बिच छुरी चलाइया, तुझे दरद न आई॥ टेक॥
क्या बकरी क्या भेड़िया, क्या अपना जाया।
सब का लोहू एक है, तुझै किन फुरमाया॥
नानक लखि परचै भई, सब घट बिच प्यारा।
सब जहान जिव एक है, घट माहिं निहारा॥[10]

इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए तुलसी साहिब लिखते हैं: जो दयालु है वह संत है और जो निर्दयी है, वह कसाई है। चाहे बकरी है, चाहे भेड़िया या फिर किसी की अपनी संतान – सबकी रगों में एक ही ख़ून दौड़ता है। आप कहते हैं कि गुरु नानक साहिब ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि प्रत्येक जीव के अंदर एक ही प्रभु का निवास है। इसलिये संपूर्ण संसार के सभी जीव समान रूप से प्रेम और दया के अधिकारी हैं।

तुलसी साहिब ने हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों को भी चेतावनी दी है:

रोजा तीसों निवाज बंग पुकारै। कर हलाल कुफर रोज मुरगी मारै॥
मुरगी का खुदा खोज पूछे भाई। रोजा निवाज बंग बाद गँवाई॥[11]

आप कहते हैं कि जो मुसलमान रमज़ान के महीने में प्रतिदिन रोज़ा रखता है, पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़ता है और ऊँची आवाज़ में बाँगें देता है, लेकिन मुर्ग़ी को मारने का कुफ़्र करता है, उसके रोज़े, नमाज़ और बाँग व्यर्थ चले जाते हैं।

तुलसी साहिब ने क़ुरान का हवाला देकर भी जीवहत्या को अनुचित ठहराया है:

तेरी इक दिन निकसे जान, कुफर कुफरान में॥ टेक॥
काफिर जुलम जिबह जिव करते, बिसमिल हक ईमान॥
परख पैगम्बर राह सरे की, यह नहिं कहत कुरान॥
अल्ला हुकम मुहम्मद कीन्हा, दरदमंद फरमान॥
करि हलाल बेपीर कसाई, तुलसी तक तुरकान॥[12]

तुलसी साहिब कहते हैं कि कलमा पढ़कर पशुओं के गले पर छुरी चला देते हैं और समझते हैं कि ऐसा करके मांस खाना जायज़ हो जाता है। आप कहते हैं कि हज़रत मुहम्मद साहिब ने इस प्रकार के कर्म को जायज़ नहीं कहा है। हज़रत मुहम्मद साहिब ने क़ुरान शरीफ़ में अल्लाह का यह फ़रमान बताया है कि इनसान के हृदय में दूसरे जीवों के प्रति दया का भाव होना चाहिये। उसे पराई पीड़ा को अपना दर्द समझना चाहिये। जो लोग पशुओं के गले पर छुरी चलाकर मांस को हलाल बताते हैं, वे वास्तव में बड़े ज़ालिम हैं।

नूर नबी ने सब का कीन्हा। तुम हलाल बकरी कस कीन्हा॥
गुनहगार दोजख की रीति। करौ खून ये बहुत अनीती॥
जो महजित उन आप बनाई। सो हलाल करि कै तुम खाई॥[13]

तुलसी साहिब सूफ़ी दरवेशों के क़लाम का भी हवाला देकर समझाते हैं कि जब सभी जीवों के अंदर एक ही नबी का नूर समाया हुआ है तो तुम बकरी मारने को जायज़ कैसे कह सकते हो? तुम जीव का ख़ून बहाते हो, जो धर्म के विरुद्ध है। जिस जीव की तुम हत्या करते हो, वह अल्लाह की बनाई हुई मसजिद है। उस मसजिद के अंदर अल्लाह ख़ुद मौजूद है। तुम अल्लाह की बनाई देहरूपी मसजिद को हलाल कहकर खाते हो। इस गुनाह की सज़ा तुम्हें नरकों में भुगतनी पड़ेगी।

आप हज़रत ईसा के उपदेश का हवाला देते हुए कहते हैं:

एरी ईसा अँगरेज कहावे, सब में इक ब्रह्म बतावे॥
इनसाफ जो साफ सुनावे, जो गुनह करे सोइ पावे॥
ये मियाँ एक अनीती भावे, जीव जिबह करै सोइ खावे॥
तुलसी तन बूझ न लावे, ये बेइनसाफ कहावे॥[14]

हज़रत ईसा का भी फ़रमान है कि सब जीवों के अंदर एक ही परमात्मा का निवास है और उसने यह नियम बनाया हुआ है कि हर किसी को अपने पापों का फल भोगना पड़ता है। इस दृष्टि से जीवहत्या करना और मांस खाना हज़रत ईसा द्वारा बताये धर्म के विरुद्ध है। जो व्यक्ति इस नियम को समझने का यत्न नहीं करता, वह ख़ुद के साथ और अपने धर्म के साथ बहुत बड़ा अन्याय कर रहा है।

जीवहत्या का परिणाम

जो मनुष्य मांसाहार के लिये जीवों की हत्या करते हैं, वे अपने आत्मिक विनाश की राह अपना लेते हैं, क्योंकि जीवहत्या से कर्मों का ऐसा सिलसिला बन जाता है जो कई जन्मों तक चलता है। इसी बारे में तुलसी साहिब संकेत करते हैं:

आतम नास मास जिन खाया। बकरा मारि करम में आया॥
आतम नास कीन्ह तेहि खाया। अपनी इंद्री सुख में लाया॥

इंद्री सुख भयौ आतम बैरा। जिन के भये नरक में डेरा॥
ये तौ कधी न छूटैं भाई। ये बैराट लौटि जो जाई॥
साध फकीर गृस्थ पुनि कोई। जिन जिन कीन्ह नर्क गये सोई॥
बैर भाव छूटे नहिं भाई। गला काटि सोइ बंधन पाई॥[15]

प्रत्येक कर्म एक नये कर्म को जन्म देता है। जो व्यक्ति जिह्वा के स्वाद के लिये दूसरे जीवों का मांस खाता है, वह अपनी आत्मा के साथ दुश्मनी कर रहा है, क्योंकि जीवों का मांस खाने की सज़ा भुगतने के लिये उसे चौरासी में भटकना पड़ता है और नरकों के दु:ख भोगने पड़ते हैं। साधु है, फ़कीर है या गृहस्थ, जो भी जीवहत्या करता है और दूसरे जीवों का मांस खाता है, वह नरकों का अधिकारी बन जाता है।

तुलसी साहिब कर्म और कर्मफल का दृष्टांत देकर प्रमाणित करते हैं कि अवतार भी कर्मफल के दायरे से बाहर नहीं हैं:

राम कृष्ण औतारी भाई। बाल भील होइ मारौ ताही॥
पाँव पदम बिच मारेउ बाना। कृष्ण बैरपुनि मरे दिदाना॥
ऐसे बैर न जैहै भाई। गला कटे बिन छूटि न पाई॥[16]

भगवान राम विष्णु का अवतार थे। आपने राम के रूप में बाली को छिपकर मारा था। जब भगवान राम कृष्ण के रूप में अवतार धारण करके आये तो बाली ने भील के रूप में कृष्ण पर तीर चलाकर अपना बदला ले लिया। तुलसी साहिब कहते हैं कि जब अवतार भी कर्म के फल से नहीं बच सकते तो साधारण जीव पापों के फल से बचने की आशा कैसे कर सकते हैं?

इसलिये धर्मकर्म के नाम पर जीवहत्या करने के पीछे जीव की अज्ञानता ही दिखाई देती है:

देखो नर की भूल सूल ता से सहै।
जीवत मारै जीव प्रान उसके लहै॥
देबी बकरा काट सीस उस पै धरै।

बूझै न अन्ध अचेत जिवत जिव जो मरै॥
पूत पराया मारि दरद नहिं लावही।
कुसल कहाँ से होइ जनम दुख पावही॥[17]

तुलसी साहिब इस विषय के एक अन्य पहलू पर प्रकाश डालते हुए फ़रमाते हैं कि देवताओं की मूर्तियों के समक्ष जीवित प्राणियों की बलि चढ़ानेवाले व्यक्ति महा अज्ञानी हैं। वे एक जीवित प्राणी की हत्या करके निर्जीव मूर्ति को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। इस सच्चाई को भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि सब जीवों के अंदर एक ही प्रभु का और उसकी अंशरूप आत्मा का निवास है और जो व्यक्ति जीवहत्या करता है, उसे देर-सवेर अपने पापों का फल भोगना ही पड़ता है।

कन्याओं की हत्या

तुलसी साहिब ने नीचे दिये गये प्रसंग में समाज में प्रचलित एक अन्य कुरीति का उल्लेख किया है। आप कहते हैं:

लड़की मारि करैं अजगूता। यह हत्या आतम होइ भूता॥
यह तो आप आतमा नासा। छूटै नहीं भोग बिन बासा॥
जो चेतन बसै लड़की माहीं। सो चेतन है अपने ठाहीं॥
लड़की देंह दृष्टि करि देखी। ता में अदृष्टि ताहि नहिं पेखी॥
साधू देंह दृष्टि नहिं मानै। बोलै अदृष्टि ताहि पहिचानै॥
देंही दृष्टि जगत की रीती। साधू देखै चेतन सेती॥
ता को नास करौ तुम भाई। बावे यह बिधि कही अधमाई॥
यह तुम पाप कीन्ह केहि काजा। साध दया मति आवै न लाजा॥
ग्रंथ माहिं देखौ तुम जाई। आतम हत्या साध न गाई॥
या बिधि भूल करौ अजगूता। जम राजा बँधि है मजबूता॥
साखी बावे मति की जाना। पर आतम हत नरक निदाना॥
आज गृहस्थ लड़की जो मारै। ता को जगत अधम करि डारै॥[18]

संतों का संवेदनशील हृदय संसार में हो रहे पाप और अत्याचार को देखकर अपार करुणा से भर उठता है और वे अपने वचनों द्वारा सभी जीवों को सचेत करते हैं। यहाँ तुलसी साहिब दया से भरकर समाज में निरंतर हो रही लड़कियों की हत्या के घिनौने कर्म के विरुद्ध ज़ोरदार शब्दों में अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। वह कहते हैं कि कई लोग लड़कियों को मारने का घोर पाप करते हैं। तुलसी साहिब कहते हैं कि वे यह नहीं सोचते कि कन्या की हत्या करना आत्महत्या करने के समान है। लड़की के अंदर भी वही आत्मा और परमात्मा है, जो आपके अपने अंदर है। लोग लड़की के शरीर को देखते हैं, उसके अंदर विराजमान आत्मा और परमात्मा को नहीं देखते। पूर्ण साधु का ध्यान जीव के शरीर पर नहीं, उसकी आत्मा पर होता है और आत्मा न आदमी है, न औरत। तुलसी साहिब कहते हैं कि कन्या की हत्या करनेवाले ऐसा घिनौना पाप करने से पहले कुछ नहीं सोचते। न जाने उस समय उनमें सद्बुद्धि क्यों नहीं आती, यह पापकर्म करते हुए उनका सिर शर्म से क्यों नहीं झुक जाता? आप दु:ख प्रकट करते हुए कहते हैं कि एक तरफ़ अपने आप को गुरु नानक साहिब के अनुयायी कहलाना और दूसरी तरफ़ जीवहत्या का पाप करना, ये दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। गुरु साहिब ने जीवहत्या को घोर पाप कहा है। आदि ग्रन्थ को पढ़कर देख लो, गुरु साहिब ने अपनी वाणी में जीवहत्या की आज्ञा नहीं दी। जो व्यक्ति कन्या की हत्या जैसा घोर पाप करता है, धर्मराज उसे बाँधकर नरकों में फेंक देता है। लड़की की हत्या करनेवाला व्यक्ति संसार में घोर अपमान ही पाता है और वह अपना परलोक भी बिगाड़ लेता है।

तुलसी कहै पुकारि जीवत जिनि मारि हो।
सब में आतम राम सुनो नर नारि हो॥[19]

लोगों को चेतावनी देते हुए तुलसी साहिब कहते हैं: तुम जिस भी धर्म से संबंध रखते हो, मेरी बात ध्यान से सुनकर गाँठ बाँध लो। सब जीवों के अंदर एक ही आत्मा और परमात्मा का निवास है और तुम कभी किसी हालत में जीवहत्या का पाप करने की ग़लती न करना।

चेतावनी

युगों-युगों से अज्ञानता के अंधकार में ठोकरें खा रहे जीवों को कड़े शब्दों में चेतावनी देते हुए तुलसी साहिब संसार की वास्तविकता को समझाते हैं:

मान रे मन मस्त मसानी॥ टेक॥
पोखि पोखि तन बदन बढ़ाया। सो तब बन जरै अग्नि निदानी॥
कुटुँब बंधु भैया सुत नारी। मरत कोऊ सँग जात न जानी॥
यह संसार समझ दुखदाई। पर बंधन नहिं परत पिछानी॥
जोइ जोइ पाप पुन्न जिन कीन्हे। आप आप भव भुगतत खानी॥
फूला बृच्छ फूल गिरि जावे। तैं फूले पर कौन ठिकानी॥
तुलसी जगत जान दिन चारी। भारी भव बिच फाँस फँसानी॥[1]

जीव को चेताने के लिये तुलसी साहिब ठोक-बजाकर कहते हैं कि संसाररूपी श्मशान में रहकर मस्त हुए हे मन! मेरी नसीहत ध्यान से सुन! जिस शरीर के पालन-पोषण को तू अपना दीन-ईमान समझ रहा है, उसने अंत में जलकर राख हो जाना है। सगे-संबंधी, भाई-बहन, पुत्र, स्त्री और परिवार के अन्य जीव अंत समय किसी के साथ नहीं जाते। यह संसार वास्तव में दुखों का घर है, इसका सूक्ष्म बंधन तुम्हें दिखाई नहीं देता। तू जो भी पुण्य और पाप करेगा, उसका फल भोगने के लिये तुझे चार खानियों और चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ेगा। जिस प्रकार वृक्ष को लगे सुंदर फूल जल्दी ही झड़कर नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार संसार

में इकट्ठा किया हुआ तुम्हारा माल-असबाब अंत में यहीं छूट जायेगा। मेरे प्यारे! तुम यह समझने का यत्न करो कि तुम भवसागर में फँसे हुए हो। यह संसार भी चार दिनों का मेला है और तुम्हारे जीवन का भी कोई भरोसा नहीं है कि कब समाप्त हो जाये।

परिवार के मोहजाल में फँसकर परमात्मा के साथ किया वायदा भूलनेवाले जीव को तुलसी साहिब सचेत करते हुए कहते हैं:

ये दिन चार कुटंब सों लार, सो झूठ पसार के संग बँधानो।
मात पिता सुत दार निहारि, सो सार बिसारि कै फंद फँदानो॥
पानी से पिंड सँवारि कियौ, नर ताहि बिसारि अनंद सो मानो।
तुलसी तब की सुधि याद करौ, उलटे मुख गर्भ रह्यौ लटकानो॥[2]

मेरे प्यारे! परिवार के साथ केवल चार दिन का रिश्ता है। तू इस झूठ के पसारे के साथ क्यों बँधा हुआ है? माता-पिता, पुत्र, स्त्री आदि सभी ने तुम्हें सार पदार्थ परमात्मा की ओर से अचेत करके अपने मोहजाल में बाँध लिया है। उस सृजनहार ने ही तो माता के रक्त से तेरे इतने सुंदर शरीर का निर्माण किया है और तू उसे ही भुलाकर संसार में मौज-मस्ती कर रहा है। उस समय को याद कर जब तू माता के गर्भ में उलटा लटका हुआ हर पल प्रभु के आगे विनती कर रहा था कि मुझे इस नरक में से बाहर निकाल लो, मैं श्वास-श्वास तुम्हारे नाम का सुमिरन करूँगा।

देख रे दिन जात दिवाने॥ टेक॥
रस बस बंध पड़ा जुग चारी। अब छूटन भज बखत न जाने॥
जग आसा बैराग बनाया। खाया कछु दिन बाद भ्रमाने॥
मन इंद्री सुख नींद बिचारे। पारे परम धाम इमि आने॥
जग बोध बस आप गँवाया। राम कहत सब जन्म सिराने॥
तुलसी अब बाकी चुकि बीती। या में कर सतसंग न हाने॥[3]

वह आगे कहते हैं: ऐ अज्ञानी जीव! ज़रा विचार करके देख कि कैसे जीवनरूपी दिन शीघ्रता से व्यतीत होता जा रहा है! तू अनंत काल से इंद्रियों के भोगों और माया के रसों में लिप्त है। मनुष्य-जन्म भवसागर से छुटकारे का अनमोल अवसर है, परंतु तुझे इसकी कोई चिंता ही नहीं है। तूने इस सोच को अपने जीवन का आधार बना लिया है कि पहले कुछ समय सांसारिक भोगों को भोग लिया जाये, फिर सब कुछ छोड़कर परमार्थ साधा जाये। तू इस मायारूपी जगत को सत्य समझ बैठा है और आत्मा के परमात्मा के साथ वास्तविक संबंध के बारे में विचार नहीं कर रहा। तू मुँह से तो राम-राम कहता है, परंतु हृदय में प्रभु को धारण नहीं करता। अभी भी समय है, सावधान हो जा और शेष जीवन किसी पूर्ण संत की संगति में बिता, ताकि तू मनुष्य-जन्म से कुछ तो लाभ उठा सके।

छाड़ रे मन मान मुटाई॥ टेक॥
मोटे मन सिर मोट बँधानी। मान मनी तजि झूठ खुटाई॥
छल बल छाड़ि छूत लबराई। सत्त बात मन आनि छुटाई॥
चार दिना यह देह दिवाने। ज्यों चरखी धौं कपास औटाई॥
बिन गुर भजन भाग जेहिं फूटा। झूठे जग सँग साथ लुटाई॥
बूझे बस्तु बैठ सतसंगा। छिन-भँग तन यह देत दृढ़ाई॥
तुलसी तोल बोल यह बानी। बूझ मूढ़ फिर छोड़ ढिठाई॥[4]

तुलसी साहिब के चेतावनी के ये वचन बड़े ही प्रेरणादायक हैं: हे मन! तू घमंड और अहंकार का त्याग कर दे। जितना अधिक अहंकार करेगा, उतने अधिक मोटे रस्से द्वारा इस मायारूपी संसार के साथ बँध जायेगा। तुझे झूठ ही अच्छा लगता है, सच नहीं। तू छल-बल, झूठ-कपट, ऊँच-नीच की छुआछूत को छोड़ दे। जिस जीवन को तूने सदा रहनेवाला माना हुआ है, वह चार दिनों का खेल है। कालरूपी चरखे पर तेरी जीवनरूपी रूई काती जा रही है। हे अभागे मन! तू सतगुरु के

उपदेशानुसार भजन की ओर ध्यान क्यों नहीं देता? तू मिथ्या और नश्वर संसार के मोह में फँसकर मनुष्य-जन्म का अनमोल अवसर व्यर्थ के कार्यों में क्यों नष्ट कर रहा है? यदि तू संतों के सत्संग में जाये तो तुझे शरीर के क्षणभंगुर होने का ज्ञान हो जायेगा। हे मन! तू हठ छोड़ दे और संतों के उपदेश पर ध्यान दे।

तुलसी साहिब बड़े-बड़े अहंकारी जीवों का दृष्टांत देकर जीव को जाग्रत करते हैं:

दृष्टि पसारि के देखि तुही, जग माहिं रह्यौ कोइ बूझ अमाना।
पंडो भभीषन भीम बली, गये खोज गली केहि राह समाना।
रावन लंकपती पै हती, सो रती भर संग न देखि निदाना।
तू केहि लेखे मैं देख कहौं, तुलसी सतसंग से होत न हाना।[5]

तुलसी साहिब चेतावनी देते हैं: मेरे प्यारे! आँखें खोलकर, अच्छी तरह विचार करके देख कि इस संसार में कोई भी सदा के लिये नहीं रह सकता। ज़रा सोचकर देख कि विभीषण और महाबली पाँडव भीम जैसे कहाँ चले गये हैं।। तू विचार करके देख कि सोने की लंका का मालिक रावण यहाँ से कोई भी वस्तु अपने साथ नहीं ले जा सका। इन विशिष्ट लोगों के सामने तेरी क्या बिसात? यदि तू अपनी हानि से बचना चाहता है और इस अनमोल जीवन के अवसर से कोई लाभ लेना चाहता है तो संतों के सत्संग में जा, फिर तेरा जीवन व्यर्थ नहीं जायेगा।

नाम लो री नाम लो री, ऐसी काहे सुरत सुधि भूली री॥ टेक॥
बाद बिबाद तजो बहु बायक, नाहक दुख सहो सूली री॥
काल कराल भुलावत करमन, भ्रम तजि भज पद मूली री॥
बीतत जनम नाम बिन लानत, चालत मेट अदूली री॥
स्वास स्वास जावे तन तुलसी, क्यों भव सिंध सँग फूली री॥[6]

ऐ जीवात्मा! तू गफ़लत और व्यर्थ के दु:खदायक वाद-विवाद को त्यागकर अपना ध्यान नाम के साथ जोड़ ले। तू अच्छी तरह समझ ले कि काल ने तुझे बुरी तरह कर्मों के जाल से बाँधा हुआ है। तू माया के भ्रमजाल को तोड़कर नाम के सुमिरन द्वारा निज धाम में पहुँचने का प्रयत्न कर। तू इस भवसागर का मान त्याग दे। तू प्रभु के हुक्म को न मानकर मनचाहे कर्म कर रहा है और यह समझने का प्रयत्न नहीं करता कि प्रभु के नाम के बिना जीवन का प्रत्येक श्वास व्यर्थ जा रहा है।

युगों-युगों से भ्रमजाल में फँसे जीव को सतगुरु की शरण के बिना अन्य किसी साधन से छुटकारा नहीं मिल सकता। इसी लिये सतगुरु जीव को कहीं प्यार भरा उपदेश देकर और कहीं कड़ी चेतावनी देकर निज धाम के प्रति सचेत करते हैं।

उपदेश का सार

यह संसार अस्थायी और चलायमान है जिसमें हमेशा परिवर्तन होता रहता है। संसार की तुलना में आत्मा और परमात्मा को 'नित्य' कहा गया है। 'नित्य' वह है जो सदैव क़ायम रहता है, जिसमें कभी परिर्वतन नहीं होता और जो हमेशा एकरस और एकरूप रहता है। अपने मूल स्वभाव की पहचान करना ही मनुष्य का सच्चा धर्म है। दूसरे शब्दों में आत्मा के अविनाशी, अपरिवर्तनशील होने की पहचान करना ही सच्चा धर्म है।

शरीर अस्थायी और परिवर्तनशील है। जीवन, यौवन, रूप, धन-संपत्ति आदि सब अस्थायी हैं। सगे-संबंधी भी हमेशा नहीं रहते। संसार भी अस्थायी है, इसके सभी पदार्थ अस्थायी और नाशवान हैं। केवल परमात्मा ही अमर-अविनाशी है। इसलिये अस्थायी और नाशवान पदार्थों का मोह त्यागकर अमर-अविनाशी प्रभु के साथ संबंध जोड़ना ही आत्मा का सच्चा धर्म है।

प्रत्येक वस्तु को केवल अपने मूल स्रोत में समाकर ही सच्ची शांति मिल सकती है। जिन पाँच तत्त्वों से शरीर का निर्माण हुआ है, शरीर के नष्ट होने पर वे अपने-अपने स्रोत में समा जाते हैं। समुद्र से अलग हुई बूँद, समुद्र में समाकर ही पूर्णता प्राप्त कर सकती है। इसी तरह आत्मा भी परमात्मा की अंश है, यह परमात्मा में समाकर ही पूर्णता प्राप्त करती है।

वर्तमान अवस्था में जीवात्मा ग़लत साधनों द्वारा, ग़लत तरीक़ों से सच्चे सुख या आनंद की तलाश कर रही है। संत-महात्मा समझाते हैं कि आत्मा स्वयं आनंद रूप है। इसके सभी दुखों का कारण है चेतन आत्मा का जड़ मन और शरीर के साथ बँधा होना। इसने जो भी प्रयत्न करना है, जड़ और चेतन की गाँठ खोलने के लिये करना है।

जब तक आत्मा सारे शरीर में फैली रहती है, जड़ और चेतन की गाँठ बँधी रहती है। जब आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा आत्मा को आँखों से ऊपर स्थिर कर लिया जाता है, तो चेतन आत्मा और जड़ मन की गाँठ खुल जाती है। जब आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा आत्मा दूसरे मंडल त्रिकुटी को पार करके तीसरे आध्यात्मिक मंडल में पहुँच जाती है तो वह मन के बंधन से पूरी तरह मुक्त हो जाती है। जब जड़ और चेतन की गाँठ खुल जाती है तो आत्मा को अपने निर्मल आत्मिक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। फिर यह मायारूपी संसार से पूरी तरह निर्लिप्त हो जाती है। कर्म और फल तथा उसके फलस्वरूप होनेवाला आवागमन भी दूसरे मंडल त्रिकुटी की सीमा तक है। तीसरे मंडल दशम द्वार में पहुँच चुकी आत्मा कर्मों और संस्कारों के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त हो जाती है। फिर इसे अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान हो जाती है। इसके साथ ही इसके अंदर अपने स्रोत में वापस समा जाने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो जाती है और यह शब्द के सहारे आंतरिक सफ़र तय करती हुई अपने स्रोत प्रभु में लीन हो जाती है।

तुलसी साहिब ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ *रत्न सागर* का अंत इस शब्द के साथ किया है:

तुलसी हिये हुलसी लखो, हिरदे हरख बयान।
जानि जन्म नर तन यही, कही सब संत बखान॥
नर तन में निरनै लखे, रखे सुरित समझाय।
चाह रखे नहिं अंत की, सतगुरु सब्द समाय॥
नर तन दुरलभ ना मिले, खिले कँवल रस माहिं।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय॥
रतन जतन सागर मही, कही जो निरनै छान।
ब्यान बरन बिख्यान सब, बूझे बचन प्रमान॥
हिरदे से तुलसी कहे, रहे अगम के पार।
जो निरधार संतन कही, सो सतगुरु पद सार॥[1]

तुलसी साहिब ने इस छोटे से शब्द में अपने उपदेश का सार बयान किया है। आप समझाते हैं कि प्रभु अंदर है और मनुष्य-जन्म का उद्देश्य है अपने अंतर में ही प्रभु की पहचान करना। सतगुरु की शरण लेने के बाद सुरत को अंदर शब्द में लीन करने पर ही यह कार्य पूरा हो सकता है। रत्न सागर ग्रंथ में भी इसी तथ्य का वर्णन किया गया है। सतगुरु परमधाम के निवासी होते हैं और जीव के उद्धार के लिये उस अगम लोक से मृत्युलोक में आते हैं। जीव को जीवन के मूल उद्देश्य को पूरा करने में देरी नहीं करनी चाहिये। उसे यह कार्य सतगुरु के उपदेशानुसार जल्दी से जल्दी संपन्न कर लेना चाहिये। इसी में मनुष्य-जन्म की सार्थकता है।

तुलसी साहिब ने यही भाव शब्दावली में प्रकट किया है:

प्रभु दयाल सुखदाई माई री, जिन मीन मरम मति पाई॥ टेक॥
प्रभु प्रभुता पत परन पिया की, छिन छिन सुरत लगाई।
नेम निवास अकास बास की, पल नहिं सुधि बिसराई॥
घर गुर गवन भवन निस बासा, स्वासा पवन नसाई।
धरती न गगन अगिन जल जोनी, कौने उत तन जाई॥
बिमल प्रकास सकल पद पूरे, सूरे संत लखाई।
जैसे बाँस चढ़े डोरी नट, घट निसंक अस आई॥
गुर की दया साध की संगत, स्रुत सब संत दृढ़ाई।
प्रीतम प्यार यार महलों में, तब तुलसी लखि पाई॥[2]

आप कहते हैं: जिसने संत-सतगुरु की सहायता से मन और सुरत के बहाव को उलटाने की युक्ति सीख ली, उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वह परमात्मा परमदयालु है। वह परमसुख का अथाह भंडार है। उसकी पहचान केवल उसकी दया से होती है। सतगुरु के वास्तविक घर 'सतलोक' में स्थायी निवास के लिये प्राणायाम आदि साधनों द्वारा नहीं पहुँचा जा सकता। वहाँ धरती, जल, अग्नि, वायु और आकाश – पाँचों तत्त्वों में से कोई भी नहीं; फिर इनसे बनी कौन-सी देह वहाँ जा सकती है?

वहाँ केवल निर्मल प्रकाश ही प्रकाश है। जिस प्रकार कोई नट बाँस की सहायता से सावधान होकर रस्सी पर चलता है, उसी प्रकार आत्मा को पूरी तरह सचेत होकर सतगुरु की सहायता से शब्दरूपी रस्सी पर चलना पड़ता है। जब भी प्रभु की पहचान होती है, उसकी दया से सतगुरु की शरण मिलने पर, सुरत को शब्द के साथ जोड़ने से ही होती है।

तुलसी साहिब समझा रहे हैं कि सतगुरु द्वारा बताई गई युक्ति के अनुसार सुरत को शब्द के साथ जोड़ना ही सच्चा ज्ञान, विवेक, ध्यान और योग है। आप कहते हैं कि सुरत-शब्द के अभ्यास द्वारा दसवें द्वार के सरोवर में स्नान करने पर आत्मा कर्मों और संस्कारों की मैल से पूरी तरह निर्मल हो जाती है। इसके अंदर प्रभु-प्रियतम का निर्मल प्रेम हिलोरें लेने लगता है और यह प्रियतम के घर पहुँचकर उसके दर्शन करके निहाल हो जाती है।

तुलसी ताल तीर चल जावे, न्हावो करम पखाली।
निरमल नेह सेह प्रीतम को, आतम दरस निहाली॥[3]

संवाद

परिचय

एक महान संत के रूप में तुलसी साहिब धीरे-धीरे उत्तर प्रदेश के विभिन्न शहरों में प्रसिद्ध हो गये। इससे परंपरागत कर्मकांड की नगरी बनारस (काशी) में हाहाकार मच गया। कर्मकांडी लोग तुलसी साहिब की निंदा करने लगे और अन्य लोगों को उनके पास जाने से रोकने की कोशिश करने लगे। इसका उल्लेख तुलसी साहिब ने वाणी में भी किया है:

तुलसी ग्रन्थ पसार, कासी नगर सगरे भई।
पंडित ज्ञानी भेष, जैन तुरक सब मिलि कही॥
तुलसी बाम्हन साध, गंगाजी पार रहतु है।
निंदत सिम्रित बेद, यह अभेद गति कहतु है॥[1]

काशी के सभी पंडित, ज्ञानी, फ़क़ीर, साधु, जैनी और मुसलमान इकट्ठे होकर शोर मचाने लगे कि तुलसी नाम का ब्राह्मण जो गंगा के किनारे रहता है, वेद-शास्त्रों और अन्य धर्मग्रंथों की निंदा करता है और धर्म के विरुद्ध बातें करता है।

इन लोगों ने तुलसी साहिब के शिष्य हिरदे नामक अहीर को बुलाकर पूछा कि तुलसी नाम का यह ब्राह्मण ग्रंथ-शास्त्रों के उपदेश को क्यों नहीं मानता? वह प्रत्यक्ष दिखाई देती गंगा और यमुना के बजाय आंतरिक गंगा, यमुना का हवाला क्यों देता है? वह पूजा, अर्चना, तीर्थ-व्रत आदि को

व्यर्थ क्यों बताता है? हिरदे तुलसी साहिब का सेवक था। उसने उत्तर दिया कि मैं तो अशिक्षित, अज्ञानी हूँ, परंतु यह अवश्य कह सकता हूँ कि संतों की गति ग्रंथ-शास्त्र भी नहीं जान सकते। हिरदे ने नैनूं पंडित, शेख़ तक़ी और धर्मा जैनी को समझाने का प्रयत्न किया, परंतु उन्हें हिरदे की बातें बेतुकी प्रतीत हुईं। इसलिये हिरदे उन्हें तुलसी साहिब के पास ले गया और उनके संशयों का निवारण करने के लिये तुलसी साहिब से विनती की।

तब तुलसी सुनि आदर कीन्हा। प्रीति भाव उठि आसन दीन्हा॥
दीन बिधी सब अपनी गाई। चरन परसि कै सीस चढ़ाई॥
मैं अनाथ हौं तुम्हरौ बारा। छिमा करौ मैं दास तुम्हारा॥
मैं औगुन की खानि अपारा। तुम गुन सीतल अपरम्पारा॥
तुम पंडित मैं अपढ़ अयाना। करौ दया तुम कृपानिधाना॥
ये हिरदे कछु ज्ञान न पावा। औगुन ज्ञान जो तुम्हें सुनावा॥
सीतल भये धीर तब आई। सुनि अस बचन बैठि भुँइ माईं॥[2]

जो लोग वाद-विवाद के उद्देश्य से आते, तुलसी साहिब इतनी नम्रता और प्रेम के साथ उनका स्वागत करते कि वे शांतिपूर्वक उनके वचन सुनते। वह उनकी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर ही उनकी शंकाओं का समाधान करते और उनको संतुष्ट कर देते।

इन सभी संवादों में यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि सभी संतों का उपदेश एक समान होता है। वे कभी यह दावा नहीं करते कि उनका उपदेश अन्य संतों के उपदेश से भिन्न है। पूर्ण संत हमें प्रभुप्राप्ति के इस अंतर्मुख मार्ग पर चलने की युक्ति सिखाते हैं, परंतु संतों के चले जाने के बाद समय बीतने के साथ-साथ लोग उनके वास्तविक उपदेश को भूल जाते हैं और बाहरमुखी क्रियाओं, रस्मों तथा कर्मकांड में फँस जाते हैं। वे उनके निर्मल रूहानी संदेश को बाहरी कर्मकांड का रूप दे देते हैं।

शेख़ तक़ी के साथ संवाद

शेख़ तक़ी नाम का एक फ़क़ीर हज से लौट रहा था। संयोग से उसने अपना खेमा तुलसी साहिब की कुटिया के सामने लगाया। यहाँ उसकी मुलाक़ात तुलसी साहिब के शिष्य हिरदे से हुई। उससे बातचीत करने पर शेख़ तक़ी समझ गया कि हिरदे शरीअत में विश्वास नहीं रखता, परंतु शेख़ तक़ी हिरदे की बातों से सहमत नहीं हुआ। तब हिरदे ने उस फ़क़ीर को अपने गुरु तुलसी साहिब से मुलाक़ात करने के लिये कहा। दोनों तुलसी साहिब के पास जा पहुँचे। तुलसी साहिब ने क़ुरान शरीफ़ का हवाला देते हुए शेख़ तक़ी को ख़ुदा के दीदार का तरीक़ा बताया। उन्होंने समझाया कि इनसान का शरीर ही असली मसजिद है। ख़ुदा से मिलने का रास्ता इनसान के शरीर में ही है। यह रास्ता 'नुक़्तए-सुवैदा' से शुरू होता है। 'कुन' यानी 'शब्द' ख़ुदा के घर के दरवाज़े की कुंजी है, लेकिन यह केवल कामिल मुर्शिद से ही मिल सकती है।

तुलसी साहिब की संगति और उनके वचनों ने शेख़ तक़ी के दिल पर गहरा प्रभाव डाला। कुछ समय बाद वह तुलसी साहिब की शरण में आ गया।

शेख़ तक़ी:

हिरदे कुफर बात सब कीन्हा। रोजा निमाज मेटि सब दीन्हा॥
और कितेब कुरान उठाये। खुदा नबी कर खोज मिटाये॥[3]

शेख़ तक़ी तुलसी साहिब के सामने उनके शिष्य की शिकायत करता हुआ कहता है कि इसने तो बड़े कुफ़्र की बात कह दी है कि रोज़ा-नमाज़ की कोई अहमीयत नहीं है। यह इस

बात पर भी विश्वास नहीं करता है कि क़ुरान और कतेब की रचना ख़ुदा के पैग़ंबर ने की है।

तुलसी साहिब:

तबक भिन्न चौधा बतलावौ। भिनि चौबीस पीर दरसावौ॥
कौन तबक में कौन बयाना। सो तकी कहिये हक्क इमाना॥
कौन तबक में नबी का बासा। तबक तबक का कहौं खुलासा॥[4]

शेख़ तक़ी की बात को तुलसी साहिब ने बड़े ग़ौर से सुना और आदर सहित शेख़ तक़ी से प्रश्न किया कि क़ुरान में लिखे कायनात, चौदह लोक, चौबीस पीर का भेद क्या है? चौदह लोकों में ख़ुदा किस लोक में रहता है, यह भी बताने की कृपा करो।

तकी तोल जाना नहीं, कहौ कुरान की बात।
दिल दरियाफ्त अपने करो, जो कुरान बिख्यात॥
खुदा चून बेचून है, अस अस कहत कुरान।
बिन जुबान अल्ला मियाँ, कस कस किया बखान॥
अल्ला अलिफ जुबान, बिना बदन जाहिर नहीं।
जुबाँ बदन के माहिं, तौ बेचूँ कहना नहीं॥[5]

शेख़ तक़ी की दुविधा को मिटाने के लिये आप फ़रमाते हैं: हे तक़ी! तू क़ुरान शरीफ़ के उपदेश को ठीक ढंग से नहीं समझ सका है। तू अपने अंदर झाँककर क़ुरान शरीफ़ में वर्णन किये गये सत्य को समझने का प्रयत्न कर। क़ुरान शरीफ़ में ख़ुदा को मायारहित लासानी परमतत्त्व कहा गया है। अल्लाह बेमिसाल है। वह शरीररहित भाव निराकार है।

वह गुप्त है, बाहरी आँखों द्वारा दिखाई नहीं देता। अल्लाह कोई विशेष भाषा तो बोलता नहीं, फिर ज़ुबान द्वारा उस ला-बयान को कैसे बयान किया जा सकता है?

तुलसी साहिब शेख़ तक़ी को समझाते हैं कि रूह अंदर जाकर ही उस लासानी ख़ुदा का दीदार कर सकती है। क़ुरान शरीफ़ में भी इसी आंतरिक प्रगति की ओर संकेत किया गया है:

साँची महजित तन को जाना। जा में चौधा तबक समाना॥
मक्का भिस्त हज्ज येहि माईं। मुल्ला काजी राह न पाई॥
मुहम्मद नूर जानि सब केरा। दोजख भिस्त में किया बसेरा॥
नूर नबी ने सब का कीन्हा। तुम हलाल बकरी कस कीन्हा॥
गुनहगार दोजख की रीति। करौ खून ये बहुत अनीती॥
जो महजित उन आप बनाई। सो हलाल करि कै तुम खाई॥
मिट्टी महजित कबर बनाई। झूठा हक ईमान बताई॥
साँची महजित तन मन साईं। खिलकत खुदा खलक के माईं॥
नूर नबी सब माहिं बिराजा। जाकी हर दम उठै अवाजा॥
नूर नबी सब माहिं बिचारा। तब दोजख से होइ है न्यारा॥
नासुत मलकुत जबरुत भाई। लाहुत राह नबी की पाई॥
लामुकाम रब साहिब साँईं। वाको खोज भिस्त तब पाई॥
सेख तकी तक थक रहे भाई। ज्वाब स्वाल मुख से नहिं आई॥[6]

तुलसी साहिब समझाते हैं कि क़ुरान शरीफ़ में जिन चौदह तबक़ों यानी चौदह मंडलों के बारे में संकेत किया गया है, वे शरीररूपी सच्ची मसजिद के अंदर हैं। जो लोग अंदर जाकर रूह की आँखों से सब कुछ देखने के बजाय, मौलवियों और क़ाज़ियों के पीछे लगकर मक्के के हज द्वारा बहिश्त (स्वर्ग) पहुँचने की आशा रखते हैं, वे वास्तव

में अज्ञानता का शिकार हैं। सारे संसार की रचना मुहम्मद के नूर से हुई है और वह नूर प्रत्येक जीव के अंदर समाया हुआ है। जब प्रत्येक जीव के अंदर प्रभु का नूर है तो किसी जीव की हत्या करना परमात्मा द्वारा बनाई गई मसजिद को गिराने के समान है। प्रभु द्वारा बनाई गई मसजिद को गिराकर मिट्टी और ईंट-पत्थरों की मसजिद या मज़ार की पूजा करने पर बहिश्त में कैसे निवास मिल सकता है?

तुलसी साहिब समझाते हैं कि नबी का नूर हर एक के अंदर है और उसके कलमे (शब्द) की आवाज़ हर समय सबके अंदर उठ रही है। जो व्यक्ति रूह को अंदर उस नूर और आवाज़ के साथ जोड़ता है, वह नरक और स्वर्ग दोनों की सीमा से ऊपर उठ जाता है। वह नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत को पार करके प्रभु के नूर तक पहुँच जाता है, जहाँ संपूर्ण सृष्टि के मालिक का निवास है। उस कुलमालिक के साथ मिलाप करना ही उस सच्चे स्वर्ग में पहुँचना है, जहाँ आत्मा को वापस इस नाशवान संसार में नहीं आना पड़ता।

सुनकर तकी तका नहिं बोला। मुख भया बंद जुबाँ नहिं खोला।[7]

तुलसी साहिब की इतनी सटीक बात को सुनकर शेख़ तक़ी हैरान होकर उन्हें देखता ही रह गया। उसकी मानो ज़ुबान ही बंद हो गई।

तुलसी कहै कहौ कस भाई। जा से दिल बिच होइ निसाई॥[8]

तुलसी साहिब ने बड़ी नम्रता से कहा कि मैं आपको अब किस प्रकार समझाऊँ, ताकि आपके दिल को तसल्ली हो जाये।

शेख़ तक़ी:

सुनकर तकी ज्वाब अस दीन्हा। मुरसिद मियाँ मरम हम चीन्हा॥[9]

तुलसी साहिब की बात सुनकर शेख़ तक़ी ने जवाब दिया – हे मुर्शिद! आपने जो फ़रमाया है वह मैं समझ गया हूँ।

तुलसी साहिब:

कुल जहाँ आलम है कुन से, पट अंबर अल्ला से है।
यह हर इक ना कोइ किसी पै, भेद दोस्ती दिल मिलै॥
महरम मियाँ मनसूर आशिक, वह है बेचूँ बेनमूँ।
यह किताबों में नहीं है, खुद खुदा का राज है॥[10]

तुलसी साहिब आगे ताकीद करते हुए कहते हैं: संपूर्ण सृष्टि कुन (शब्द) से उत्पन्न हुई है, जो अल्लाह का ही रूप है। इसका भेद उसी को मिलता है जो दिल से उससे दोस्ती यानी प्रेम करता है। वह कुलमालिक, 'बेचूँ' यानी मायारहित और 'बेनमूँ' यानी लासानी (बेमिसाल) है। उसका रहस्य मनसूर जैसे बिरले आशिक़ ही जानते हैं। पुस्तकों में ख़ुदा का ज़िक्र है, ख़ुदा का हाल बयान किया गया है, परंतु ख़ुद ख़ुदा उन पुस्तकों में कहीं नहीं है।

दिल दिया और रूह रोशन, है हसन तन हुस्न को।
जब तबक चौधा दिये हैं, आदि खुदा को जानिये॥[11]

हमें तो उस आदि-जुगादि कुलमालिक की तलाश करनी चाहिये, जिसने हमें यह अति सुंदर शरीर बख़्शा है, जिसने इसके अंदर दिल और अपने नूर से भरपूर आत्मा रखी है और इस शरीर के अंदर चौदह तबक़ टिकाये हुए हैं।

ऐन अन्दर चश्म को रे, खोल देखो कौन है (म्याँ)।
कुल खलक आलम इसम बिच, दिल हिये में खसम है॥[12]

ख़ुदा का दीदार करना चाहते हो तो आंतरिक आँख खोलो। संपूर्ण कायनात ख़ुदा के कलमे (शब्द) के अंदर समाई हुई है। वह इस्मे आज़म (नाम) जो ख़ुदा की कायनात का सृजन करनेवाली शक्ति है, वह जीव के अंदर है। ख़ुदा जिसे भी मिलता है, अपने अंदर उसके इस्म, कुन, कलमे, शब्द के साथ रूह के जुड़ने पर ही मिलता है। कोई भी केवल पुस्तकों के पाठ-विचार द्वारा ख़ुदा के साथ मिलाप नहीं कर सकता।

खोज मुरशिद रे मुरीदो, राह रोशन यार को (म्याँ)।
रूह मेहर मुरशिद के दसतों*, दिल फजल दिलदार में॥
रूह चढ़ावौ रे अंबर को, हो खबर उस यार को।
ला पै जब रब राह चीन्है, पल में लखै इसरार को॥
कुफल खोले रे अधर के, रूह से फोड़ असमान म्याँ।
जान मलकूत नासूत को, जबरूत की कर कदर म्याँ॥
जा मिलै लाहूत रे जब, होश हो हाहूत का।
लौ लगी जो ला के अन्दर, रब मिले मनसूर को॥[13]

हे प्यारे मुरीद! किसी कामिल मुर्शिद की खोज करो, जो तुम्हें सच्चे ख़ुदावंद के मार्ग पर चलने के लिये रोशनी यानी ज्ञान दे। मुर्शिद की रहमत से मन में उस दिलदार का इश्क़ पैदा हो जायेगा। फिर मुर्शिद द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार

* हाथों द्वारा

रूह को अंदर आकाश में चढ़ाओ। रूह के अंदर जाते ही उस दिलदार को पता चल जायेगा कि मेरा प्यारा मेरी तलाश कर रहा है। जब रूह ताले को खोलकर आंतरिक आकाश में चली जायेगी तो आकाश का परदा फाड़कर मलकूत, नासूत, जबरूत, लाहूत और हाहूत आदि अंदर की मंज़िलों को पार करके उस लामकान दरबार में पहुँच जायेगी, जहाँ उस सच्चे परमात्मा का निवास है। परंतु इस कार्य में वही सफल होगा, जिसके अंदर मनसूर की तरह इश्क़ की अग्नि प्रबल हो जायेगी।

रोजा निमाज हर दम किया, उस यार को दिल ना दिया।
खोजा नहीं अपना पिया, तुलसी तकी दोजख लिया॥[14]

तुलसी साहिब ने शेख़ तक़ी के सामने एक और दलील पेश करते हुए कहा, 'अगर बाहरी तौर पर रोज़ा-नमाज़ की रस्म अदा करते रहे, परंतु उस ख़ुदा को अपना दिल नहीं दिया और अपने प्रियतम की खोज अपने अंदर नहीं की, फिर तो दु:खों की नगरी में जाना ही पड़ेगा।'

शेख़ तक़ी:

तकी कहै तुलसी मियाँ, तुम गुर पीर हमार।[15]

तकी दस्त दोउ जोड़ि कै, करि सलाम सिर टेक।
नेक नजर अपनी करौ, बन्दा तकी निहाल॥[16]

उसने कहा आप हमारे गुर पीर हैं, फिर दया-मेहर की विनती की और उनकी शरण माँगी।

धर्मा और कर्मा जैनियों के साथ संवाद

काशी में रहनेवाले कर्मा और धर्मा जैनमत के अनुयायी थे। जैन धर्म के प्रचार के लिये वे एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये यात्रा करते रहते थे। तुलसी साहिब की महिमा सुनकर कर्मा और धर्मा उनके साथ वार्तालाप के लिये आ पहुँचे। तुलसी साहिब परमार्थ के संबंध में चर्चा करने से पहले हर व्यक्ति से उसकी धार्मिक मान्यता के बारे में जानकारी लेते थे।

धर्मा और कर्मा के विचार सुनकर तुलसी साहिब ने उन्हें जैन धर्म की मान्यताओं को समझाया। आपने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि रूहानियत कोरी बातों का विषय नहीं है, बल्कि अंतर में जाकर आंतरिक दृष्टि से सब कुछ स्वयं प्रत्यक्ष देखने का विषय है।

तुलसी साहिब:

कहि तुलसी तुम मर्म बताओ। जैन धर्म का भेद सुनाओ॥[17]

कर्मा और धर्मा:

कर्मचंद और बोले धर्मा। होइ मुक्ति जब काटै कर्मा॥
तप कर संजम बन को जावै। हरी त्याग कर जीव बचावै॥
टाटक ध्यान जपै नौकारा। जब या जीव को होइ उबारा॥ ...
तीर्थंकर चौबीसो जाना। कर्म काटि पहुँचे निरबाना॥[18]

कर्मा और धर्मा अपनी धार्मिक आस्था के बारे में कहते हैं कि मुक्ति तभी होगी जब कर्मों का जाल कट जायेगा। जब व्यक्ति संयम धारण करके जंगल में तप करने के लिये जाता है और जीवों की रक्षा को ध्यान में रखते हुए हरी सब्ज़ियों का सेवन भी त्याग देता है, त्राटक यानी खुली आँखों से एकटक ध्यान करता है और नवकार मंत्र का जाप करता है, तब इस जीव का उद्धार होता है। चौबीस तीर्थंकरों ने भी इसी तरह कर्मों को काटकर मुक्ति प्राप्त की थी।

तुलसी साहिब:

तुलसी पूछै ताइ, भेद कहो निरबान को।
तुम कस पायै जाइ, सो देखी अपनी कहौ॥[19]

देखौं अबै तो मन पतियावै। अइसी तत्त बात मन भावै॥
ये सब कही सुनी हम जानी। मुए मुक्ति की करौ बखानी॥
मूए पर कोइ आवै न भाई। जीवत में केहु पहुँचि न पाई॥
ता की खबर साँच कस आई। सो धर्मा तुम कहौ सुनाई॥[20]

अर्थात् तुम निर्वाण यानी मुक्ति का भेद बताओ और वह भेद जो तुमने ख़ुद अनुभव किया है, अपनी आँखों से देखा है उसके बारे में कुछ बताओ। ऐसा सार बताओ जो मन को भा जाये, जिसे सुनकर मन संतुष्ट हो जाये। अभी तो तुम कही-सुनी बातें दोहरा रहे हो। मृत्यु के बाद मुक्ति की प्राप्ति की बात करना कही-सुनी बात ही है, यह केवल भ्रम है। मृत्यु के बाद कौन किसे बताने आता है कि सचमुच मुक्ति मिल गई है या नहीं। इस बात की सच्चाई का कैसे पता चल सकता है?

धर्मा:

कहै धर्मा तुलसी सुनौ, कहौं भेद बिस्वास।
बिन संजम पावै नहीं, तप जप बिना उपास॥[21]

हे तुलसी! असल और विश्वास योग्य बात तो यह है कि संयम, तप, जप और उपवास के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

तुलसी साहिब:

सुनु धर्मा बिधि बात। संजम तप मुक्ती नहीं॥
पद पावै निरबान। चढ़ि अकास मुक्ती मिलै॥[22]

आप समझाते हैं कि मुक्ति कठोर संयम, तप और त्याग आदि द्वारा नहीं, बल्कि सुरत को अंदर के आकाश में ले जाने से ही मिलती है।

आप कर्मा और धर्मा को जैन धर्मग्रंथों के संदर्भ से एक जैनी सेठ सुदर्शन की कथा सुनाते हैं। उस सेठ का नियम था कि वह रात के समय दीया जलाकर जाप किया करता था। जब दीया बुझ जाता तो वह अपना जाप बंद कर देता था। उसके घर में आई नई बहू को इस बात का पता नहीं था। जब दीये में तेल ख़त्म होने लगता, तो वह उसमें और तेल डाल देती। वह बेचारा सारी रात प्यासा ही जाप करता-करता प्राण त्याग गया। शास्त्रों के वर्णन के अनुसार प्यासा मरने के कारण उसे मेंढ़क की योनि मिली। उसके पश्चात उसे देवता की योनि मिली और पुण्य कर्मों के समाप्त होने पर पुन: मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ा: *पुनि पुनि जीव कर्म बस रहिया। जाप प्रताप यही बिधि भइया॥*[23]—आप समझाते हैं कि जप-तप आदि कर्म जीव को कर्म और फल के इस लोक के साथ ही बाँधकर रखते हैं, मुक्ति का साधन नहीं बनते।

तप संजम उपवास बताई। जो त्यागै सो पावै भाई॥
तप कर राज मिलै पुनि जाई। राज भोग पुनि नर्क समाई॥
कष्टै फल पावै पुनि भोगा। परै चारि गति उपजै सोगा॥
इंद्री दवन उपास कराई। बार बार भौसागर आई॥
इंद्री भोग करै पुनि सोई। अस बिधि इन्द्री संजम होई॥[24]

व्रत, तप, संयम यानी इंद्रियों के दमन आदि द्वारा साधक जिन वस्तुओं का त्याग करता है, वही उसे अगले जन्म में कई गुणा होकर मिल जाती हैं। जो तप करता है, उसे राजपाट मिल जाता है। जो शरीर को अनेक प्रकार के कष्ट देता है, उसे अगले जन्म में अनेक प्रकार के विषय-भोग और सुख प्राप्त हो जाते हैं, जो बाद में उसके विनाश का कारण बनते हैं। जो व्रत रखता है और इंद्रियों का दमन करता है, वह उनका फल भोगने के लिये बार-बार भवसागर में चक्कर काटता रहता है।

धर्मा:

तुम तौ मुक्ति आज दरसावा। या कौ भर्म बहुत मोहिं आवा॥ ...
मुक्ति भाव मो को दरसावौ। मोरे दिल का भर्म नसावौ॥[25]

जिस मुक्ति की आप बात कर रहे हैं उससे मेरे मन में दुविधा पैदा हो गई है। कृपा करके मुझे मुक्ति पाने की राह दिखाओ ताकि मेरे मन की दुविधा दूर हो जाये।

तुलसी साहिब:

गुनष्टान चौधा कहै, जैन मते में जान।
तुरक तबक चौधा कहे, बाम्हन भवन बखान॥

चौधा भवन बाम्हन कहैं, तीनौ मत इक सार।
आदि पार कोइ ना कहै, लखा न रचनेहार॥[26]

आप समझाते हैं कि मुसलमान चौदह तबक़, हिंदू चौदह भुवन और जैनी चौदह गुनष्टान बताते हैं। परंतु इनसे पूर्व आदि समय की बात कोई नहीं कहता, क्योंकि किसी ने इनके रचयिता को देखा नहीं।

संत सरन जो प्रानी जावै। ता को संत राह बतलावै॥ ...
बिन संतसंगति पावै नाहीं। तुलसी कहै सबै गोहराई॥[27]

जो जीव संतों की शरण में जाता है, संत उसे मुक्ति का मार्ग बताते हैं। यह मुक्ति संतों की संगति के बिना प्राप्त नहीं हो सकती। सभी संतों ने अपने उपदेश में इस सच्चाई को दृढ़ता से कहा है।

संत सुरति से चढ़ैं अकासा। गगन फोड़ि वो करैं निवासा॥
पाँच तत्त का वहाँ न बासा। चंद सूर जल पवन न स्वासा॥
पार परे सत पुरुष अकेला। संत सुरति नित करती सैला॥
जो कोइ दीन लीन होइ आवै। ता को सतगुरु राह बतावै॥[28]

संतों की सुरत अंदर आकाश का परदा फाड़कर उस परमधाम में पहुँच चुकी होती है, जहाँ सतपुरुष का निवास है। वहाँ न तो पाँच तत्त्व हैं, न चंद्रमा, सूर्य, जल, पवन आदि। जो जीव दीनता और समर्पण भाव से संतों की शरण में जाता है, वह उसकी सुरत को अंदर स्थिर करके निजघर पहुँचने की युक्ति समझा देते हैं।

तुलसी देखि बिहाल, तुरत निहाल ता पर भये।
सुरति सैल बतलाइ, तब जिव की संसय गई॥
धर्मा कर्मा जाइ, तुरत सीस चरनन धरे।
लीन्ही अज्ञा पाइ, उठे धाइ घर को चले॥[29]

तुलसी साहिब के उपदेश का कर्मा और धर्मा पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने नम्रतापूर्वक आपकी शरण में आने के लिये विनती की। तुलसी साहिब ने दया करके उन्हें सुरत-शब्द के अभ्यास की युक्ति समझा दी। फिर वे दोनों आज्ञा लेकर अपने-अपने घर की ओर चले गये।

माना, नैनूँ और स्यामा आदि पंडितों के साथ संवाद

काशी के निवासी माना, नैनूँ, स्यामा और कई पंडितों ने तुलसी साहिब के विषय में यह सुन रखा था कि वह ग्रंथ-शास्त्रों, देवी-देवताओं और अवतारों की पूजा-भक्ति के बजाय अपने अंतर में ही सब कुछ देखने का उपदेश देते हैं। इस विषय पर चर्चा करने के लिये वे इकट्ठे होकर उनके पास पहुँच गये और अपनी नाराज़गी प्रकट करते हुए कहने लगे:

नैनू स्यामा यों कर बोले। नाक फुलाइ बचन अस खोले॥
नैन सुरख और मूछैं मोड़ी। भुजा चढ़ी पुनि भौंहैं टेढ़ी॥
मुख सों कड़कि स्वाल अस डारा। तुलसी तुम से करिहौं रारा॥ ...
हम पंडित बिद्या बिधि आगर। बेद बिधी से कहौ उजागर॥
हम संग जीति जाव गुरुज्ञानी। तुम्हरा साध मता तब जानी॥
बिना पुरान ज्ञान कहँ पावा। बिना सास्तर कहौ कहँ से आवा॥
बेद बिना काहू नहिं पावा। या के परे कोऊ नहिं गावा॥[30]

नैनूँ और स्यामा भुजायें चढ़ाकर, भौंहें टेढ़ी करके, बड़े गुस्से से आग बबूला होकर कहने लगे कि हम तुम्हारे साथ वाद-विवाद करने आये हैं। हम तो विद्या और विधि के श्रेष्ठ ज्ञानी हैं, इसलिये हमारे सामने वेदों में बताई विधि के अनुसार सब बातें स्पष्ट करो। अगर तुम हमसे जीत गये तो तुम्हें महाज्ञानी मान लेंगे और तभी मानेंगे कि तुम्हारा संतमत भी कोई

मायने रखता है। प्रश्न यह है कि पुराणों को पढ़े बिना ज्ञान कहाँ से प्राप्त हो सकता है। न तो शास्त्र पढ़े बिना ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न ही वेदों के बिना परमार्थ का रहस्य जाना जा सकता है। वेदों से परे ज्ञान का स्रोत किसी ने नहीं बताया है।

तुलसी साहिब:

तुलसी ज्वाब धीर सों दीन्हा। सुनौ भेद भाखौं मैं चीन्हा॥ ...
चारि बेद जो गुप्त रहाई। ता में कागद लगै न स्याही॥
ता को भेद बेद नहिं जानै। ता के परे कहे को मानै॥[31]

तुलसी साहिब ने बड़े धैर्य से उनके प्रश्न का जवाब दिया। उन्होंने कहा: मैंने जो अनुभव किया है, उसका भेद सुनो। वास्तव में चार वेद अंतर में गुप्त रूप से विद्यमान हैं। उन वेदों की रचना के लिये कोई काग़ज़ या स्याही का प्रयोग नहीं हुआ है। इन रचे हुए वेदों में भी इनका भेद नहीं लिखा हुआ है, इसलिये इन रचे गये वेदों से परे की कही बात कौन मानेगा?

अब सत्तहि सत्त कहौं मत मूल, नहीं अस्थूल न नाम कहायौ।
आदि अनादि की आदि कहौं, सो अगाध उपाध जो एक न गायौ।
आदि पुरुष निःनाम अनाम, सो ठाम न ठौर न धाम कहायौ।
तास हिलोर भया इक सोर, सोर लहरि समुद्र की खाइ कहायौ।
खाइ का ब्यान कहौं सत नाम, सो धाम रहै सतलोक में आयौ॥
नाम निअच्छर की लघुता, रँग ता से भये सोला ब्रह्म जनायौ।
तुलसी बिधि ब्रह्म की आदि कही,
अब ब्रह्म भयौ जग जीव जो भायौ।[32]

तुलसी साहिब ने समझाया कि जब कुछ भी नहीं था, तब वह अनादि, आदिपुरुष था। वह रंग-रूप और माया से निर्लेप था।

उसका न कोई नाम था और न ही कोई निवासस्थान। उस अनामी आदिपुरुष के अंदर एक हिलोर, एक भारी गर्जना उत्पन्न हुई, जो शब्द के समुद्र में बदल गई। उससे सतलोक यानी सतनाम की रचना हुई। उस शब्द (नाम) से सोलह निर्गुण ब्रह्म उत्पन्न हुए, शेष रचना निर्गुण ब्रह्म का पसारा है। आप समझाते हैं कि जिस साधक को जिस मंज़िल तक जानेवाला गुरु मिला वह वहाँ के मालिक को ही परमपिता 'ब्रह्म' मानने लगा।

माना पंडित:

वैदन कही आदि चलि आई। ता को छाँड़ि अंत कहँ जाई॥
बेद से कौन बात है न्यारी। ता को ढूँढ़ैं हाथ पसारी॥[33]

वेदों में कही गई नीति की बातें आदिकाल से चली आ रही हैं, वेदों में कही बातों से आख़िर कौन-सी न्यारी बात हो सकती है, जिसको ढूँढ़ने के लिये हमें इधर-उधर भटकना पड़े।

तुलसी साहिब:

निराकार को नेति पुकारा। जोति सरूप होत उँजियारा॥
ऐसे बेद कहै समझाई। कहै बेद हम भेद न पाई॥
ता की महिमा साखि बखाना। बेद कहै हम मरम न जाना॥ ...
जा के पीछे बेद रचाना। ता कौ परथम कीन्ह बखाना॥[34]

अंत में वेदों ने भी उस निराकार को नेति-नेति कहा है यानी वह ऐसा नहीं है। वेद भी केवल परमात्मा की महिमा का ही गुणगान करते हैं जबकि उसका भेद नहीं बता पाते।

जिस परमशक्ति को बताने के लिये वेद रचे गये उस आदिपुरुष की बात तो कहो!

माना पंडित:

कहै माना तुलसी सुन बानी। ये तौ तुम ने कूर बखानी॥
जग के पीछे बेद बतावा। यह हमरे मन में नहिं आवा॥
तुम तो कहौ जगत है पहिले। पुनि फिर रचा बेद का खेले॥
ऐसी बात अनीति बखानी। अब सुनियौ हम से सहदानी॥
कहौ बैराट रूप भगवाना। नाभि कँवल ब्रह्मा उतपाना॥
तिन पुनि बेद चारि रचि लीन्हा। ऋगु और साम जजुर को कीन्हा॥
और अथरवन कीन्ह बनाई। ता पीछे सृष्टी उपजाई॥[35]

माना पंडित ने तुलसी साहिब से कहा: तुम ग़लत बात कह रहे हो। तुम कह रहे हो कि सृष्टि बनने के बाद वेद रचे गये, यह बात हमारे मन को ठीक नहीं लगती। संसार की रचना पहले और वेदों की बाद में हुई, यह तो तुमने नीति के विरुद्ध बात कही है। अब हम तुम्हें प्रमाणिक बताते हैं कि भगवान की नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने ऋग्वेद, सामदेव, यजुर्वेद और अथर्ववेद की रचना की। सृष्टि की रचना तो बाद में की गई।

तुलसी साहिब:

अब कहौं अगम निगम गति भाखी। बेदन में मिलिहै नहिं साखी॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस न रहिया। नहिं बैराट निरंजन भइया॥ ...
पिरथम पुरुष अनाम अकाया। रहै नहीं बैराटी माया॥
जिन से सत्त नाम भया जाना। चौथा पद सोइ संत बखाना॥ ...

तब नहिं बेद बेद का करता। रूप रेख बिन रहै अकरता॥ ...
जग संसार थपा था पहिले। पुनि फिरि रचा बेद का खेलै॥[36]

मैं भी उस अगम परमात्मा और निगम यानी वेदों के बारे में बताता हूँ। दरअसल वेदों में उस परमात्मा का भेद बतानेवाला कोई प्रमाणिक वृत्तांत नहीं है। जिस समय ब्रह्मा, विष्णु और महेश नहीं थे, निरंजन भी नहीं था और माया भी नहीं थी, तब एकमात्र वह अनामी और निराकार अनादि पुरुष यानी परमात्मा ही था। उसी से सतनाम यानी सतलोक की रचना हुई। संतों ने इसी को चौथा पद कहकर बयान किया है। उस समय वह रूपरेख से रहित था। उस समय न वेद थे, और न ही उनको रचनेवाला ही था। सबसे पहले तो इस संसार की रचना हुई। वेदों की रचना तो बहुत बाद में हुई।

एक अगत्त अगाध अनाम, सो धाम न गाम न ठाम ठिकाना।
जहँ लख्य अलख्य कौ खेल नहीं,
सो खलक्क बिचारे ने काहे को जाना।
ता की बिधी कोइ संत लखै, सो अपेल अकेल का रूप न नाना।[37]

अपनी बात का और खुलासा करते हुए तुलसी साहिब फ़रमाते हैं: वह अगम, अगाध और अनामी है। सर्वव्यापी होने के कारण उसका कोई विशेष धाम, ग्राम या ठौर-ठिकाना नहीं है। उस अलख को देख पाना बड़े-बड़े ज्ञानीजनों के लिये भी संभव नहीं, फिर भला आम लोग उसे कैसे जान सकते हैं। वह तो एकमात्र अटल सत्ता है, उसके अनेक रूप नहीं हो सकते। उसको पाने की विधि कोई संत ही जानता है।

माना और स्यामा:

माना स्यामा यों करि बोले। तौ पुनि रचा झूठ का खेले॥
ब्यास भागवत कही बखाना। सुनै मुक्ति जो होइ निदाना॥
सुनिया की मैं साखि बताऊँ। सुकदेव कह्यौ परीछित राऊ॥[38]

तो यह सब जो लिखा गया क्या वह झूठ है? वास्तव में भागवत की कथा स्वयं महर्षि व्यास ने बखान की है, जिसे सुनने से निश्चित ही मुक्ति हो जाती है। आपने मुनि शुकदेव द्वारा भागवत की कथा सुनने से राजा परीक्षित को मुक्ति मिलने का दृष्टांत तो सुना ही होगा।

तुलसी साहिब:

सुने सुने मुक्ती बर होई। तौ सब जग बूड़ै नहिं कोई॥
सुने सुने मुक्ती जो पावै। गुड़ गुड़ कहे मीठ मुख आवै॥[39]

जिस प्रकार गुड़-गुड़ कहने से मुँह मीठा नहीं होता, उसी प्रकार धर्मग्रंथों को पढ़ने और सुनने से किसी को मुक्ति नहीं मिलती। यदि केवल धर्मग्रंथों का पाठ सुनने से मुक्ति मिल जाती तो कोई भी जीव भवसागर में न डूबता।

कर्म कराइ जगत बौराया। ता से आदि अंत नहिं पाया॥[40]

सारा संसार मनचाहे कर्मों को मुक्ति का साधन समझने की अज्ञानता का शिकार है और इसी कारण उस अमर, अनादि परमधाम तक नहीं पहुँच पाता।

माना:

सो तुलसी मोहिं समझ सुनावौ। या की समझ बूझ समझावौ॥[41]

कृपा करके मुझे मुक्ति के बारे में भलीभाँति समझाओ, ताकि मेरे मन की तसल्ली हो जाये।

तुलसी साहिब:

अनेक दिवस पाहन कर आसा। अंत तहाँ पुनि लीन्हौ बासा॥
ऐसी कहाँ कहाँ की गाऊँ। जेहिं पूजौं तेहि माहिं समाऊँ॥[42]

लोमश ऋषि का उदाहरण देते हुए आप समझाते हैं कि लोमश ऋषि ने अलग-अलग जन्मों में अलग-अलग ठाकुरों की पूजा-भक्ति की, जिसके फलस्वरूप उन्हें पत्थरों में जन्म लेना पड़ा। आप परमार्थ के इस अखंड सिद्धांत का वर्णन करते हैं: जैसे सेवै तैसा होइ। जो पत्थरों की पूजा करता है, पत्थर बन जाता है, जो तीर्थों के स्नान पर बल देता है या व्रत आदि साधन अपनाता है, उसे उन कर्मों के अनुसार फल तो मिलता है, परंतु मुक्ति नहीं मिलती।

अनेक उपाय करने पर भी जब लोमश ऋषि मुक्ति का मार्ग नहीं खोज पाया, तब उसके पिता ने कहा:

लोमष ऋषि मैं कहौं बिचारा। संत सरनि से होइ उबारा॥
तीरथ ब्रत सब झूठ पसारा। नहिं होइ है या से निरबारा॥[43]

हे लोमश ऋषि! मैं भलीभाँति विचार करके कह रहा हूँ कि संतों की शरण में जाने से ही जीव का उद्धार हो सकता है। तीर्थ-व्रत आदि अन्य साधनों से मुक्ति नहीं मिल सकती।

माना, स्यामा और नैनूँ:

तब तीनों मिलि बोले बानी। ये बातैं तो अकथ कहानी॥
हम तौ बेद बिधी में भूला। ये सब आहि कर्म बिधि मूला॥
तुम तौ स्वामी और सुनावा। बेद बिधी को सब समझावा॥
सब बिधि भिन्न भिन्न कर भाखी। तब सूझा हमरी निज आँखी॥[44]

वे तीनों तुलसी साहिब से सहमत होकर कहने लगे कि हम तो वेदों के विधि-विधान को मानते हुए कर्मजाल में फँसे हुए थे। हे स्वामी! आपने इन वेदों का रहस्य कुछ और ही बताया है, परमात्मा के असली रहस्य को भलीभाँति समझाया है। इस प्रकार आपके समझाने पर ही हमारी ज्ञान की आँख खुली है।

मानगिरी संन्यासी के साथ संवाद

मानगिरी एक वेदांती पंडित था जिसे गीता का गहरा ज्ञान था और उसे इस ज्ञान का अभिमान भी था। इसी ज्ञान के कारण उसे परमहंस की उपाधि प्राप्त हुई थी। उसे सूचना मिली कि माना, स्यामा और नैनूँ ने तुलसी साहिब के सामने हार मान ली है। यह जानकर वह भी अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिये तुलसी साहिब के पास जा पहुँचा।

सब पंडित मिलि दीन्ह बिचारा। माना स्यामा नैनू हारा॥
सुन कर परमहंस इक आवा। मानगिरी सन्यासी नाँवाँ॥[45]

उसने शास्त्रों के आधार पर सृष्टि की रचना, वेदों की रचना और अनेक प्रकार के पुण्य कर्मों के बारे में अपने विचार तुलसी साहिब के सामने रखे। उसने मन, शब्द, ब्रह्म, जीव और काल, उत्पत्ति और विनाश, तीन देवताओं और दस अवतारों के बारे में प्रश्न पूछे और तुलसी साहिब ने बड़े विस्तारपूर्वक उत्तर दिये।

मानगिरी:

मानगिरी बोले अस बाचा। जो वेदांत कहै सो साचा॥
जो बेदन ने कही बखाना। गीता सत्त कहै परमाना॥
एक ब्रह्म है सब के माईं। और कोई दूजा है नाहीं॥

ये बेदांत कहै गोहराई। गीता में भगवान सुनाई॥
मानगिरी कहै सुनौ गुसाँईं। मैं बेदांत कहौं समझाई॥
आतम सब में ब्रह्म बखाना। ता को नाम निरंजन जाना॥
सो तो ब्रह्म हमीं हैं भाई॥ हम को छाँड़ि अंत नहिं पाई॥[46]

वेदांत यानी वेद और उनकी व्याख्या करनेवाले ग्रंथों में जो भी कहा गया है, वह बिलकुल सत्य है। वेदों में कही बात को गीता में सत्य प्रमाणित किया गया है। भगवान कृष्ण ने वेदांत में कही बात को दोहराया है कि सब में वही एक ब्रह्म है। मानगिरी बोले कि अब मैं आपको वेदांत समझाता हूँ। सभी के अंदर ब्रह्म है, उसी को तुम निरंजन समझो। हम जैसे संन्यासी उस ब्रह्म का स्वरूप हैं। हमारे अलावा कोई दूसरा उस ब्रह्म का भेद नहीं पा सकता।

तुलसी साहिब:

कहै तुलसी स्वामी सुन बाता। परमहंस बेदान्त सनाता॥
अब हम तुम से पूछैं बाता। ब्रह्म कहौ तुम आदि सनाता॥
तुम तो ब्रह्म आप को जाना। रहो तत पाँच सरीर बिधाना॥
तुम पुनि पाँच तत्त कस आया। रूप रेख बिन रहौ अकाया॥ ...
पाँच तत्त में केहि बिधि आये। तत्त नहीं तब कहाँ रहाये॥ ...
जब बेदान्त हतो नहिं भाई। तब नहिं गीता कथा बनाई॥ ...
तब की कहौ सकल बिधि गाई। तो तुलसी के मन आई॥[47]

हे परमहंस! तुम वेदांत को सनातन (नित्य) बताते हो और दूसरी ओर तुम ब्रह्म को आदि सनातन कहते हो। तुम ख़ुद को भी ब्रह्म कह रहे हो, जबकि शरीर पाँच तत्त्वों से बना है। जब तुम ख़ुद 'रूपरेख' के बिना देहरहित हो तो इस पाँच

तत्त्वों से बने शरीर में कैसे आये? जब ये तत्त्व नहीं थे तो तुम कहाँ थे? जब वेदांत नहीं थे, गीता की कथा भी नहीं थी, तुम उस समय की अवस्था बताओ ताकि इस तुलसी के मन को तसल्ली हो जाये।

मानगिरी:

ये तुम्हरे मन में नहीं आई। सब को तुमने दीन्ह उड़ाई॥
ब्रह्म सनातन सब में भाखा। सो तो तुमने एक न राखा॥[48]

तुमने वेदांत या गीता की सारी बात को हवा में उड़ा दिया यानी असत्य सिद्ध कर दिया। वेदांत में ब्रह्म को ही सनातन बताया गया है। वह भी तुम नहीं मान रहे हो।

तुलसी साहिब:

ब्रह्म ब्रह्म सब तुमहिं बखानौ। आदि ब्रह्म की कछु न जानौ॥
भाखौ ब्रह्म कहाँ से आया। कहौ ब्रह्म को कौन बनाया॥
कृष्न समीपी पंडवा, गरे हिवारे जाइ।
लोहे को पारस मिलै, तौ काहे काई खाइ॥[49]

हे परमहंस! ब्रह्म की सारी बात आपने कही हैं, लेकिन आदि ब्रह्म के बारे में आप कुछ नहीं जानते। ज़रा बताओ, यह ब्रह्म कहाँ से आया? किसने ब्रह्म को बनाया? गीता में वर्णित भगवान कृष्ण पाँडवों के निकट संबंधी थे, फिर भी उन पाँडवों के शरीर हिमालय में क्यों गल गये? लोहे को अगर पारस मिल जाये तो क्या मजाल कि उसे ज़ंग खा जाये?

ब्रह्म बेद बैराट की, भिनि भिनि भाखूँ आद।
आतम अंत वेदांत की, बूझैं बिरले साध॥[50]

या की साखि समझ नहिं आवैं, झूठ साच निरनै न बुझाई।
खोल पोल बिधि कोई न बिचारै, टेकै टेक चलाई॥[51]

आतम ब्रह्म अबाच बतावैं, कहत दृष्टि नहीं देत दिखाई।
बिन देखे बरनन जिन कीन्हा, नहिं परमान कहाई॥[52]

पिरथम एक अनाम अबाचा, वा की गति मति संत जनाई।
सत्त लोक पर नाम अबाचा, सो पद चौथे माईं॥[53]

तुलसी साहिब कहते हैं कि मैं ब्रह्म, वेद और संसार आदि का मूल बताता हूँ। वेदांत की आत्म-विद्या को कोई बिरला साधु ही जानता है। इसका भेद समझ पाना मुश्किल है। इसमें झूठ और सच को समझना कठिन है। कोई इस बात पर गहराई से विचार नहीं करता, बस सब अंधानुकरण किये जा रहे हैं। आत्मब्रह्म कहने-सुनने से परे है, वह दिखाई नहीं देता, ऐसा कहनेवालों ने जिस ब्रह्म का वर्णन किया है, उसको प्रमाणित कैसे माना जा सकता है? सत्य तो यह है कि सर्वप्रथम एक अकथ-अनाम शक्ति थी, जिसके बारे में केवल संतजन ही जानते हैं। वह परमशक्ति अकथ-अनाम सतलोक यानी चौथे लोक में है।

सत्तलोक महासुन्न कहाई। तीनि लोक सब सुन्न में जाई॥
तीनि लोक करता नहिं जावै। वा पद को कोइ संत समावै॥
वो पद है संतन कर सारा। वहँ कोइ संत करै दरबारा॥
निराकार जोती नहिं जावै। जम और काल गम्म नहिं पावै॥[54]

आप समझाते हैं कि त्रिलोकी तक की संपूर्ण रचना सुन्न में से प्रकट हुई है और प्रलय के समय सुन्न में ही समा जाती है। सुन्न तक की रचना महासुन्न में से उत्पन्न हुई है और महाप्रलय में उसमें ही वापस समा जाती है। प्रभु का निज धाम प्रलय, महाप्रलय की हद से ऊपर है, वहाँ काल, महाकाल की पहुँच नहीं है।

ये बेदांत बेद में नाईं। गीता सास्तर भेद न पाई॥
संत मता कछु इनसे न्यारा। सो तुलसी ने कही बिचारा॥
हम अपने मन त्याग बिचारा। ये सब आहि कर्म भौ जारा॥
त्यागै जोइ जोई पुनि पैहै, बार बार भौसागर अैहै॥[55]

तुलसी साहिब ने प्रेमपूर्वक समझाया कि संतमत का उपदेश वेदों और पुराणों की पहुँच से परे है। अगर हम अपने मन में गृहस्थ के त्याग का विचार बनाते हैं तो जीव कर्मजाल में और भी ज़्यादा फँस जाता है। जो भी इस त्यागमार्ग को अपनाता है वह बार-बार भवसागर में गोते खाता रहता है अर्थात् त्याग भवसागर से मुक्ति का साधन नहीं है।

तुलसी संत भेद बिधि गाई। संत भेद सब अगम लखाई॥
बिना संत नहिं होइ है न्यारा। संत सरन से उतरै पारा॥[56]

संत ही उस भेद को जानते हैं। वे उस अगम लोक का भेद बताते है। संत की शरण प्राप्त किये बिना इस आवागमन से छुटकारा नहीं हो सकता।

मानगिरी:

परमहंस पूछत सकुचाया। परमहंस मत कब से आया॥
सो तुलसी मुख भाखि सुनाई। या की आदि अंत बतलाई॥[57]

परमहंस ने सकुचाते हुए पूछा, फिर यह परमहंस मत कब से शुरू हुआ। इस बारे में आदि से अंत तक बताइये।

तुलसी साहिब:

मानगिरी सुन बात हमारी। काल रचा बैराट सँवारी॥
पाँच तत्त से पिंड बनाया॥ पुरुष अंस चेतन जब आया॥
जड़ चेतन दोउ गाँठि बँधानी। सोइ निज ज्ञान जानि मन मानी॥ ...
भौजल काल जाल उरझाया। परमहंस मत यहि बिधि आया॥
आदि मते का खोज न पावै। बिना संत कहौ को दरसावै॥[58]

तुलसी साहिब मानगिरी को समझाते हैं कि काल ने इस सृष्टि को सजाया-सँवारा है। पहले पाँच तत्त्वों से यह शरीर बना, फिर परमात्मा की अंश आत्मा इस शरीर में रखी गई। इस तरह जड़-चेतन की गाँठ बँध गई। आत्मा ने इस मन और शरीर को ही सब कुछ समझ लिया। इस तरह काल ने जीव को भवसागर के जाल में उलझा दिया। इसके फलस्वरूप परमहंस मत इस संसार में शुरू हुआ। आदिकाल के मत को कोई खोज नहीं पाया क्योंकि उसका भेद संतों के बिना कोई नहीं जानता।

मानगिरी:

मानगिरी कहै सरना लीजै। आद अरु अंत भेद मोहिं दीजै।
चरन सरन में राखौ स्वामी। हमरी भूल भेद हम जानी॥[59]

अंत में मानगिरी ने तुलसी साहिब से प्रार्थना की कि मुझे अपनी शरण में ले लो और अंतर का भेद बताकर मेरा उद्धार करो।

कबीरपंथी फूलदास के साथ संवाद

फूलदास कबीरपंथी था, उसे यह दृढ़ विश्वास था कि परमात्मा से मिलाप की जो विधि कबीरपंथ में है, वह किसी अन्य मत में नहीं हो सकती और न ही कोई अन्य संत-महात्मा उस मार्ग के बारे में जानता है। उसने जब तुलसी साहिब की महिमा सुनी तो वह उनसे परमार्थ पर चर्चा करने के लिये आ पहुँचा। तुलसी साहिब ने उसका स्वागत करते हुए कहा:

तुलसी साहिब:

बड़े भाग साधु के सरना। कुटी पुनीत भई तुम चरना॥[60]

यह तो हमारे लिये बड़े भाग्य की बात है कि आप जैसे साधु यहाँ चले आये। आपके चरणों से यह कुटिया पवित्र हो गई।

फूलदास:

महिमा सुनि पुनि हमहूँ आये। दरस कीन्ह सुख मन उपजाये॥
फूलदास तब बचन उचारा। गुरू पंथ बिधि कहौ बिचारा॥
को है गुरु पंथ को कहिये। कौन मते के साध कहइये॥ ...
संत गुरू बिन पंथ न होई। अपना गुरुमत भाखौ सोई॥
सतगुरु बिना ज्ञान नहिं आवै। सतगुरु बिना भेद न पावै॥[61]

आपकी महिमा सुनकर हम यहाँ चले आये और आपका दर्शन करके मन को अद्भुत शांति मिली है। उसके बाद फूलदास ने उनसे प्रश्न किया कि आप अपने गुरु, पंथ और उसके विधि-नियमों आदि के बारे में बताइये। आपका पंथ कौन-सा है और आप किस मत के साधु कहलाते हैं? कोई भी पंथ किसी संत-सतगुरु के बिना नहीं होता, इसलिये अपने गुरुमत के बारे में बतायें। सतगुरु के बिना न तो इस राह का ज्ञान हो सकता है और न ही सतगुरु के बिना परमात्मा का भेद पाया जा सकता है।

तुलसी साहिब:

कहौ कैसे गुरु भेद लखावै। कौन राह से पंथ बतावै॥
ता की बिधी कहौ तुम साखी। हो किरपाल दया करि भाखी॥[62]

तुलसी साहिब ने फूलदास से पूछा: पहले आप ही बतायें कि गुरु वह भेद कैसे बताता है और पंथ कैसे बनता है। आप तो उन विधियों को जानते होंगे।

फूलदास:

तुलसीदास सुनौ चित लाई। पंथ भेद मैं कहौं सुनाई॥ ...
चौका करि परवाना पावै। छूटै जीव मुक्ति को जावै॥ ...*
सेत चदरवा दीन्हेइ तानी। आरति कीन्ह जुगति बिधि ठानी॥
चौका पर बैठक जब लयऊ। भजन अखंड सब्द धुनि भयऊ॥ ...

* मिठाई, पान, कपूर, केला, सुपारी, अष्ट मेवा, पाँच बर्तन, सफ़ेद वस्त्र, केले का पत्ता, नारियल, सफ़ेद पुष्प की सामग्री हो, ऊपर सफ़ेद चादर तानी हो, उसके नीचे सफ़ेद चंदन की चौकी पर बैठकर अखंड भजन करना, फिर नारियल तोड़ना, ध्यान लगाना।

पहुँचै लोक अगम के द्वारा। चौका बिधि कबीर पुकारा॥
येहि बिधि जीव करै जो चौका। जा का मिटि गया संसय सोका॥[63]

हे स्वामी! ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें कबीरपंथ का भेद बताता हूँ। कबीर साहिब के अनुसार "चौका" करने पर जीव परमात्मा के दरबार में स्वीकार कर लिया जाता है और वह जगत के जाल से छूटकर मुक्ति पा लेता है। "चौका" की विधि यह है कि ऊपर सफ़ेद चादर तान दी जाये, उसके नीचे बैठकर गुरु द्वारा बताई गई युक्ति के अनुसार परमात्मा की आरती की जाये। उस "चौका" में बैठकर जब समाधि लग जाती है, तब अखंड भजन शुरू हो जाता है और अंतर में शब्द की धुन गूँजने लगती है। लोग इसी विधि के द्वारा उस अगम प्रभु के धाम पहुँचे हैं। कबीर ने इस विधि को "चौका" विधि कहकर पुकारा है। जो साधक इस विधि से "चौका" करते हैं, उनके सभी संशय और शोक मिट जाते हैं।

तुलसी साहिब:

कहै तुलसी नहिं बूझ बयाना। फूलदास मन में रसियाना॥[64]

तुलसी साहिब ने कहा कि आपने जिस विधि का बखान किया है, वह मेरी समझ में नहीं आई। यह बात सुनकर फूलदास के दिल में नाराज़गी का भाव आया।

फूलदास:

चौका कबीर भाखि बतलावा। तुम्हारे मन कछु एक न आवा॥
सत्त कबीर जो बिधि बताई। सो हम तुमको भाखि सुनाई॥[65]

मैंने तो कबीर साहिब द्वारा बताये गये मुक्ति के साधन "चौका" के बारे में आपको विस्तार से बताया है, लेकिन न जाने क्यों आपको यह विधि समझ में नहीं आई।

तुलसी साहिब:

कहि कबीर जो चौका गावै। सो बिधि कहौ तो मन में आवै॥ ...
उन पुनि चौका कौन बताया। तुम ने कौन विधी ठहराया ...
जो जो मुख से संतन भाखा। सो काया के भीतर राखा॥[66]

कपड़ा तानि चदरवा कीन्हा। कही कबीर सो बिधि नहिं चीन्हा॥ ...
चौका कौन ठिकाने कीन्हा। ता की राह रीति नहिं चीन्हा॥
कही कबीर चौका सोइ साजा। जहँवाँ सब्द अखंडित गाजा॥ ...
सत कबीर परवाना भाखी। सो तुम्हरी सूझा नहिं आँखी॥[67]

तुलसी साहिब ने पूरी व्याख्या करते हुए कहा: जिस "चौका" का वर्णन कबीर साहिब ने किया है, अगर आप वह विधि बताते तब तो मन को तसल्ली हो जाती। उन्होंने तो कुछ और बताया है और आप कुछ और ही कह रहे हैं? वास्तव में संतों ने जो भेद अपने मुख से फ़रमाया है वह सब अंतर में है। यह जो आप सफ़ेद कपड़े की चादर तान लेते हो, इससे पता चलता है कि आप तो कबीर साहिब की बताई विधि को ही नहीं पहचान पाये। कबीर साहिब ने तो बताया है कि जहाँ अखंड शब्द गूँजने लगे, वही चौका अर्थात् शरीर शोभायमान होता है। कबीर साहिब ने प्रभु के दरबार में जीव के स्वीकार होने की जो बात कही है, वह तुम्हारी समझ में नहीं आई है। फिर तुलसी साहिब ने फूलदास को कबीरपंथ की वास्तविकता बताई।

जो कबीर ने बिधी बताई। सब्द राह मारग समझाई॥
सब्द चीन्ह कर बूझि बिचारा। केहि बिधि सब्द कहै निरबारा॥
जा को कहिये साधु सुजाना। सब्द चीन्ह सोइ बूझै ज्ञाना॥
सोई साध बिबेकी होई। कहा कबीर पद बूझै सोई॥
सब्द पंथ सब राह बतावै। भिन्न भिन्न बिधि बिधि दरसावै॥
कोऊ न बूझै सुरति लगाई। चौका पट्टा औरहि गाई॥[68]

कबीर साहिब ने शब्द की पहचान द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग दिखाया है। जो ज्ञानवान साधु शब्द के साथ सुरत को जोड़कर आंतरिक सूक्ष्म मंडलों में पहुँच जाता है, वह उस परमधाम में पहुँच जाता है, जिसका आदर्श कबीर साहिब ने जीव के सामने रखा है। तुलसी साहिब दु:ख प्रकट करते हैं कि कबीर साहिब और अन्य संतों द्वारा बताये गये सुरत-शब्द के मार्ग पर चलने का कोई भी प्रयत्न नहीं करता। लोग बाहरमुखी साधनों: चौका, पट्टा आदि में ही प्रवृत्त होकर रह जाते हैं।

खोजो साध सुजान, सो मारग पीउ का।
परख सब्द गहौ सरन, मूल जहँ जीव का॥ ...
निरखि पकर कड़िहार, तो घर पहुँचावही।
देत नाम की डोरि, तो दुख बिसरावही॥[69]

आप समझाते हैं कि कबीर साहिब के उपदेश को ध्यान में रखते हुए किसी ऐसे ज्ञानी साधु की शरण प्राप्त करो जो शब्द का जानकार हो। वह सुरत को शब्द के साथ जोड़कर निजघर वापस पहुँचने की युक्ति समझायेगा। पूरा गुरु जीव को नाम की डोरी पकड़ा देता है, जिससे जीव भवसागर के दुखों से छुटकारा प्राप्त करके परम आनंद के धाम पहुँच जाता है।

तुलसि निकाम संतन कर चेरा। संत कृपा से अगम पद हेरा॥
संत चरन परसादी पाई। ता से सब कहै तुलसि गुसाँईं॥
सब मिलि कै पुनि कहै गुसाँईं। मैला मन मत बुद्धि न पाई॥
मैं किंकर संतन कर दासा। संत चरन बिन और न आसा॥
दास कबीर संत है स्वामी। उन सम फूलदास को जानी॥
तुम साधू हौ चतुर सुजाना। तुलसी जानौ दास समाना॥
मैं साधन कर दास बिचारा। संत चरन की लागौं लारा॥
दीन जानि किरपा करि हेरा। वे दयाल सब कीन्ह निबेरा॥
तुमहूँ साध दया के स्वामी। फूलदास तुम चरन नमामी॥
भूल न मोरी अचरज मानौ। मैं तुम्हरे चरनन लपटानौ॥[70]

तुलसी साहिब अपना ही दृष्टांत देते हुए कहते हैं कि मैं तो तुच्छ और निकम्मा था। संतों ने दया करके मुझे अपना दास बना लिया। उनकी कृपा से मुझे अगम पद यानी परमधाम की प्राप्ति हो गई है। यह संतों के चरणों का ही प्रसाद है कि मुझ जैसा मलिन मन वाला और तुच्छ बुद्धि वाला व्यक्ति चारों ओर गोस्वामी यानी इंद्रियों पर विजय प्राप्त करनेवाले के रूप में प्रसिद्ध हो गया। मुझ नीच और निकम्मे को संतों के चरणों के अलावा अन्य किसी का सहारा नहीं और न ही किसी से कोई आशा है। कबीर साहिब मेरे स्वामी हैं, मैं उनका तुच्छ दास हूँ। हे फूलदास! मेरे लिये तू भी कबीर साहिब का ही रूप है। मैं आप जैसे साधुओं का दास हूँ, जिन्होंने कृपा करके मेरा उद्धार कर दिया। साधु दया का रूप होते हैं। मैं आपके चरणों पर शीश झुकाता हूँ। मुझसे कोई भूल हो जाये तो दया करके मुझे बख़्श देना।

तब तुलसी साहिब ने फूलदास को वास्तविक गुरु और वास्तविक शिष्य के बारे में खोलकर समझाया:

सुरति सैल जो चढ़ै अकासा। फोड़ि अकास अमर पद बासा॥
सत्त गहै सतगुरु पद पासा। सत्त लोक सत पुरुष निवासा॥
ता के परे अगमपुर धामा। देखै लोक अलोक अनामा॥
सत कबीर होइ वहँ को जाई। और कबीर भौ भटका खाई॥
सत कबीर जाहि कर नामा। चढ़ै सुरति सतलोक समाना॥
सतगुरु सत्त पुरुष है स्वामी। सो गुरु करै चला परमानी॥
सतगुरु सत्त पुरुष है सैला। वो कबीर सतगुरु का चेला॥
वो कबीर जेहि राह बतावै। सुरति सैल सोइ अगम लखावै॥
वो कबीर भौ पार लगावै। और कबीर भौ भटका खावै॥
और गुरु चेला झूठ पसारा। दोनों बूड़े भौजल धारा॥
सतगुरु सत्तपुरुष की बाटा। चेला चढ़ै सुरति से घाटा॥
सोइ चेला है पद परवाना। और सगरा जग निगुरा जाना॥
कनफूका से काज न होई। दोनों जाहिं नर्क में सोई॥
सत्त सोई गुरु गगन प्रकासा। जा से मिटै काल की त्रासा॥[71]

आप कहते हैं कि सच्चा कबीर वह है, जिसकी सुरत आकाश को चीरकर सतलोक में, सतपुरुष की हुज़ूरी में पहुँच जाये और फिर अगम, अनामी परमधाम की निवासी बन जाये। इसके विपरीत झूठा कबीर अर्थात् झूठा गुरु भवसागर में ही गोते खाता रहता है। सच्चे गुरुरूपी कबीर की आत्मा सतलोक में नाम यानी शब्द के स्रोत में समा जाती है। जो शिष्य सतपुरुष का रूप हो चुके सच्चे गुरुरूपी कबीर को अपना सतगुरु मान लेते हैं तथा जिस शिष्य की आत्मा सतलोक की सैर करती है, वही सच्चे कबीर का सच्चा शिष्य है। सच्चा कबीर यानी गुरु वह है, जो शिष्य को भवसागर से पार कर देता है और सच्चा शिष्य वह है, जो भवसागर से पार होने में सफल हो जाता है। अधूरे गुरु स्वयं भी भवसागर में डूब जाते हैं और अपने शिष्यों को

भी डुबो देते हैं। सच्चा गुरु वह है, जो सतपुरुष की प्राप्ति का मार्ग बताता है और सच्चा शिष्य वह है, जिसकी सुरत सतपुरुष के परमधाम तक पहुँच जाती है। सच्चा गुरु शिष्य के अंदर सत्य के ज्ञान का प्रकाश भर देता है और उसे काल के भय से मुक्त कर देता है।

फूलदास:

मोरा मन मैला अति नीचा। ये महंत मत मन सम कीचा॥
मोरी मति पर दृष्टि न दीजै। फूलदास अपना करि लीजै॥
तुम्हरे चरन माहिं निरबारा। बिना चरन नहिं होइ उबारा॥
जो कबीर सो तुम हो स्वामी। दया करहु मोहिं अंतरजामी॥[72]

हे स्वामी! मेरा मन मैला है, अति नीच है। इस महंत के पद से मेरे अंदर मैल भर गई है। आप मेरी मूढ़मति पर ध्यान न दें और इस फूलदास को अपना बना लें। आपके चरणों में रहकर ही मेरे मन से मैल छूट सकती है। आपकी चरण-शरण के बिना उद्धार नहीं हो सकता। मुझे असलीयत समझ में आ गई है कि जो कबीर साहिब थे, वही आप हैं। आप अंतर्यामी हैं, मुझ पर दया कीजिये।

हाथ जोड़ कर बिनती लाई। स्वामी मोहिं भव पार लगाई॥
हमहूँ दीन दंडवत कीन्हा। सीस नवाइ चरन पुनि लीन्हा॥[73]

आपसे हाथ जोड़कर यही विनती है कि मुझ दीन को भवसागर से पार कर देना। यह कहकर उसने तुलसी साहिब को शीश झुकाकर प्रणाम किया और उनकी चरण-शरण ग्रहण करने के लिये विनती की।

तुलसी साहिब से दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात फूलदास ने वहीं रहने का मन बना लिया। उसका एक सेवक रेवतीदास भी साथ में आया हुआ था। वह मनमुख और अहंकारी था। उसने फूलदास पर वापस चलने के लिये दबाव डाला, परंतु फूलदास ने वहीं रात गुज़ारने का फ़ैसला कर लिया। यह देखकर रेवतीदास क्रोधित होकर बोला कि यदि आपने यहाँ रहना है तो रहो, मैं वापस जा रहा हूँ—*तुम हूँ रहि हौ इनके साथा॥*[74] इस पर फूलदास ने अपना महंत पद और पालकी रेवतीदास को दे दी। उस समय तो रेवतीदास बहुत ख़ुश हुआ, परंतु रास्ते में सोचने लगा कि फूलदास को अवश्य कोई ऊँची और पवित्र दौलत मिली है, जिसके कारण उसने इतनी बड़ी जायदाद और महंत पद के मान सम्मान को त्याग दिया है। वह भी फूलदास के किसी अन्य शिष्य को महंत पद देकर तुलसी साहिब के पास वापस आ गया और अपना शीश तुलसी साहिब के चरणों पर झुका दिया। तुलसी साहिब ने उसे भी अपना उपदेश दिया। फूलदास और रेवतीदास दोनों तुलसी साहिब की कुटिया के सामने अपनी कुटिया बनाकर रहने लगे।

पलकराम नानक पंथी के साथ संवाद

तुलसी साहिब की कीर्ति सुनकर काशी में रहनेवाला पलकराम नामक एक नानकपंथी भी आपके पास आया। वह बहुत सीधा-सादा और सरल स्वभाव का जिज्ञासु था। उसका हृदय नम्रता और सच्चाई से भरा था। वह नियमपूर्वक 'जप जी साहिब' और 'सुखमनी साहिब' का पाठ करता था, परंतु गुरु नानक साहिब और अन्य पूर्ण संतों द्वारा दिखाये गये शब्द मार्ग का उसे कोई ज्ञान नहीं था। उसके मन में संतों के प्रति बड़ी श्रद्धा थी, इसलिये वह सदा उनकी सेवा में लगा रहता था। वह भी परमार्थ के बारे में चर्चा करने तुलसी साहिब के पास पहुँचा। बातचीत के दौरान तुलसी साहिब ने पलकराम को बताया कि गुरु नानक साहिब परमधाम से आये हुए एक परम संत थे। साथ ही साथ उन्होंने गुरु नानक साहिब द्वारा बताये गये कई पहलुओं पर खोलकर चर्चा करते हुए उसकी सारी शंकाओं को दूर किया।

पलकराम:

ग्रंथ विहंगम कछु कछु जाना। पढ़ें और कुल झारि विधाना॥ ...
बावे निरंकार कहि गावा। और निरंजन जोति बतावा॥*
इनके परे और नहिं कोई। अस बावे मुख भाखा सोई॥
वाह गुरू वाह गुरू बतावा। बावे मुख ग्रन्थन में गावा॥[75]

* बावे से अभिप्राय गुरु नानक साहिब से है।

आदि ग्रन्थ को मोटे तौर पर पढ़ने से जो मैंने समझा है वह यह है कि गुरु नानक साहिब ने परमात्मा का वर्णन करते हुए उसे निरंकार कहा है, निरंजन जोति कहा है, जिसके परे कोई और सत्ता नहीं है। इस प्रकार परमात्मा को निरंकार और निरंजन कहने के साथ-साथ उन्होंने अपनी वाणी में उस परमपिता को वाहेगुरु भी कहा है। यही बात बाक़ी ग्रंथों में भी कही गई है।

तुलसी साहिब:

साहिब नानक संत निदाना। जो कछु कहनि कही परमाना॥
खुद साहिब नानक मुख बानी। कही अगम कोइ बिरला जानी॥
वै पहुँचें चढ़ि सुरति निसाने। सब्द फोड़ गये अगम ठिकाने॥
वै स्वामी गति अगम अपारा। तुलसी बन्दै बारम्बारा॥[76]

गुरु नानक साहिब की वाणी पूरी तरह प्रमाणिक और विश्वसनीय है। उनके वचन परमपुरुष के वचन हैं। उन्होंने अगम-धाम का जो उपदेश दिया है उसे कोई बिरला ही समझ सकता है। गुरु साहिब सुरत को शब्द के साथ जोड़कर प्रभु के परमधाम में पहुँच चुके थे। उनकी अगम-अगाध गति वर्णन से परे है। वह स्वामी हैं और यह दास तुलसी उनकी बार-बार वंदना करता है।

नाम डोरि है सब के माहीं। नाम भेद कोउ चीन्है नाहीं॥
निरगुन सरगुन नाम बतावै। सत्त नाम के मरम न पावै॥
बिन सतसंग समझ नहिं आवै। सतगुरु बिना राह नहिं पावै॥
चौथा पद सतनाम बसेरा। वाह गुरू का वाँही डेरा॥
वाह गुरू सतनाम कहाये। ये बावे मुख अपने गाये॥

सूरति चढ़ै गगन को धावै। वाह गुरू पद जाइ समावै॥
वाह गुरू पद पदम मँझारा। ये बावे मुख भाखा सारा॥
वाह गुरू मुख भाखि बखानै। वाह गुरू का मरम न जानै॥
वाह गुरू चौथे पद पारा। सूरति चढ़ि देखै सत सारा॥[77]

तुलसी साहिब समझाते हैं कि जिस नाम की डोरी को पकड़कर जीव ने धुरधाम वापस पहुँचना है, वह सबके अंदर है। जब तक जीव पूर्ण संतों के सत्संग में नहीं पहुँचता, उसे निराकार, निर्गुण, सतनाम के बारे में ज्ञान नहीं हो सकता। गुरु साहिब ने चौथे पद के स्वामी सतनाम को ही वाहेगुरु कहकर पुकारा है। जीव गगन मंडल को पार करके चौथे लोक या सतनाम में पहुँचकर वाहेगुरु का रहस्य जान जाता है। जब तक जीव सुरत को शब्द के साथ जोड़कर वाहेगुरु के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं करता, केवल जुबान से वाहेगुरु-वाहेगुरु दोहराने से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। परमार्थ में जो भी लाभ होता है, सुरत को शब्द के साथ जोड़कर प्रभु के परमधाम, सचखंड यानी सतनाम पहुँचने पर ही होता है।

पलकराम:

येहि विधि स्वामी बूझ में आई। तुम ने कही सो सत्त समाई॥
बावे गूढ़ गुप्त मत भाखी। तुमने कही सूझि तब आँखी॥
हम पौड़ी पढ़ने बिधि जाना। तुमने पौड़ी चढ़न बखाना॥[78]

हे स्वामी! आपने जो बात कही है वह मेरी समझ में आ गई है और आपने जो सच्चाई बयान की है, वह मेरे हृदय में समा गई है। गुरु नानक साहिब ने जो गहरा और गुप्त रहस्य बताया है, वह आपकी व्याख्या से ही मेरी समझ में

आया है। हमें तो केवल वाणी की पौड़ी पढ़ने की विधि की ही जानकारी है, लेकिन आपने तो परमार्थ की पौड़ियाँ चढ़ना बता दिया है।

तुलसी साहिब:

संतन की जो बानी बिवेका। सोई साध को मिटि है धोका॥
संत मते की राह नियारी। पलकराम तुम खूब बिचारी॥ ...
जो कोइ सत्त संत को जाना। ता की सूरति मिलै ठिकाना॥
बिना संत सूरति कहँ जाई। बिना संत संघ कौन लखाई॥[79]

हे पलकराम! जो साधक संतों की बानी पर विवेक से विचार करता है, उसके संशय अपने आप मिट जाते हैं। तुमने भलीभाँति विचार करके जान लिया है कि संतमत की राह सबसे अलग है। जो सत्य स्वरूप संत का रहस्य जान जाता है, उसकी सुरत (आत्मा) को अपनी मंज़िल मिल जाती है। संतों की शरण लिये बिना सुरत को ठिकाना नहीं मिल सकता और संतों के बिना परमधाम का रहस्य कौन बता सकता है?

पलकराम:

पंच ग्रन्थी सुखमनी बनाई। आसावार जपजी को गाई॥
या कौ भेद कछु कहौ बुझाई। ग्रन्थ विधी बावे कस गाई॥[80]

गुरु नानक देव जी ने आदि ग्रन्थ, सुखमनी, आसा की वार और जप जी साहिब में किस विषय पर प्रकाश डाला है, इसकी आप पूरी व्याख्या करके समझाएँ।

तुलसी साहिब:

सुखमनि घाट सुखमनी बताई। मानसरोवर आगे पाई॥
जोगी मानसरोवर राखा। बावे अम्मरसर तेहि भाखा॥
जो पंजाब अमरसर गाया। सो बावे ने नहीं बताया॥
अम्मरसर है अगम के माहीं। न्हात अमर होइ संत बताई॥[81]

तुलसी साहिब समझाते हैं कि जिस सुखमनी के घाट का गुरु साहिब की वाणी में संकेत किया गया है, वह अंदर दशम द्वार में है। गुरु साहिब ने उसे ही मानसरोवर या अमृतसर कहा है, जिसमें स्नान करने पर जीव को अमर पद प्राप्त हो जाता है। मुक्ति बाहरी सरोवर में स्नान करने पर नहीं, बल्कि आंतरिक अमृतसर में स्नान करने पर प्राप्त होती है। बाहरी अमृतसर इस धरती पर है, आंतरिक अमृतसर आंतरिक गगन मंडल में है। जिस अमृतसर में स्नान करने पर जीव की आत्मा मन, माया और कर्मों की मैल छूट जाने पर पूरी तरह निर्मल होकर हंस बन जाती है यानी अमर पद प्राप्त कर लेती है और सचखंडरूपी निजघर वापस पहुँच जाती है, वह अमृतसर अंदर दशम द्वार में है।

पलकराम:

जो जो भेद तुम भाखि सुनाया। से तो हम सुपने नहिं पाया॥ ...
निरंकार की आदि बतावौ। जोती आदि सबै दरसावौ॥
इनके परे कौन है स्वामी। ता की महिमा बिधी बखानी॥
तुम दयाल पूरे हौ स्वामी। बावे बिधी कही सोइ ज्ञानी॥
संतन अगम आदि कस गाई। सो स्वामी मोहिं भाखि सुनाई॥[82]

जो जो रहस्य आपने खोलकर बताया है, उसके बारे में तो हमनें सपने में भी नहीं सोचा था। हे स्वामी! अब निरंकार का स्रोत बताओ और अंतर में उस आदिज्योति को भी दिखाओ। उस सबके परे कौन है, उसका भेद भी बताओ। आप बड़े दयालु और पूर्ण संत हैं। गुरु नानक साहिब ने जो भेद बताया है, आप उसे भलीभाँति जानते हैं। संतों ने उस अगम आदि के बारे में क्या कहा है, आप मुझे उसकी जानकारी दो।

तुलसी साहिब:

चौथा पद सतनाम कहाई। तेहि नानक वाहगुरू बताई॥ ...
सुरति चढ़ी गगन के माहीं। चौथा पद वाहगुरू दरसाई॥ ...
संत चीन्हि जावै सरनाई। वाहगुरू सहजै में पाई॥[83]

आंतरिक मंडलों को पार करते हुए सुरत चौथे पद में पहुँच जाती है, इसी पद को सतनाम कहा जाता है। गुरु नानक साहिब ने उसको वाहेगुरु बताया है। जो पूर्ण संत की शरण में आ जाता है, उसका सहज ही वाहेगुरु से मिलाप हो जाता है।

लेकिन आंतरिक साधना की इस विधि के विपरीत नासमझ जीव बाहरमुखी होकर *मन जस चलै तेही दिस धावै॥*[84]—जिधर को मन ले जाना चाहता है उधर को चला जाता है। वह धर्म के नाम पर केवल खानपान और बाहरी दिखावे में उलझकर रह गया है। और तो और, वह जीव हत्या और मांस खाने को भी धर्म से जोड़कर देखता है। तुलसी साहिब कहते हैं:

यहि बिधि संत मुक्ति गोहरई। मास खाइ भौ पार न जाई॥[85]

नानक साहिब बड़े दयाला। जीव हतन ग्रन्थन नहिं डाला॥
ये सब रीत स्वाद की लारी। स्वारथ जिभ्या पेट सँवारी॥
कहिये दया संत की रीती। यह कस करी मुक्ति परतीती॥[86]

नानक ग्रन्थ में नहीं बखाना। सब्द मास नहिं कीन्ह बिधाना॥[87]

मुक्ति प्राप्त करने की विधि बताते हुए सभी संत यही उपदेश देते हैं कि जो मांस खाता है वह भवसागर से पार नहीं हो सकता। गुरु नानक साहिब बड़े दयालु थे। उन्होंने भी जीवहत्या को अपने ग्रन्थ में स्थान नहीं दिया है। स्वार्थ में पड़े हुए लोग ही जीभ के स्वाद के कारण और पेट की ख़ातिर जीवहत्या को उचित बताते हैं। दया करना तो संतों का सहज स्वभाव है, तो फिर जीवहत्या करके लोग मुक्ति की उम्मीद कैसे कर सकते हैं।

गुरु नानक साहिब ने आदि ग्रन्थ में कहीं पर भी मांसाहार को उचित नहीं ठहराया है।

पलकराम:

हे स्वामी तुम अगम सुनाई। ये कहुँ भेद जगत में नाहीं॥ ...
मैं किंकर हौं सरन अनाथा। निबहौं संत चरन के साथा॥
मो को संत चरण की आसा। दूजा और नहीं बिस्वासा॥
अस कहि बहै नैन से पानी। स्वाँसा भरै चरन लपटानी॥[88]

हे स्वामी! आपने उस अगम का जो रहस्य बताया है, वह जानकारी जगत में कहीं भी नहीं मिलती। मैं तो तुच्छ हूँ, मुझ अनाथ को अपनी शरण में ले लो। मेरा उद्धार आप जैसे संतों के चरणों की शरण लेकर ही हो सकता है। मुझे एकमात्र

आपके चरणों की ही आशा है। दूसरी कोई भी वस्तु विश्वास योग्य नहीं है। ऐसा कहते हुए पलकराम की आँखों में आँसू भर आये, गला भर आया और वह तुलसी साहिब के चरणों से लिपट गया।

तुलसी साहिब:

पलकराम के प्रेम की, तुलसी करत बखान।
बैन बचन मुख चैन की, सो कहूँ कौन बयान॥[89]

पलकराम के वचनों और उसके मुखमंडल पर छाई शांति का मैं चाहकर भी वर्णन नहीं कर सकता। मेरे पास शब्द ही नहीं हैं।

गुनुवाँ के साथ संवाद

तुलसी साहिब के शिष्य हिरदे का पुत्र गुनुवाँ लखनऊ में रहता था। उसकी धार्मिक आस्था अपने पिता से भिन्न थी। वह अवतारों की पूजा करता था और बड़ी श्रद्धा से धर्मग्रंथों का पाठ करता था। वह कुछ दिन अपने पिता के पास रहने के लिये काशी आया। अपने पिता से बातचीत के दौरान उसे पता चला कि तुलसी साहिब त्रेता युग के राम के अलावा किसी दूसरे राम की सत्ता को सर्वोच्च मानते हैं। उसके मन में तुलसी साहिब के साथ परमार्थ पर चर्चा करने की जिज्ञासा जाग्रत हुई, इसलिये वह अपने पिता के साथ तुलसी साहिब से भेंट करने चला गया। बातचीत के दौरान हिरदे ने तुलसी साहिब को अपने पुत्र गुनुवाँ की धार्मिक आस्थाओं के बारे में बताया—राम से और कोऊ नहिं दूजा। यह या के मन आई बूझा॥[90]—इसके मन में यह विश्वास है कि त्रेता युग के राम के अलावा कोई दूजा राम नहीं है। गुनुवाँ ने अपने मन के भ्रम मिटाने के लिये तुलसी साहिब से इस प्रकार विनती की।

गुनुवाँ:

याकी बिधी भेद समझावौ। राम छाँड़ि तुम केहि को ध्यावौ॥ ...
सो स्वामी मो को समझावौ। मोरे मन का भर्म छुड़ावौ॥[91]

हे स्वामी! राम को छोड़कर आप किसका ध्यान करने के लिये कहते हैं? मुझे उसके बारे में भलीभाँति समझाएँ और मेरा भ्रम दूर करें।

तुलसी साहिब:

सुनु गुनुवा तो को समझाऊँ। आदि अंत या की बतलाऊँ॥
सत्तलोक इक पुरुष अपारा। चौथे पद के पार बिचारा॥[92]

पहुँचै सूरति अगम ठिकाने। अपना आदि अंत घर जानै॥ ...
आदि पुरुष को देखै नैना। तब अदृष्ट की बुझै सैना॥[93]

हे गुनुवाँ! मैं तुझे आदि से अंत तक का भेद समझाता हूँ। चौथे पद के पार सतलोक में अगम-अपार परमपुरुष है जो सारी सृष्टि में रमा हुआ है। संतों की बताई युक्ति को अपनाकर जब यह सुरत अगम-धाम पहुँच जाती है, तब वह अपने आदि और अंत, अर्थात् अपने मूलस्रोत को जान लेती है और आदिपुरुष के दर्शन करके उस अलख को पहचान लेती है।

गुनुवाँ:

तुम पुनि राम राम कस कहिया। सब ग्रंथन में साखि सुनैया॥[94]

तो फिर आप किस राम की बात करते हैं, जिसके बारे में ग्रंथों से भी दृष्टांत देते हैं।

तुलसी साहिब:

जग अबूझ कारन हम गाई। जो करै इष्ट राम से भाई॥
जो हम न्यारा भेद सुनावैं। तो जग माहिं रहन नहिं पावैं॥
ता से न्यारा भेद न भाखा। संत भेद हम गुप्तै राखा॥
भेद ग्रंथ में गुप्त लखावा। पुनि काहू की दृष्टि न आवा॥
हमने भाखा अगम अलेखा। जा कौ मरम न जानै भेषा॥
हम सतपुरुष अलख लखवावा। वेद न भेद भेष नहिं पावा॥[95]

यह संसार उस परमात्मा का भेद क्यों नहीं जान पाता, मैं इसका कारण बताता हूँ। ऐसा हमने नासमझ जगत के कारण कहा है, जो कि राम को इष्ट मानता है। यदि हम कोई अलग भेद उन्हें सुनाते तो हम दुनिया में रह नहीं पाते। इसलिये हमने अलग भेद नहीं कहा और संतों का भेद गुप्त ही रखा। हमने ग्रंथ (रामचरितमानस) में उस गुप्त भेद को बताया है, परंतु वह किसी की नज़र में नहीं आया। हमने अगम और अदृश्य परमात्मा का वर्णन किया है, जिसका भेद भेषधारी नहीं जानते। हमने तो अलख सत्तपुरुष को लखवाया है। उसका रहस्य वेदों में नहीं मिलता है और भेषधारी उसे नहीं पा सकते।

गुनुवाँ:

तुलसी स्वामी सुनु विख्याता। ये सब वाहि समय की बाता॥ ....
राम राम जपि सिव अविनासी। ये भी वाहि समय की बाती॥[96]

परंतु आपने तो राम-राम जपने से मुक्ति मिल जानेवाले किस्से सुने ही होंगे। पौराणिक धार्मिक कथाओं में यह भी वर्णन है कि शिव ने भी राम-राम का जाप किया था।

तुलसी साहिब:

राम राम कौने बिधि कहिया। जा से सिव अबिनासी भैया॥
मुख से जप कीन्हा कछु औरी। ये गुनुवाँ बिधि कहौ बहोरी॥[97]

हे गुनुवाँ, शिव ने राम-राम जपने की कौन-सी विधि अपनाई, जिससे वह अविनाशी हो गये? उन्होंने मुख से जप किया या कुछ दूसरी विधि से?

गुनुवाँ:

गुनुवाँ कहै सुनो हो स्वामी। मुख से जपि जपि राम बखानी॥
महादेव ने मुख जप कीन्हा। ये भया वाहि समय का चीन्हा॥[98]

हे स्वामी! हमें तो यही बताया गया है कि राम-राम मुख से जपा जाता है। शिव ने भी मुख से ही जाप किया था। उस वक़्त से तो इसी बात की जानकारी मिलती है।

तुलसी साहिब:

अब सुन आगे बिधी बताऊँ। महादेव की बिधि समझाऊँ॥
महादेव राम नहिं जपिया। ये साखी झूठी तुम कहिया॥
महादेव तो जोग कमाया। राम राम जोगी नहिं गाया॥
उन अपनी इंद्री मन जीता। मुद्रा साधी पाँच पुनीता॥[99]

अब तुम ध्यान देकर सुनो, मैं उसका भेद बताता हूँ और शिव के रहस्य को भी समझाता हूँ। वास्तव में महादेव शिव ने राम-राम शब्दों का जाप नहीं किया था और तुम्हारी कही बात सच नहीं है। महादेव शिव ने तो योग की साधना की थी और यह भी सच्चाई है कि योगी केवल राम-राम नहीं कहता। योगी तो अपने मन और इंद्रियों पर विजय प्राप्त करते हैं और अपनी पाँच पवित्र मुद्राओं को साधते हैं।

गुनुवाँ:

पुनि स्वामी इक पुछौं बाता। केहि बिधि ये जिव होइ सनाथा॥[100]

हे स्वामी! मैं एक बात और पूछता हूँ कि ऐसी कौन-सी विधि है जिसके द्वारा यह जीव परमात्मा से मिलाप कर सकता है।

तुलसी साहिब:

संत सत लोक राह चढ़ि जाई। तब यह जीव मुक्ति को पाई॥[101]

अपनी देखी कहौ न भाई। मुए गये की बिधी बताई॥
साँचा सोई मिलौ जो आजी। मूए मुक्ति बतावै पाजी॥
जीवत मिलै सोई मत पूरा। मूए कहै समझ सोइ धूरा॥[102]

संतों की बताई राह पर चलने से ही जीव सतलोक यानी प्रभु के धाम पहुँच सकता है। तब यह जीव आवागमन के चक्र से मुक्ति पा लेता है। मृत्यु के पश्चात मुक्ति प्राप्त होने के सभी वायदे झूठे हैं। वास्तविक मुक्ति तो वही है, जो हम इस जन्म में जीते-जी प्राप्त कर लें। मृत्यु के बाद कौन यह बताने वापस आया है कि मुझे सचमुच ही मुक्ति मिल गई है। सच्चा मार्ग वह है जो इसी जन्म में हमें जीते-जी मुक्ति दिला दे।

गुनुवाँ:

हे स्वामी सत सत तुम भाखी। समझि परा बूझी सब साखी॥
ये सब काल जाल कर लेखा। अपने मन में किया बिबेका॥ ...
मैं पुनि रहौं चरन के लारा। जीव काज मम करौ सुधारा॥
अब मैं सरन आपु की लीन्हा। राम काल धोखा यह चीन्हा॥[103]

हे स्वामी! आपके उपदेश से मैंने पूरी सच्चाई समझ ली है। मेरे मन में अब विश्वास हो गया है कि यह सब काल का जाल है। अब तो मैं आपके चरणों में ही निवास करना चाहता हूँ। इस जीव के सुधार के लिये कृपा करें। मुझे अपनी शरण में ले लें। काल ने राम को सामने रखकर जो भ्रम फैलाया है, उसे अब मैंने जान लिया है।

तुलसी साहिब:

मन को थिर कर बूझौ बाता। मन थिर बिना न आवै हाथा॥
इन्द्री मन थिर सूरति हेरो। तब भौजल से होइ निबेरो॥[104]

गुनुवाँ! तुम अपने मन को स्थिर करके उसका रहस्य जानो। जब तक मन स्थिर नहीं होगा, तब तक तुम्हारे हाथ कुछ नहीं आयेगा। अपनी इंद्रियों और मन को शांत करने पर ही तुम अपनी सुरत (आत्मा) की पहचान कर सकोगे और तभी इस भवजल से तुम्हारा उद्धार होगा।

प्रियेलाल गुसाईं के साथ संवाद

प्रियेलाल गुसाईं एक वैष्णव साधु था, वह कई तीर्थस्थानों की यात्रा करता हुआ काशी नगरी में आ पहुँचा। वहाँ वह अपने एक श्रद्धालु भक्त गोपाल अग्रवाल के यहाँ ठहरा। वहीं उसे परम संत तुलसी साहिब के बारे में पता चला, जो उन दिनों काशी में थे और अपनी अद्‌भुत परमार्थ संबंधी विचारधारा के लिये प्रसिद्ध थे। उसके मन में भी तुलसी साहिब के दर्शन करने की अभिलाषा जाग्रत हुई। अत: प्रियेलाल और उनका भक्त गोपाल दोनों ही हाथ में माला लेकर तुलसी साहिब से भेंट करने चल दिये। तुलसी साहिब ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया।

प्रियेलाल:

सब मिलि कहैं नगर के माईं। उन दरसन नहिं जावौ भाई॥
बेद पुरान एक नहिं जानै। राधा कृष्न राम नहिं मानै॥
गंगा जमुना कछू न राखै। कछु नहिं आदि अंत को भाखै॥
सब जग मिलि ये कहत बनाई। सो बिधि सुनि हमहूँ चलि आई॥[105]

नगर में सब लोग एक ही बात कह रहे हैं कि तुलसी साहिब के दर्शन करने मत जाना; वह न वेद-पुराण जानता है और न ही राधा-कृष्ण और राम को मानता है। वह कहता है कि गंगा-जमुना आदि पवित्र नदियों में स्नान करने से कुछ नहीं होता और न ही वह आदि-अंत के बारे में कुछ कहता है।

वह यह भी कहता है कि संसार में सुनी-सुनाई बातें घड़ ली गई हैं। आपके बारे में लोगों से यह सब सुनकर हम आपके पास आये हैं।

तुलसी साहिब:

कहि तुलसी उन सत सत कहिया। मैं मति-हीन बुद्धि नहि रहिया॥ ...
मैं औगुन की खानि अपारा। सूरति संत चरन की लारा॥[106]

उन लोगों ने सच्ची बात कही है। मैं मतिहीन हूँ, मेरा बुद्धि पर वश नहीं रहा। मैं तो बेशुमार अवगुणों की खान हूँ। मेरा ध्यान तो बस संतों के चरणों में लगा रहता है।

जिन ने तन का ठाट सँवारा। जीव अंस का किया पसारा॥
किया पिंड तन रचा बनाई। सात दीप नौखंड रचाई॥
सो स्वामी है घट के माईं। ता से जीव सकल चलि आई॥
सो स्वामी घट माहिं समाना। सबहि संत ये कहत बखाना॥
पिंड ब्रह्मंड दोऊ से दूरा। बसै पास रहै सदा हजूरा॥
वा का भेद संत से पावै। चढ़ै सुरति छिन छिन में जावै॥[107]

परमपिता परमात्मा, जिसने संपूर्ण सृष्टि का सृजन किया, सब खंड-ब्राह्मंडों की रचना की, वह अपनी रचना सहित मनुष्य के अंदर विराजमान है। वह पिंड, अंड, ब्रह्मांड से परे होता हुआ भी शब्द रूप में जीव के बहुत समीप है। वह परमात्मा सदैव मनुष्य के अंदर मौजूद है, परंतु अपने अंदर से उसके साथ मिलाप करने का भेद केवल पूर्ण संत ही जानते हैं। केवल उनकी दया से ही आत्मा आंतरिक रूहानी मंडलों को पार करके उस प्यारे प्रियतम से मिलाप कर सकती है।

वे दयाल गुरु समरथ दाता। जग भौजाल पार के करता॥
गुरु है सब्द सुरति है चेला। चीन्है गुरु चेला सोइ मेला॥
वे गुरु स्वामी अगम अपारा। पिंड ब्रह्मंड दोंऊ से न्यारा॥
ता के रूप रेख नहिं काया। वे गुरु मिलैं तो मुक्ति लखाया॥[108]

इस संसार सागर से पार करानेवाले यानी मुक्ति दिलानेवाले पूर्ण संत ही हैं जो दयालु और समर्थ हैं। वास्तव में शब्द गुरु है और सुरत शिष्य है। जो शिष्यरूपी आत्मा 'शब्द गुरु' की पहचान कर लेती है, उसी का परमपिता परमात्मा के साथ मिलाप होता है। ऐसे गुरु परमात्मा के समान ही अगम-अपार तथा खंड-ब्रह्मांड दोनों से न्यारे होते हैं। शब्द गुरु का कोई आकार नहीं होता। जब ऐसे गुरु से मिलाप होता है तो वह जीव को भवजल से मुक्त करा देते हैं।

प्रियेलाल:

तुम तों कहा बेद से न्यारा। अरु पुनि भाख अगम अपारा॥ ...
सुनकर भर्म बहुत मोहिं आवा। तुम ने कछु कछु और सुनावा॥
येहि बिधि बेद कहत है नाईं। सो प्रभु मुख से भाखि सुनाई॥
हम करैं संध्या नेम अचारा। पूजा सेवा ठाकुरद्वारा॥
और सनातन धर्म हमारा। ठाकुर भोग अछूता सारा॥ ...
भोजन ठाकुर करै अछूता। करते बल हाथन के बूता॥[109]

आपने तो वेदों से अलग ही बात कही है और परमात्मा को अगम-अपार बताया है। आपने जो यह सब कहा है वह अलग तरह का वर्णन है, इसे सुनकर मेरे मन में भ्रम पैदा हो गया है। आपकी बताई विधि का वेदों में वर्णन नहीं मिलता, जबकि उन वेदों को ब्रह्मा ने स्वयं अपने मुख से कहा है।

हम तो नियमपूर्वक ठाकुरद्वारे जाकर संध्या, पूजा, सेवा आदि करते हैं और यही हमारा सनातन धर्म है। हम ठाकुर को सबसे पहले शुद्ध भोग लगाते हैं और ठाकुर अपने हाथों से वह शुद्ध भोजन ग्रहण करते हैं।

तुलसी साहिब:

ये सब बात अनीती भाखी। सुनी कान देखी नहिं आँखी॥[110]

यह बात तो आप कहते हैं और आपने भी केवल कानों से सुना है, आँखों से नहीं देखा है।

प्रियेलाल:

जग निस्तार बेद से होई। कै कोई और राह मति सोई॥
सब मिलि कहै बेद निस्तारा। बेद बिना नहिं उतरै पारा॥[111]

हम यही जानते हैं कि संसार का उद्धार वेदों से होता है; आपके विचार से क्या कोई और रास्ता भी है? सब लोग यही मानते हैं कि उद्धार तो एकमात्र वेदों द्वारा ही हो सकता है, वेदों के बिना भवसागर को पार नहीं किया जा सकता।

तुलसी साहिब:

अब भाखूँ सुन आदि अपारी। बेद अन्त भाखूँ सब झारी॥ ...
प्रथमहिं जीव पुरुष से आया। निरमल ज्ञान संग सम लाया॥ ...
जिव उजला जुग उजला भाई। जबहि बेद तारन कस गाई॥ ...
कर्म धर्म सब जीव फँदाई। उजले घर की राह भुलाई॥[112]

अब मैं आदि-अपार के बारे में और वेदों के बारे में समझाता हूँ। जब यह जीव सर्वप्रथम उस परमपुरुष से जुदा हुआ तब

वह निर्मल था। तो फिर जीव की उस निर्मल अवस्था में वेदों ने उसके उद्धार की बात क्यों कही है? पाप और पुण्य का ज़िक्र वेदों में ही किया गया है और पाप-पुण्यों को जीवन का आधार बना लेने के कारण ही जीव पर अज्ञानता का अँधेरा छाया हुआ है। इसी कारण जीव धर्मकर्म में फँस गया है और उस परम पवित्र धाम की राह ही भूल गया है।

मूए मुक्ति सभी मिलि गावा। जीवत मुक्ति न कोउ बतलावा॥
येहि बिधि वेद रीति है भाई। मुए मुक्ति की बेद बताई॥
जीवत मुक्ति देखिये आँखी। ता का मता कहनि सब भाखी॥
जीवत जीव मुक्ति को पावै। तहु नहिं आदि अंत घर जावै॥[113]

मरने के बाद ही मुक्ति मिलती है, उसका बखान तो सभी करते हैं। लेकिन जीते-जी मुक्ति पाने का दावा कोई नहीं करता। वेदों में भी इसी बात का उल्लेख है कि मरने के बाद ही मुक्ति मिलती है। जिस मत पर चलकर जीते-जी मुक्ति प्राप्त होती है, वही मत सच्चा है। इस तरह जीव के जन्म-मरण का सिलसिला छूट जाता है और वह निजघर पहुँच जाता है।

सुरति आदि घर छाँड़ि कै। फिरै मन गुन की लार॥
जगत जाल बिच फँसि रही। क्यों कर उतरै पार॥ ...
सतगुरु सूरति संध लखावै। तजि सब बंध जीव घर आवै॥[114]

हे प्रियेलाल! अब मैं सार रूप में कह रहा हूँ कि इस सुरत ने अपने वास्तविक घर यानी निजघर को छोड़ने के बाद मन और तीनों गुणों का साथ ले लिया है। जगत के जाल में फँसे होने के कारण यह भवसागर से पार कैसे उतर

सकती है? यह आत्मा इन बंधनों से मुक्त होकर निजघर तभी पहुँच सकती है, जब सतगुरु जीव को निजघर का रहस्य बता देते हैं।

प्रियेलाल:

प्रियेलाल कहै बूझा स्वामी। बेद बिधि सब झूठी जानी॥ ...
इनसे मुक्ति बिधि है न्यारी। ऐसी मन में समझ सिहारी॥ ...
मोरे मन बिधि ऐसी आई। तुम बिन राह कहूँ नहिं पाई॥ ...
अब स्वामी मोहि सरनै लीजै। दया भाव मोहिं पर कीजै॥[115]

हे स्वामी! आपकी बात मैंने समझ ली है। वेदों में धर्म-कर्म की युक्तियाँ तो बहुत-सी बताई गई हैं, लेकिन इन सबसे मुक्ति नहीं मिलती, बल्कि मुक्ति की राह तो बिलकुल अलग है। मुझे विश्वास हो गया कि आपकी शरण के बिना अब मैं कहीं भी मुक्ति की राह नहीं पा सकता हूँ। अब आप कृपा करके मुझे अपनी शरण में ले लें।

बानी

संत सौदागर 'नाम' के

संत-महात्मा नाम के सौदागर होते हैं। वे सांसारिक जीवों के लिये सतलोक से शब्द यानी नामरूपी मेवा लेकर आते हैं और उन्हें सतलोक में पहुँचाते हैं। जब वे जीवों को अनमोल ख़ज़ाना देते हैं, तो इसके बदले में उन्हें सांसारिक पदार्थों का मोह छोड़ने का उपदेश देते हैं। लेकिन जन्मों-जन्मों से सांसारिक पदार्थों के मोह में फँसे अज्ञानी लोग इस सौदे को महँगा समझकर इससे मुँह मोड़ लेते हैं। कोई विरला गुरुमुख ही इस सच्चे सौदे को लेने के योग्य बनता है।

1 माल अपूरब संतन केरा। सो जग कोई पावे नहिं हेरा॥
उनका रोकड़ माल खजाना। बीजक वह उनहीं का जाना॥
माल सड़े नहिं काई लागे। चौरे न चोर रैन दिन जागे॥
कबहुँ न हाथ चढ़े केहु भाँती। खोदत रहे दिवस अरु राती॥
यह दौलत दुनिया नहिं जाना। गुप्त भेद में माल छिपाना॥
दया दीन दिल कूँची पावें। मेहर नजर करि वे दरसावें॥
जो मूरख कोइ लेन विचारे। जन्म जन्म पचि पचि के हारे॥
जुगन जुगन कोउ अंत न पाया। धर धर मुए अनेकन काया॥[1]

2 ऐसे हिरदे संत सुभावा। भवजल पार लगावें थावा॥
जहाज सुरति उनकी नित चाले। समुदर पार भरावें माले॥

भरती भरें सुरति की डोरी। पहुँचे पार जहाज को छोड़ी॥
माल बिलायत में जा बेंचें। मेवा आनि खरीदी खैंचें॥
जम्बू दीप मुलुक के माहीं। खलक माल को चीन्हे नाहीं॥
गली गली में ले दरसावें। मेवा ल्यौ जो जिनको चावै॥
बार बार कहि कर गोहरावें। कोइ मेवा के पास न आवें॥
देखे सुने समझ कर कहते। यह तो माल बड़ा कछु लेते॥
भाव सुने पर मूंड़ हिलावें। साँची मानि बहुरि नहिं आवें॥[2]

3 कदर बिना नहिं माल बिकाना। संत दिसावर बड़ी न जाना॥
मेवा मोल खरीदी नाहीं। वह सवाद कहो क्योंकर पाईं॥
देखे सुने खाय मुख माहीं। सो कीमत को जाने भाई॥
लिया दिया देखा नहिं आँखी। वह कहा परख कहेंगे भाखी॥
यह संतन का माल अगूढ़ा। सो का जाने जग मन मूढ़ा॥
यह तौ नाज खरीदा चावे। धर गठरी सिर ऊपर लावे॥
धड़ा पसेरी तोल पिछाने। यहि बिधि माल संत का जाने॥
गठरी बाँधि लेउँ सब सारी। यह जाने यों माल अनारी॥[3]

ग़ज़लें

परमार्थ का जिज्ञासु शेख़ तक़ी हज से लौटते समय तुलसी साहिब की कुटिया में उनसे मुलाक़ात करने आया। बातचीत के दौरान तुलसी साहिब ने उसके अंदर रूहानियत के लिये तड़प देखी और परमार्थ का सारा भेद उसके सामने खोल दिया। क़ुरान शरीफ़ और अन्य मुसलमान फ़क़ीरों का हवाला देते हुए तुलसी साहिब ने परमार्थ के हर पहलू का खुलासा किया, जिससे शेख़ तक़ी की पूरी तसल्ली हो गई। शेख़ तक़ी को संबोधित करके लिखी गई ग़ज़लों में सच्ची रूहानियत का सार झलकता है।

1 सुन ऐ तक़ी न जाइयो ज़िनहार देखना।
अपने में आप जलवाए दिलदार देखना॥
पुतली में तिल है तिल में भरा राज़ कुल का कुल।
इस परदाए सियाह के ज़रा पार देखना॥
चौदह तबक़ का हाल अयां हो तुझे ज़रूर।
ग़ाफ़िल न हो ख़याल से हुशियार देखना॥
सुन ला मकाँ पे पहुंच के तेरी पुकार है।
है आ रही सदा से सदा यार देखना॥
मिलना तो यार का नहीं मुशकिल मगर तक़ी।
दुशवार तो यह है कि है दुशवार देखना॥
तुलसी बिना करम किसी मुरशिद रसीदा के।
राहे निजात दूर है उस पार देखना॥[4]

2 दिल का हुजरा साफ़ कर जानां के आने के लिये।
ध्यान ग़ैरों का उठा उसके बिठाने के लिये॥

चशम दिल से देख यहाँ जो जो तमाशे हो रहे।
दिलसितां क्या क्या हैं तेरे दिल सताने के लिये॥
एक दिल लाखों तमन्ना उसपै और ज़्यादा हविस।
फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये॥
नकली मन्दिर मस्जिदों में जाय सद अफ़सोस है।
कुदरति मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिये॥
कुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥
क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रासता शाह रग में है दिलवर पै जाने के लिये॥
मुरशिदे कामिल से मिल सिदक और सबूरी से तक़ी।
जो तुझे देगा फ़हम शाह रग के पाने के लिये॥
गोशे बातिन हों कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।
ला इलाह अल्लाहू अकबर पै जाने के लिये॥
यह सदा तुलसी की है आमिल अमल कर ध्यान दे।
कुन क़ुरां में है लिखा अल्लाहु अकबर के लिये॥[5]

3 अरे ऐ तक़ी तकते रहो, मुरशिद ने यह पंजा दिया।
बेहोश हो मत छोड़ियो, गर चाहे तू जलवा पिया॥
होगा फज़ल दर्गाह तक, खौफ़ो ख़तर की जा नहीं।
सीधे चले जाना वहां, मुरशिद ने यह फ़तवा दिया॥
मनसूर, सरमद, बूअली, और शम्स, मौलाना हुये।
पहुंचे सभी इस राह से, जिस ने कि दिल पुखता किया॥
यह राह मंज़िल इश्क है, पर पहुंचना मुश्किल नही।
मुश्किल कुशा है रूबरू, जिस ने तुझे पंजा दिया॥
तुलसी कहे सुन ऐ तक़ी, यह राज़े-बातिन है जुदा।
रखना हिफ़ाज़त से इसे, तुझ को निशां ऊचा दिया॥[6]

बारह मासा

प्राचीन संस्कृत काव्य में ऋतु-वर्णन का प्रचलन रहा है, जिसमें वर्ष को दो-दो महीनों की छः ऋतुओं में बाँटा जाता था। बारह मासा ऋतु-वर्णन का ही विकसित रूप है, इसमें ऋतुओं के वर्णन का स्थान महीनों के वर्णन ने लिया है। बारह मासा पहले लोक-काव्य का अंग बना और बाद में संत-महात्माओं ने इसे अपने रूहानी अनुभवों के वर्णन का साधन बना लिया, जिसमें उन्होंने प्रत्येक महीने को मनुष्य-जन्म के साथ जोड़कर अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने प्रकृति की पृष्ठभूमि में पति-परमेश्वर से बिछुड़ी आत्मा की दुःखदायी हालत का और परमात्मा के साथ उसके मिलाप के अनुपम आनंद का वर्णन किया है। गुरु नानक साहिब, गुरु अर्जुन साहिब, सूफ़ी दरवेश साईं बुल्लेशाह और गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी शैली में बारह मासा की रचना की।

तुलसी साहिब का बारह मासा भी इसी शैली में रचा गया है। उनकी रचनाओं में तीन बारह मासा मिलते हैं। यहाँ घट रामायण में लिखे बारह मासा की व्याख्या की गई है। तुलसी साहिब इस बारह मासा द्वारा एक जिज्ञासु प्रियेलाल को गहन परमार्थी रहस्य समझाने का प्रयत्न करते हैं। इसमें आत्मा के परमात्मा से बिछुड़कर रचना का अंग बनने की दुःखदायक अवस्था का और उसके आवागमन के बंधन से छूटकर दोबारा प्रभु में अभेद हो जाने की आनंदमयी अवस्था का वर्णन किया गया है।

तुलसी साहिब कहते हैं कि सुरत द्वारा आंतरिक मंडलों की सैर करके मैंने अपने अंदर जो अनुभव प्राप्त किये हैं, उन्हीं का वर्णन इस बारह मासा में किया है। कोई संत-सूरमा ही इस सत्य का जानकार होता है और

निर्मल वृत्ति वाले ज्ञानी पुरुष ही इस सत्य को जानने की चाह रखते हैं। इंद्रियों, तीन गुणों और अहंकार के कारण सुरत यानी जीवात्मा चार खानियों में क़ैद हो गई है। जब इसका कर्मजाल से छुटकारा हो जाता है, तभी इसे अगम लोक यानी परमधाम में निवास मिल जाता है।

हिये हेरा स्रुत सैल से, बारह मास बयान।
जानि सूर कोइ संत जन, सुनै सो सज्जन कान॥
गुइयाँ गोह गुमान गुन, गिरि बानी बिच बास।
फाँस कटी कटि सुरति की, कीन्हा अगम निवास॥

बारह मास मिलाप, सुरति आप अपनी कही॥
लही जो तुलसीदास, बारह मास समझाय कै॥

मनुष्य-जन्म में आषाढ़ माह के समान चाहे कितने ही सुहावने हालात क्यों न हों, तीन गुणों में फँसी आत्मा पति-परमेश्वर से मिलाप किये बिना सच्चा सुख कभी प्राप्त नहीं कर सकती और केवल ध्यान को अंतर्मुख करके आंतरिक सफ़र तय करते हुए ही प्रियतम के धाम की ओर क़दम बढ़ा सकती है।

गुइयाँ * *री गुन गोह गिरा बिच मैं न रहौंगी॥ टेक॥*
आली असाढ़ के मास बिलास, सो बास पिया बिन मोहि न भावै॥
गरजि अकास की भास रबी, छबि बादर की कही बात न जावै॥
बिजली चमकै घन घोर घटा, घर घाट पिया कोउ नेक न पावै॥
गोह गुना गिरि बीच बसी, सो फँसी तुलसी चित्त चेत न आवै॥

अगमन आयौ असाढ़हि मास। गरजत गगन रबी तजि भास॥
मान घटा नभ नैन निहार। सूरति समझि चलौ नभ पार॥
पिया पद साज गहौंगी॥

* सखी

सावन महीने के सुंदर दृश्यों के समान तीन गुणों वाले इस लुभावने संसार के भ्रमजाल में जो जीवात्मा फँस जाती है, वह यमदूतों के हाथों बरबाद हो जाती है। जिस प्रकार सावन में सरोवर भरे होते हैं, उसी प्रकार अंदर दसवें द्वार का सरोवर शब्द के अमृत से भरा हुआ है। जो सुरत बाहर से ध्यान को हटाकर आंतरिक आकाश में पहुँच जाती है, उसे अनंत प्रकाश दिखाई देता है और उसकी आंतरिक यात्रा शुरू हो जाती है।

सावन सोर करै बन मोर, सो दादुर प्यास पपीहा पुकारी॥
ताल मही हरी भूमि भई, सो नहीं कोइ पंछिन चोंच चुकारी॥
मैं मन में सुनि कै बिगसी, जस ताल रबी बिच कंज सुखारी॥
जो तुलसी गुन माहिं रही, सो भई जम साथ के संग दुखारी॥

सावन सरवर नीर अपार। बरसत गगन अखंडित धार॥
गैल गली सब हरियल भूमि। नील सिखर चढ़ि सूरति घूमि॥
चमक बिजली की सहौंगी॥

भादों माह को माध्यम बनाकर तुलसी साहिब फ़रमाते हैं कि जो जीवात्मा प्रियतम के धाम जाने का निर्णय कर लेती है, उसके अंदर विरह की अग्नि प्रचंड हो जाती है। उसके सभी संशय दूर हो जाते हैं और सभी भ्रमों से ऊपर उठ जाती है। ऐसी विरहणी आत्मा मार्ग की सारी बाधाओं का सामना करते हुए दृढ़ता से आगे बढ़ती है।

भादों का भेद कहौं जो निखेद, सो खेद करम्म को काढ़ि निकारी॥
सूरति सूर भई मति पूर, सो नागिनि नारि डसी जस कारी॥
चेत चली जो अकास अली, सो गली गुन गोह से होत नियारी॥
जो तुलसी सुख नारि भई, सो गई ले लार लगन्न के पारी॥

भादों भर्म भेद सब छूटि। काया कर्म कलस गये फूटि॥
नागिनि बिरह मूल डसि खाई। येहि बिधि सूरति गगन समाई॥
लगन संग लार लरौंगी॥

क्वार (अश्विन) के महीने को ध्यान में रखते हुए तुलसी साहिब फ़रमाते हैं कि माया के पदार्थ मिथ्या, नाशवान और कूड़ हैं। इनका कोई महत्त्व नहीं है। जब आत्मा सतगुरु द्वारा समझाई गई नाम के अभ्यास की युक्ति द्वारा अंतर में नाम के सरोवर में स्नान करती है और पूरी तरह निर्मल हो जाती है, तभी वह सार-शब्द में लीन हो सकती है।

कूर कुवार कुमति को जार, सो बारि बनी सब खाक मिलाई॥
कूकर काम भये जो निकाम, सो ठामहिं ठाम जो भूमि भुलाई॥
सुन सूरति भाल सो ताल मई, गई मानसरोवर पैठि अन्हाई॥
तुलसी सोइ संत के संग अड़ी, सो खड़ी सुन सब्द में जाइ समाई॥

कुमति कुवार जारि जस फूस। कूकर काम रहे सब भूँसि॥
मानसरोवर सरस अन्हाई। सूरति समझ चली रस पाई॥
सब्द सुनि सार भरौंगी॥

कार्तिक माह का यह संदेश है कि जिस प्रकार नदी समुद्र में समाकर और किरण अपने स्रोत सूर्य में समाकर उसी का रूप हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा परमात्मा में समाकर परमात्मा का ही रूप हो जाती है। जब आत्मा शब्द में लीन हो जाती है तब इसका यमों के जाल से छुटकारा हो जाता है।

कातिक किरनि भई ससि सूर, सो दूर भये दल बादल सारे॥
भूमि थीर भये जल नीर, सो नार नदी स्रुत सिंध सम्हारे॥

सिंधहिं बुंद मिले चढ़ चाल, सो काल कला जम दूरि निकारे॥
तुलसी जिन चाँप धनू पै धरी, सो करी सम सूरति संत पुकारे॥

कातिक किरनि भास भये सूर। सलितहिं समुन्द मिलै जस मूर॥
बुन्द सिंध बिन फिरत बेहाल। मिलि गया सब्द कटे जम जाल॥
सुरति घर चाप चहौंगी॥

अगहन मास को मिलाप का प्रतीक बताते हुए तुलसी साहिब कहते हैं कि मनुष्य-जन्म प्रभु के साथ मिलाप का सुनहरी अवसर है। जिस आत्मारूपी सुहागिन को पति का साथ सदा के लिये प्राप्त हो जाता है, उसे अविनाशी आनंद की प्राप्ति हो जाती है।

अगहन मास अनंद अली, सो चली पिया पास पलंग बिछाई॥
पायौ पलक्क के पार पती, सो सती सत सूरति सार लखाई॥
सेज मिलाप भये पति आप, सो जीवत जनम सुफल्ल कहाई॥
तुलसी मन में सुख चैन भई, सो गई बर आदि सो साध समाई॥

अगहन अली पिया पलँग बिछाव। जीवत जनम मिलौ अस दाँव॥
पिया की सेज सुख सहज स्रुति सार। नित प्रति केल करौं पति लार॥
अली बर आदि बरौंगी॥

पौष (पूस) महीने के वर्णन द्वारा आत्मा को परमात्मा के मिलाप के लिये प्रेरित किया गया है। गुरु द्वारा बताये मार्ग पर चलने से सुरत का गुरु के शब्द रूप से मिलाप हो जाता है और सुन्न मंडल में पहुँचकर उसे अपने निर्मल स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। फिर सुरत इस मार्ग पर आगे बढ़ती हुई प्रियतम के धाम सतलोक की ओर चल पड़ती है।

पूस पूरुष की होस भई, सो गई सतलोक में सोक सिहारी॥
प्यारी सखी गुरु गैल गई, सो कही पद प्यारे की चौंज चिन्हारी॥
छाइ रही सुन मंदिर में, घर घाट पिया लखि बाट बिचारी॥
पिय रस रीत की जीत भई, सो कही तुलसी जिन नैन निहारी॥

पूस परम परम पद पुरुष निवास। स्रुति सतलोक करै नित बास॥
सिष गुरु गवन मिले मत पाइ। प्यारी पुरुष रही घर छाइ॥
सखी सुख जानि कहौंगी॥

माघ (माह) महीने के माध्यम से तुलसी साहिब समझाते हैं कि सुरत सुन्न मंडल को पार करके प्रभु के धाम की ओर बढ़ना शुरू कर देती है, तब उसे सतलोक की खिड़की दिखाई देती है। कोई बिरला ज्ञानी ही इस जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त करके अगम-धाम के आनंद का अधिकारी बनता है।

माह मनोहर महल चढ़ी, सो खड़ी खिरकी तक तोल बखानी॥
जानि कही सोइ साध सुजान, सो मानी जिन्ही सोइ पास समानी॥
पानी दूध की छान करी, सो भरी लखि सूरति सब्द ठिकानी॥
जीवत ही मरि जात सही, सो कही तुलसी जिन जानि निसानी॥

माह महल झँझरी चढ़ि ताक। पिया की सेज सुख सत सत भाख॥
कोइ कोइ सज्जन साध बिलास। पहुँचे अगम पिया घर बास॥
कही जिन जिवत मरौंगी॥

फागुन माह के वर्णन द्वारा तुलसी साहिब ने जीवात्मा की उस अवस्था के बारे में बताया है कि जब उसे संसार की असारता का ज्ञान हो जाता है तब वह मन और शरीर की सीमा से ऊपर उठकर आंतरिक आकाश में चढ़ाई करती है। इस प्रकार जो जीव सतगुरु के उपदेश को भलीभाँति

समझकर पूरे विश्वास से उसके अनुसार आध्यात्मिक अभ्यास करता है, उसे परमतत्त्व का ज्ञान हो जाता है।

फागुन फहम करौ री सखी, लख जात बह्यौ संसार असारा॥
सूरति सार के पार लखै, सो थकै मन मारग मौज अपारा॥
संत सिरोमनि सैल कही, सो गई गुरु मारग साँझ सबारा॥
प्यारे पिया की पकड़ गही, सो जकड़ हिये जंजीर सी डारा॥

फागुन फरक भयौ संसार। जिन जिन सुरति करी तन जार॥
सतगुरु मूल मता मुख बैन। जब लखि लखी संत की सैन॥
समझ सोइ पकड़ धरौंगी॥

मनुष्य-जन्म की तुलना चैत महीने से करते हुए तुलसी साहिब फ़रमाते हैं की जीवात्मा सतगुरु के मार्गदर्शन में सुन्न मंडल में पहुँचकर वहाँ अमृत के सरोवर में स्नान करके पूरी तरह पवित्र हो जाती है। फिर इस मंडल को पार करके सतलोक की ओर जानेवाले मार्ग पर पहुँच जाती है। इस प्रकार उसे प्रभु के चरणों का निर्मल स्पर्श प्राप्त हो जाता है और उसकी मनोकामना पूरी हो जाती है।

चैत चली सो सुनौ री अली, गइ गैल गली सुन रीति निहारी॥
सेत सरासर भेद लखी, सो पकी बिधि बेनी के घाट बिचारी॥
सारी सरोवरि ताल तकी, पकि प्यारी अन्हाइ के काज सँवारी॥
जो तुलसी चढ़ि के जो चली, सो अली खिरकी बिधि आनि पुकारी॥

चैत चली जिन चरन निहार। सो उतरी भौसागर पार॥
आद अरु अंत पंथ घर बाट। सो पद परसि त्रिबेनी घाट॥
चीन्ह खिरकी को चहौंगी॥

बैसाख माह का आनंद आत्मा के दृढ़ विश्वास की ओर संकेत करता है कि जब आत्मा प्रभु-प्रियतम से मिलाप कर लेती है, तब वह प्रियतम की संगति के परम आनंद को पा लेती है। प्रियतम के साथ मिलाप के इस आनंद को आत्मा आंतरिक किवाड़ खोलकर ही प्राप्त कर सकती है।

बैन बिधी बैसाख बिलास, सो पास पिया नित सैल सँवारे॥
पार के सार बिहार करै, सो बिचार बिधी सुत तार निहारे॥
प्रीतम मेल भया रस केल, सो केल किवार के पार पुकारे॥
तुलसी तन में जिन जान लखे, सो भखे पिया पास के भास निकारे॥

करि बस बास बैसाख बिलास। छूटि गई तनमन की आस॥
प्रीतम प्यारी मिले मन खोल। रँग रस रीति सुने सब बोल॥
पिया सँग केल करौंगी॥

जेठ माह से मनुष्य-जन्म की तुलना करते हुए तुलसी साहिब फ़रमाते हैं कि जिसने मन पर विजय प्राप्त कर ली, समझो उसने जीवन का वास्तविक उद्देश्य पूर्ण कर लिया। वह आगे कहते हैं कि सतलोक में पहुँचने का सौभाग्य उस आत्मा को ही प्राप्त होता है जो शब्द के साथ जुड़कर उसमें लीन हो जाती है।

जेठ की रीत करी मन जीत, सो प्रीत की बात की सैन सुनाई॥
चेत चली तजि काल बली, सोइ जाल जली दुख दूरि नसाई॥
जिमि धाइ जो धीर गँभीर नदी, सुत सार सँवारि जो सब्द समाई॥
ये मुख बैन कहै तुलसी, सो लसी सत द्वार जो सब्द को पाई॥

जेठ जबर तन मन सुत रीत। सुरख सबज चली अगमन जीत॥
सेत जरद रँग स्याम भुलान। पाँचोइ तत्त करी नहिं कानि॥
सुखी सुनि पार फिरौंगी॥

केवल ज्ञान निरबान निवास। ता से परे कहै तुलसीदास॥
संत चरन धरि धारौ धूरि। अगम बरन बरनी पद मूर॥
निडर घर सुरति भरौंगी॥

बारह मासा में सुरत के अपने अगम और अगाध धाम में वापस पहुँचने का वर्णन किया गया है। तुलसी साहिब कहते हैं कि बारह मासा के इस रहस्य को कोई बिरला साधु ही समझ सकता है। जो साधक संतों के वचनों के अनुसार जीवन को ढालता है, उसके आंतरिक कपाट खुल जाते हैं और इस प्रकार वह आत्मा के सच्चे स्वरूप की पहचान करके परमात्मा की पहचान करने में सफल हो जाता है।

बारह मास बयान, हिये हेरि कोइ पद लखै।
चखै चरन रस रीति, प्रीति पार पुर्षहिं मिलै॥

जिन जिन हेर हिये बिच पावा। बारह मास समझि चित लावा॥
समझि समझि कोइ बूझै साधू। सुरति सहर घर बरन अगाधू॥
चित दे गुनै लखै सुनि काना। सत सतसंग करै परमाना॥
बिन सतसंग साँच नहिं आवै। धर धर धोखे जन्म गँवावै॥
जिन सतसंग रंग रस पाई। हिरदे तिमर कपाट खुलाई॥
मन तन सुरति फोड़ असमाना। मद्ध हिये तन तिमर नसाना॥
मोड़ी सुरति पोढ़ पद लारी। तेज भास लखि सुरति निहारी॥
हिये दृग नैन निरख जस देखा। संत सैन कोइ करै बिबेका॥
जिन जिन सुख दुख दूरि बहाये। कर्म काल कृत धोय नसाये॥
तन बिच तोड़ा सुरति निसाना। सुन्न सब्द सुति गगन समाना॥[7]

ककहरा

संत-कवियों ने परमार्थ के जिज्ञासुओं को सरल ढंग से उपदेश देने के लिये प्रकृति के विभिन्न अंगों, ऋतुओं, महीनों, हफ़्तों, तिथियों और लोक-प्रसिद्ध प्रेम-गाथाओं आदि को माध्यम बनाया है। कुछ संतों ने परमार्थ का संदेश देने के लिये सिहरफ़ी, बावन-अक्खरी, ककहरा आदि का भी प्रयोग किया है। हिंदी भाषा के मूल अक्षरों को 'ककहरा' कहा गया है। तुलसी साहिब ने भी 'ककहरा' के माध्यम से परमार्थ के गूढ़ रहस्यों को बड़े सरल ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने ककहरा में बत्तीस वर्णों का प्रयोग किया है और उनके द्वारा संतमत को संक्षेप में समझाया है। इसमें सृष्टि की रचना के बारे में समझाते हुए उन्होंने परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा की दशा का वर्णन किया है। सांसारिक पदार्थों में जीव के मोह तथा कर्मजाल में फँसी जीवात्मा की दशा को खोलकर समझाते हुए उन्होंने आवागमन के चक्कर से मुक्त होने का उपाय भी बताया है। परमात्मा की सच्ची भक्ति और परमधाम के परम आनंद की प्राप्ति के लिये उन्होंने सत्संग और सतगुरु के महत्त्व पर विशेष बल दिया है। इस प्रकार 'ककहरा' में तुलसी साहिब ने परमार्थ के सभी पहलुओं को दर्शाया है।

कक्का कहूँ परथम गुरु साध आद सब संत बखानी।
जुगन जुगन की बात कहूँ उतपति बिधि बानी॥
अंड नहीं ब्रह्मंड पिंड नहिं रचना ठानी।
अरे हाँरे तुलसी हता नहीं बैराट नहीं चौरासी खानी॥

खख्खा खुली कहूँ टकसार काल जग रचना कीन्हा।
वो दयाल सतपुरुष तास कोउ भेद न चीन्हा॥
तीन लोक के पार सार सतलोक है।
अरे हाँरे तुलसी चौथा पद परमान छान स्रुति को कहै॥

गग्गा गगन नहीं आकास भास भया सुन्नि से।
सुन्नि धुन्नि से सब्द सब्द से गुन्नि है॥
निरंकार जम जोति जाल जग डारिया।
अरे हाँरे तुलसी ब्रह्मा रचिया बेद कैद करि मारिया॥

घघ्घा घर भूले सब बाट घाट घट ना मिलै।
आद पुरुष पद छाँडि काल घर को चलै॥
तिर देवा पट पार काढ़ि कहो को सकै।
अरे हाँरे तुलसी सिम्रत सास्तर बेद भेद में सब पके॥

नन्ना नहीं रूप नहि रेख भेष ढूँढत फिरै।
भरमै चारों धाम काम इक ना सरै॥
पत्थर पानी साथ हाथ कछु ना लगा।
अरे हाँरे तुलसी पिया रहे घर माहिं ताहि सँग ना पगा॥

चच्चा चले जात नर भूल सूल ता से सहै।
सतसँग मिलै न अंत संत बिन को कहै॥
सतगुर मिलैं दयाल भेद कहैं मूर को।
अरे हाँरे तुलसी कर्म काल को मेट करैं जम दूरि को॥

छछ्छा छिन छिन सुरति सँवार लार दृग के रहौ।
तन मन दर्पन माँज साज स्रुति से गहौ॥

लगन लगै लख पार सार तब पाइया।
अरे हाँरे तुलसी संत चरन की धूर नूर दर्साइया॥

जज्जा जिन जिन सुरति सँवारि काल डर ना रही।
चढ़ी गगन पर धाय पाय पति पै गई॥
लिया अगमपुर धाइ जाय पिउ भेंटिया।
अरे हाँरे तुलसी जन्म जन्म भ्रम भाव दाव दुख मेटिया॥

झझ्झा झलकत नूर जहूर हरष हिये में भई।
निरखा रबि उजियार द्वार पच्छिम गई॥
सूरत चीन्हा भेद भरम तजि भागिया।
अरे हाँरे तुलसी सब्द सुरति भया मेल खेल खुलि त्यागिया॥

टट्टा टोइ लिया सतसंग रंग गुर ने दिया।
जुगन जुगन तजि भूल आदि घर को लिया॥
सिव ब्रह्मा और बेद बिस्नु नहिं आ सकै।
अरे हाँरे तुलसी निरंकाल सोइ काल जोति नहिं जा सकै॥

ठठ्ठा ठौर ठिकाना ठाँव गाँव पिया को कही।
निरंकार के पार तहाँ तुलसी रही॥
सत्तनाम सुख धाम अमरपुर लोक है।
अरे हाँरे तुलसी चौथा पद जद जाय संत सोई कहै॥

डड्डा डगर सत का पंथ अंत कहो को लखै।
जग पंडित और भेष भूल भव में पकै॥
तीरथ नेम अचार भार सिर पर लिया।
अरे हाँरे तुलसी कर्म धर्म अभिमान जानि करि ये किया॥

ढढ्ढा ढिग ही पूरन बस्त कस्द कोइ ना करै।
गुरू संत बिन भेद पार कैसे परै॥
पढ़ि पढ़ि वेद पुरान ज्ञान करि करि मुए।
अरे हाँ रे तुलसी कथा सुने सोइ जोनि पौन भूतै भये॥

णणा नीच ऊँच नहिं देख पेख सब एक पसारा।
नहिं बाम्हन नहिं सूद्र नहीं छत्री कोउ न्यारा॥
नहीं बैस की जाति सकल घट एक पसारा।
अरे हाँरे तुलसी जो करि जानै दोइ खोइ जिन जनम बिगारा॥

तत्ता तुरत तत्त को खोज रोज रच दरस दिखावै।
अगम निगम का भेद घाट घट में जब पावै॥
बिना तत्त नहिं मूल भूल चौरासी आवै।
अरे हाँरे तुलसी तत मत सूरत साच सब्द में जाय मिलावै॥

थथ्था थिर होइ सुरति लगाव थोब थिर मन को राखौ।
इंद्री चलै न जाय पाय गुन को नहिं भाखौ॥
प्रकृति पचीसौं बास महल से काढ़ निकारौ।
अरे हाँरे तुलसी जब लग है कुछ हाथ संत की टहल बिचारौ॥

दद्दा देखो दृष्टि पसारि सार कुछ जग में नाहीं।
दिन चार का रंग संग नहिं जावै भाई॥
धन संपत परिवार काम एको नहिं आवै।
अरे हाँरे तुलसी दीपक संग पतंग प्रान छिन में चलि जावै॥

धध्धा ध्यान धरो घट माहिं सुरति को काढ़ि निकारी।
उलटि चलो असमान हिये बिच होत उजारी॥

ता उजियारे बैठि लखो ब्रह्मंड पसारा।
अरे हाँरे तुलसी जो अंडे बिच जीव निरखि भिनि भिनि बिध सारा॥

पप्पा पड़े जगत के माहिं भक्ति सुपने नहिं भावै।
बाम्हन पंडित भेष सबै पुनि दान करावै॥
जिन कीन्हा तन साज ताहि से नेह न लावै।
अरे हाँरे तुलसी जब जम पकरै बाँह पूत को कौन छुड़ावै॥

फफ्फा फूले फूले फिरें देखि धन धाम बड़ाई।
तन फुलेल और तेल चाम को चुपरें भाई॥
दिना चारि का खेल मिलै फिर खाक में।
अरे हाँरे तुलसी पकरि फिरिस्ते करें सलाई आँखि में॥

बब्बा बड़ा जगत जंजाल जाल जम फाँसी डारी।
ज्यों धीमर जल माहिं पकर करि मछरी मारी॥
निकरि जाय जब प्रान काल चोटी धर खींचा।
अरे हाँरे तुलसी परिहौ जम मुख माहिं डाढ़ चक्की ज्यों पीसा॥

भभ्भा भगी सुरति घट माहिं जाय जो देखा भाई।
सुखमनि सेज सँवारि सुन्नि में सुरति लगाई॥
सुकर माहिं दीदार दरस कीन्हा सोइ जानै।
अरे हाँरे तुलसी ज्यों स्वाँती की बूँद सीप बिरहिन पहचानै॥

मम्मा मुसकिल होइ आसान जानि कोइ ना करै।
करै तत्त की खोज काज घट में सरै॥
बाहर है सब झूँठ लूटि जम लेइँगे।
अरे हाँरे तुलसी तन छूटै बेहाल बहुत दुख देइँगे॥

यय्या या को चीन्ह बिचार कहो ये कौन है।
बोले सब घट माहिं परख कित पौन है॥
धरती अगिनि अकास नीर कोउ को न था।
अरे हाँरे तुलसी रचा नहीं बैराट बोलता कहँ हता॥

ररा राति दिवस कर खोज रोज रस ज्ञान सुनावै।
घट घट उठै अवाज तासु कोउ भेद न पावै॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड सकल बिधि रहा समाई।
अरे हाँरे तुलसी खोलि हिये की आँख संत दीन्हा दरसाई॥

लल्ला लोभ लोग पचि मरे कहो को खोज लगावै।
इन्द्री रस सुख स्वाद भोग नीके करि भावै॥
राम राम की टेक भेष सब जगत पुकारा।
अरे हाँरे तुलसी जीवत मिलै न मुक्ति मुए को कहै लबारा॥

वव्वा वा को खोज गँवार सार जिन किया पसारा।
रोम रोम ब्रह्मंड कोटि छबि रबि उजियारा॥
अजर अमर वह लोक सोक सब दूर बहावै।
अरे हाँरे तुलसी राम कृस्न अवतार दसों नहिं जाने पावै॥

सस्सा सोच करी मन माहिं पिंड कहो कौन सँवारा।
आदि अन्त का खेल किया किन बिधि बिधि सारा॥
निरंकार नहिं हता नहीं तब जोति रहाई।
अरे हाँरे तुलसी ब्रह्मा बिस्नु न बेद नहीं अवतारी भाई॥

हहा हक्क हजूरी संत पंथ कोइ रहे न भाई।
सत साहिब सिरदार और कोइ दूजा नाहीं॥

कागद स्याही कलम रहे नहिं लिखनेहारा।
अरे हाँरे तुलसी आदि अंत नहिं हता नाहिं सत असत पसारा॥

अआ अष्ट कँवल दल फूल मूल मारग तब पावै।
सहस कँवल दल छाँड़ि कँवल दल दुइ पर आवै॥
लखै चार दल कँवल ताहि पर सुरति चढ़ावै।
अरे हाँरे तुलसी तिरबेनी के पार सार सतलोक दिखावै॥

ईया इतना भेद अभेद गुरन से मिलै ठिकाना।
कहैं अगम की राह सुरति से फोड़ निसाना॥
गई सिंध के पार यार लख पुरुष पुराना।
अरे हाँरे तुलसी ज्यों सलिता जलधार सिंध धस जाय समाना॥

ऊब उलटि चलै दरबार पार घर अपना पावै।
बुंद सिंध का मेल खेल खुद आप कहावै॥
भूली बस्त मिलाप आप अपना दरसावै।
अरे हाँरे तुलसी जिन चीन्हा यह भेद सोई सत संत कहावै॥

अरल ककहरा अंक बंक बत्तीस बखाना।
संत पंथ अज अमर आदि घर अपना जाना॥
जो कोइ करै बिबेक एक सब घट पहिचानै।
अरे हाँरे तुलसी सतगुर मिलै दयाल काल गत भिन भिन छानै॥[8]

आरती

तुलसी साहिब ने अंतर्मुखी अभ्यास में दिखाई देनेवाले सतगुरु के नूरी स्वरूप की महिमा करते हुए आरती की है:

आरती सँग सतगुरू के कीजै। अंतर जोत होत लख लीजै॥ टेक॥
पाँच तत्त तन अगिन जराई। दीपक चास प्रकास करीजै॥
गगन थाल रवि ससि फल फूला। मूल कपूर कलस धर दीजै॥
अच्छत नभ तारे मुक्ताहल। पोहप माल हीय हार गुहीजै॥
सेत पान मिष्टान मिठाई। चंदन धूप दीव सब चीजै॥
झलक झाँझ मन मीन मजीरा। मधुर मधुर धुन मृदंग सुनीजै॥
सब सुगंध उड़ चली अकासा। मधुकर कँवल केल धुन धीजै॥
निरमल जोत जरत घट माहीं। देखत दृष्टि दोष सब छीजै॥
अधर धार अमृत बह आवे। सत मत द्वार अमर रस भीजै॥
पी पी होय सुरत मतवाली। चढ़ि चढ़ि उमँग अमी रस रीझै॥
कोटि भान छवि तेज उजाली। अलख पार लखि लाग लगीजै॥
छिन छिन सुरत अधर पर राखो। गुर परसाद अगम रस पीजै॥
दमकत कड़क कड़क गुरु धामा। उलटि अलल तुलसी तन तीजै॥[9]

विविध शब्द

1 अब सुनु कहूँ सिरोमन साधू। उनकी मति गति कहनि अगाधू॥
उनकी सुरति कँवल पद माहीं। पदम पार बेनी नित न्हाई॥
मंजन करि करि करते ध्याना। पदम सुरति सतगुरु अस्थाना॥
पदम कँवल पर आसन लावे। जहँ कोइ साध सूरमा जावे॥
सुन्न और महा सुन्न के पारी। जहँ वह जाय लगावे तारी॥
सत्तपुरुष के दरसन पावे। तीन लोक के पार कहावे॥
यह सब संत महात्मा गाये। साली * शब्द माहिं दरसाये॥
जो सब्दन का करे विचारा। जब जिव का पावे निरबारा॥[10]

2 अरी अब तो सत दरसानी सुरत मोरी।
दिरगन जाय समानी वोही धाम॥ टेक॥
हेर लई जिन जनम सुखारी, अपने पिया को पिरवा जनाई।
सुनि धुन में लिपटानी॥
फेर भई मैं तो पिया की प्यारी, सुपने पिया को न बिसरि बनाई।
घट पट पिउ पहिचानी॥
मेहर भई पिया परम सयानी, हाल हरख हिये कंठ लगाई।
छूटी सब दुख सुख खानी॥
तुलसी परम सुख रीत जुड़ानी, सेज पिया सुख बरन सुनाई।
ज्यों जल मिलि जल पानी॥[11]

* सालना यानी चुभना

3 अरे कोइ अमर नहीं है या तन में। काया करम अधार॥ टेक॥
उपजे मरे बने फिर बिनसै। जुग जुग बन्धन दुख सुख बारम्बार॥
आसा दुख बन्धन भटकावत। आप अपनपौ नहिं चीन्हा करतार॥
केहर सुत भेड़न सँग भूला। मन गुन इंद्रिन सँग करत बिहार॥
जब बन सिंघ मिले उपदेसी। सतगुर को मिलि भव के भरम निकार॥
तुलसी जब तब मूल परखिया।
निरमल होय लखि आवे समझ बिचार॥[12]

4 अलल पच्छ पच्छिम के माहीं, उलट अकास समाया वे।
भुइँ पर आय धाय धुर पहुँचा, जब अपनी सुधि लाया वे।
जब परिवार परख घर अपना, सुत पित मात समाया।
जीव तजे जड़ताई तुलसी, जब वह ब्रह्म कहाया।[13]

5 आली री काल करत बेहाली, तासे पार परस घर चाली॥ टेक॥
तत कर तेल सुरत की बाती, हाथै दीपक बाली।
ब्रह्म अगिनि परघट करि तन में, महल करो उजियाली॥
ताला खोल चलो मंदर में, सतगुर से ले ताली।
दीन दयाल नाम है उनको, बकस देत दरहाली॥
अंदर जाय अलख लखि प्यारा, इसक प्रेम प्रतिपाली।
ज्ञान बिबेक जोग धरि ध्याना, तोड़ो जम जग जाली॥
तुलसी ताल तीर चल जावे, न्हावो करम पखाली॥
निरमल नेह सेह प्रीतम को, आतम दरस निहाली॥[14]

6 आली री हिये हरष न आवै। कारे की लहर ज्यों सतावै॥ टेक॥
तन मन सुधि बुधि सब बिसराई। अन्न पानी नहिं भावै॥
कहा करौं किह जावँ सखी री। पिय बिन नींद न आवै॥
है कोइ सतगुरु पिय को लखावै। पत पिय पीर बुझावै॥
तुलसी तलफ तलफ तन सूखै। मन बिच थिर नहिं लावै॥[15]

7 एरी आली आज तो अगम की बानी जानी जिन जाइ के॥ टेक॥
आतम के पार पसारा परमातम से पद न्यारा।
जग जिया बिच ब्रह्म बँधावा कही संतन गाइ के॥
अंडा सुनि धुनि के पारा जहँ जोति नहीं निराकारा।
तीनों लोकइ सोक समाना न्यारा निरखा जाइ के॥
चौथा पद परम निवासा जहँ संत गुरन का बासा।
बेनी बस बास प्रयागा निर्मल भई न्हाइ के॥
जिन इन सतगुर को जाना भागे भय भव भ्रम खाना।
छूटी मन भूल बड़ाई टूट अरथाइ के॥
कोइ वा घर को लखि पावै कंजा मन सुरति लगावै।
समुदर रतनागिरि गैली तुलसी लख लाइ के॥[16]

8 कर्म प्रभाव ज्ञान उपजावे। सतगुरु बिन को ज्ञान सुझावे॥
जो रँग पगे वही खसबोई। निकरें तदपि तरंगें सोई॥
भँवर न करे चंप पर बासा। वह सुगंधि सँग रहे उदासा॥
ऐसा मन भँवरे की नाईं नीकी तज फीकी पर जाई॥
नीम कीट जस नीम पियारा। बिष को अमृत कहे गँवारा॥

॥ दोहा॥

विष रँग के सँग में पगे, किया न मन को तंग॥
संग मिले मधु मालती, जब निकसै कछु रंग॥[17]

9 कोइ ज्ञान से ब्रह्म बखान कहै, नहिं ब्रह्म के भेद को जानता है॥
कागदों की साख से भाख कहै, लख ब्रह्म का भेद न पावता है॥
तुलसीदास अजान जो मान लेवै, बिन जान के जनम गँवावता है॥[18]

10 गुंजत भँवर पोहप फुलवारी, एरी आली मधुर सुगंध करारी॥ टेक॥
नव पल्लव बन सुभग सुहावे, बिरछ बेल छबि न्यारी।

सोभा बाग बिमल मन माली, सींचत जल हरियाली॥
करम कली बिरछा बहु फूले, परमल सुगंध अधिकारी।
प्रेम मगन मधुकर रस चाखे, पीवत चढ़त खुमारी॥
मन माया तन बाग लगाया, करि काया बिस्तारी।
भूले भँवर पवर मत मारग, मूल मनोरथ सारी॥
अली रस रंग संग सब उरझे, लिपटे झारि बिकारी।
तुलसी तुच्छ तनक सुख कारन, घर घर फिरत भिखारी॥[19]

11 जग जग कहते जुग भये जगा न एको बार॥
जगा न एको बार सार कहो कैसे पावै।
सोवत जुग जुग भये संत बिना कौन जगावै॥
पड़े भरम के माहिं बंद से कौन छुड़ावै।
जो कोइ कहै बिबेक ताहि की नेक न भावै॥
तुलसी पंडित भेष से सब भूला संसार।
जग जग कहते जुग भये जगा न एको बार॥[20]

12 जात रे तन बाद बिताना॥ टेक॥
छिन छिन उमर घटत दिन राती, सोवत क्या उठि जाग बिहाना॥
यह देही बारु सम भीती, बिनसत पल बेहोस हैवाना॥
ज्यौं गुलाल कुमकुम भरि मारे, फेंक फूटि जिमि जात निदाना॥
यह तन की अन आस अनाड़ी, तैं बिषबंधन फाँस फँदाना॥
यह माया काया छिन भगी, रँग रस करि करि डारत खाना॥
सुख सम्पति आसिक इंद्री में, बिष बस चौज मौज मन माना॥
तुलसी ताव दाव यहि औसर, बासर निसि गइ भजन न जाना॥[21]

13 जात रे जड़ जन्म सिराना॥ टेक॥
सोवत नींद निरखि तन बीता। कीन्हा जग रस करम कमाना॥

लोक लाज सब काज कियो रे। जीव काज परलोक हँसाना॥
नीम कीट जिमि नीम पियारी। बसि रहे बिष सही अमृत जाना॥
गुबरीला गोबर बिष्टा में। उठि बैठे जहँ बास बसाना॥
ज्यों मदिरा मद पियत सराबी। पियत अमल मद में मस्ताना॥
यह गो गुन मन मगन मिलापी। सो तुलसी कहिं नहिं कसकाना॥[22]

14 बार बार बिनती करूँ सतगुर चरन निवास॥
सतगुर चरन निवास बास मोहिं दीन्ह लखाई।
नित नित करूँ बिलास पास घर अपने आई॥
मैं अति पति मति हीन दीन देखा मोहिं साँई।
लीन्हा अंग लगाय कहूँ अस कौन बड़ाई॥
तुलसी मैं अति हीन हूँ दीन्हा अगम अवास।
बार बार बिनती करूँ सतगुर चरन निवास॥[23]

15 मिलै गुरु गैल बतलावै। तिमर तन बीच से जावै॥
लखै तब संत के बैना। सुरति सुरमा खुलै नैना॥
तरक ताली खुलै ताला। निरखि तहँ होत उजियाला॥
अधर घर सुरति चढ़ धावै। अगम गति गूढ़ तब पावै॥[24]

16 या से मान मनी मति डारौ, लख गुरु गगन गवन बतलाई।
सूरति डोर लील बिच खोलौ, घोड़ि कै पछिम समाई॥
लीला सेत स्याम सुन पारा, न्यारा द्वार दीदा दरसाई।
जहँ परमातम आतम नाहीं, खिरकी पुरुष लखाई॥
जहँ सतलोक मोष पर बेनी, मंजन करिके सहज अन्हाई।
चढ़ि कर द्वार देखि सत साहिब, सुभ और असुभ नसाई॥
जे जे बंद फंद कर्मन के, सत्त पुरुष दरसत नसि जाई।
यहि बिधि भाँति सुरति से खेलै, सतगुरु कहत बुझाई॥[25]

17 लख अगम भेद अलोक अलि री। संत सतगुरु मोहिं कह्यौ॥
तिहुँ लोक से री अलोक न्यारा। पार मारग मोहिं दयौ॥
सिंध सब्द सतगुरु किरनि चेला। सुरति सब्द मिलावही॥
सतलोक सिंध सम्हार अलि लख। मिलन समझ सुनावही॥
सखि सिंध बुन्द मिलाप सतगुरु। किरनि सुरज कहावही॥
सखि समुंद जल जस भरत बदरा। भूमि बरस बहावही॥
अलि सिमटि नीर समीर सलिता। सिंध समझि समावही॥
सखि सिंध बुन्द जो सिष्य सतगुरु। गवन गत मत गावही॥[26]

18 सखी री वा घर के हम बासी, जहँ सके न जाय अबिनासी॥ टेक॥
अमर लोक सुख सहर सुहेला, रबि ससि दीपक चासी॥
जोग न ज्ञान ध्यान नहिं पूजा, जल थल अगिनि न स्वासी॥
पाँच तत्त बिन बदन बिहूना, रूप न रेख निवासी॥
काल कराल जाल नहिं डारे, भवजल नहिं जम फाँसी॥
तुलसी तोल अबोल यकीना, चीन्हा सतगुर दासी॥[27]

19 सब्द सुरत जिन की मिली कर ब्रह्मंड नित सैल॥
कर ब्रह्मंड नित सैल केल सत साहब चीन्हा।
अगम निगम का भेद भेद भिन भिन लख लीन्हा॥
पहुँचे देस मँझार सार का बरनि बखाना।
पिया पद पदम मँझार पार का कहें ठिकाना॥
तुलसी सुहागिन पीव की पल पल पति प्रति खेल॥
सब्द सुरत जिन की मिली कर ब्रह्मंड नित सैल।[28]

20 सुन असथूल राम मन माया। वह पद नाम बिदेह अकाया॥
तीन लोक से नाम निनारा। सो जाने सतगुर का प्यारा॥
लोक तीन तज चौथे माहीं। सो सतगुर पद नाम लखाई॥

जपने में कोई भेद न पावे। सतगुर सूरत संध लखावे॥
नाम नोक गुपते कही, नहिं कोई जाना भेद॥
सन्त परखे परबीन कोइ, उन लख नाम अभेद॥
नाम बिदेही जब मिले, अंदर खुलें कपाट॥
दया सन्त सतगुर बिना, को बतलावे बाट॥[29]

21 मत भरमै रे घर में दीदार। टुक आँख खोल गफलत बिसार॥ टेक॥
ब्यापक सब में अखंड ब्रह्म। छाँड़ भटक दुनिया के भर्म।
जुग जुग भरमत करि बिचार। सुरति नैन नित सत सुधार॥
बन भुलान घर बिसरी बाट। ठग सँग कीन्हौ घर न घाट।
दिना चार तन की चिन्हार। छूटत तन भुगतत होनहार॥
बूझ समझ घर खोज रोज। अंदर में मन मार मौज।
सँग सतगुरु करि ले निरधार। भटक भूल सब दे निकार॥
जिन जिन सरन सतगुरु लीन्ह। तिन तिन पायौ अगम चीन्ह।
अगम गली इक बिधि बिचार। तुहि तुहि तुलसी वार पार॥[30]

22 सुन हिरदे सत सब्द लखाऊँ। जोग भेद से भिन समझाऊँ॥
सुन्न माहिं से सब्द जो आवे। सोई सब्द सत पुरुष कहावे॥
चौथा पद बेहद के माहीं। सुन्न सब्द सोइ नाम कहाई॥
ओअं सब्द काल को जानो। सुन्न में सब्द पुरुष पहिचानो॥
सब्द सब्द का भेद निनारा। सो कहि भाखि बरनि निरबारा॥[31]

23 स्रुति चढ़ गई अकास में सोर भया ब्रह्मंड॥
सोर भया ब्रह्मंड अंड में धधक चढ़ाई।
जब फूटा असमान गगन में सहज समाई॥
सुन्न सहर के बीच ब्रह्म से भया मिलापा।
परमातम पद लेख देख कर भया हुलासा॥

तुलसी गति मति लखि पड़ी निरख लखा सब अंड।
स्रुति चढ़ गई अकास में सोर भया ब्रह्मंड॥[32]

24 हे हिरदे अस हृदय विचारे। जो तैं कही समझ सोइ धारे॥
सन्त चरन में सूरति राखे॥ सतगुरु सब्द कहन अस भाखे॥
जो सब्द में करे बिबेका। तो सतगुरु का पावे ठेका॥
छल तजि प्रीति जो करे हमेसा। तो वे काटें काल कलेसा॥
अंतर साँच रहे मुख बैना। सतगुरु सन्त बचन क्या कहना॥
या बिधि से सत सुरति लगावे। भव जल पार उतर के जावे॥
कोई बिषाद न रोके भाई। आद अरु अंत साध समझाई॥
या बिधि समझ करे निरवारा। कोइ न उसका रोकनहारा॥[33]